समकालीन हिन्दी कविता में आदिवासी विमर्श

(TRIBAL DISCOURSE IN CONTEMPORARY HINDI POETRY)

शोध प्रबन्ध

कालिकट विश्वविद्यालय की

डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

Thesis

Submitted to the University of Calicut

for the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY IN HINDI

निर्देशक :

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कोवप्रत

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष

हिन्दी विभाग

कालिकट विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्ता :

अनीसा बीगम. ए

शोध छात्रा

हिन्दी विभाग

कालिकट विश्वविद्यालय

हिन्दी विभाग

कालिकट विश्वविद्यालय

2022

Prof. (Dr.) Pramod Kovvaprath
Professor & Head
Department of Hindi
University of Calicut

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"TRIBAL DISCOURSE IN CONTEMPORARY HINDI POETRY"** is a bonafide record of research work carried out by **ANEESA BEEGAM. A**, under my supervision and that no part of this thesis has hitherto been submitted for a Research Degree in any University.

C.U. Campus
Date:

Prof. (Dr.) Pramod Kovvaprath
(Supervising Teacher)

DECLARATION

I, **ANEESA BEEGAM. A**, do hereby declare that the thesis entitled **"TRIBAL DISCOURSE IN CONTEMPORARY HINDI POETRY"** is a record of bonafide research carried out by me and this has not previously formed the basis for the award of any Degree, Diploma, Associateship, Fellowship other similar Title or Recognition. This research work was supervised by **Prof. (Dr.) Pramod Kovvaprath**, Professor & Head, Department of Hindi, University of Calicut.

C.U. Campus
Date:

ANEESA BEEGAM. A
Research Scholar
Department of Hindi
University of Calicut

अनुक्रमणिका

		पृ.सं.
प्राक्कथन		**i-v**
पहला अध्याय : आदिवासी विमर्श : परिवेश एवं परिप्रेक्ष्य		**1-92**
1.1	आदिवासी शब्द : अर्थ एवं स्वरूप	
1.2	परिभाषाएँ	
1.3	विमर्श शब्द : अर्थ एवं स्वरूप	
1.4	परिभाषाएँ	
1.5	ऐतिहासिक परिवेश	
1.5.1	पाषाण काल	
1.5.2	उत्तर पाषाण काल	
1.5.3	ताम्र काल	
1.5.4	लौहकाल	
1.5.5	सिन्धु घाटी सभ्यता	
1.5.6	वैदिक काल	
1.5.6.1	ऋग्वेदिक काल	
1.5.6.2	उत्तर वैदिक काल	
1.5.7	ज़मीन्दारी व्यवस्था	
1.5.8	जैन एवं बौद्ध धर्म का प्रचार	
1.5.9	मुसलमानों का आगमन	
1.5.10	यूरोपियों का आगमन	

1.6 विविध आन्दोलन
1.6.1 चुआर आन्दोलन
1.6.2 चेर आन्दोलन
1.6.3 तमाड आन्दोलन
1.6.4 संथाल परगना आन्दोलन
1.6.5 हो आन्दोलन
1.6.6 कोल आन्दोलन
1.6.7 बुधो भगत आन्दोलन
1.6.8 भूमिज आन्दोलन
1.6.9 संथाल आन्दोलन
1.6.10 खरवार आन्दोलन
1.6.11 कोरवा आन्दोलन
1.6.12 गोंड आन्दोलन
1.6.13 मयूर भंज आदिवासी आन्दोलन
1.6.14 मुंडा आन्दोलन
1.6.15 मिजो आन्दोलन
1.7 भौगोलिक परिस्थिति
1.7.1 दक्षिण क्षेत्र
1.7.2 मध्य क्षेत्र
1.7.3 उत्तर-पूर्वी क्षेत्र
1.7.4 पश्चिम क्षेत्र
1.8 भारत के प्रमुख आदिवासी

1.8.1 दक्षिण भारत
1.8.1.1 कोरग
1.8.1.2 कुरिच्यर
1.8.1.3 कुरुमा
1.8.1.4 पणिया
1.8.1.5 काटुनाय्क्कर
1.8.1.6 चोलनाय्क्कर
1.8.1.7 उल्लाडर
1.8.1.8 चेंचु
1.8.2 मध्य एवं पूर्व भारत
1.8.2.1 संथाल
1.8.2.2 बिझिंया
1.8.2.3 मुण्डा
1.8.2.4 बैगा
1.8.2.5 लोहरा
1.8.2.6 बंजारा
1.8.2.7 खरवार
1.8.2.8 भूमिज
1.8.2.9 भील
1.8.2.10 बेदिया
1.8.2.11 करमाली
1.8.2.12 सहरिया

1.8.2.13 पावरा

1.8.2.14 मीणा

1.8.2.15 बाथुडि

1.8.2.16 गोंड

1.8.2.17 ख्रोंड

1.8.2.18 किसान

1.8.2.19 कोरा

1.8.2.20 हो

1.8.2.21 मारिया

1.8.2.22 कोल

1.8.2.23 कमार

1.8.2.24 पारधी

1.8.2.25 अगरिया

1.8.2.26 भिलाला

1.8.2.27 पनिका

1.8.2.28 माल पहाडिया

1.8.2.29 गोराईत

1.8.2.30 सबर

1.8.2.31 चीकबडाईक

1.8.2.32 परहिया

1.8.3 उत्तर भारत

1.8.3.1 पाँगी

1.8.3.2 किन्नौर
1.8.3.3 भोटिया
1.8.3.4 थारु
1.8.3.5 बोक्सा
1.8.3.6 गुज्जर
1.8.4 पूर्वोत्तर भारत
1.8.4.1 खासी
1.8.4.2 गारो
1.8.4.3 मिजो
1.8.4.4 नागा
1.8.4.5 शेरदुक्पेन
1.8.4.6 सिंहफो
1.8.4.7 मेंबो और खंबा
1.8.4.8 नोक्ते
1.8.5 अंडमान-निकोबार द्वीप समूह
1.8.5.1 ग्रेट अंदमानी
1.8.5.2 जारवा
1.8.5.3 निकोबारी
1.8.5.4 सेंटिनली
1.8.5.5 ओंगी
1.8.5.6 शोम्पेन
1.9 आदिवासी : जीवन और संस्कार

1.9.1 खान-पान

1.9.2 पहनावा

1.9.3 गहने तथा गोदने

1.9.4 घर-द्वार

1.9.5 आजीविका

1.9.6 औषधियाँ

1.9.7 नृत्य-संगीत

1.9.8 शिल्प- कलाएँ

1.9.9 पर्व एवं त्योहार

1.9.10 देवी-देवता

1.10 आदिवासी विमर्श

1.11 आदिवासी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर

1.11.1 आदिवासी साहित्यकार

1.11.1.1 रामदयाल मुण्डा

1.11.1.2 हरिराम मीणा

1.11.1.3 लक्ष्मण सिंह कावडे

1.11.1.4 सहदेव सोरी

1.11.1.5 महादेव टोप्पो

1.11.1.6 भगवान गव्हाडे

1.11.1.7 शिवलाल किस्कू

1.11.1.8 ओली मिंज

1.11.1.9 शिशिर टुडू

1.11.1.10 शिरोमणि महतो

1.11.1.11 ग्लैडसन डुंगडुंग

1.11.1.12 अनुज लुगुन

1.11.1.13 भुजंग मेश्राम

1.11.1.14 वाल्टर भेंगरा तरुण

1.11.1.15 भुवन लाल सोरी

1.11.1.16 मोती लाल

1.11.1.17 वाहरु सोनवणे

1.11.1.18 पीटर पॉल एक्का

1.11.1.19 सुनील कुमार ‘सुमन’

1.11.1.20 सुशीला सामद

1.11.1.21 एलिस एक्का

1.11.1.22 वंदना टेटे

1.11.1.23 निर्मला पुतुल

1.11.1.24 ग्रेस कुजूर

1.11.1.25 जसिंता केरकेट्टा

1.11.1.26 रोज़ केरकेट्टा

1.11.1.27 आलोका कुजूर

1.11.1.28 सरिता सिंह बडाइक

1.11.2 गैर-आदिवासी साहित्यकार

1.11.2.1 संजीव

1.11.2.2 राकेश कुमार सिंह

1.11.2.3 वीरेन्द्र जैन

1.11.2.4 रणेन्द्र

1.11.2.5 डॉ. खन्ना प्रसाद अमीन

1.11.2.6 मैत्रेयी पुष्पा

1.11.2.7 रमणिका गुप्ता

1.11.2.8 मेहरुन्निसा परवेज़

1.12 वर्तमान परिप्रेक्ष्य

1.13 निष्कर्ष

दूसरा अध्याय : 93-184
हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श - एक सर्वेक्षण

2.1 विषय प्रवेश

2.2 उपन्यास

2.2.1 बसंत मालती

2.2.2 अरण्यबाला

2.2.3 रामलाल

2.2.4 अध खिला फूल

2.2.5 बन विहंगिनी

2.2.6 कचनार

2.2.7 रथ के पहिये

2.2.8 मैला आँचल

2.2.9 वनलक्ष्मी

2.2.10 ब्रह्मपुत्र

2.2.11 सूरज किरण की छाँव

2.2.12 जंगल के फूल

2.2.13 साँप और सीढी

2.2.14 हवलदार

2.2.15 वन में मन में

2.2.16 कुर्राटी

2.2.17 जाने कितनी आँखें

2.2.18 धर्म पुत्री सोमा

2.2.19 महासागर

2.2.20 अरण्य

2.2.21 काँछा

2.2.22 अंधेरा और

2.2.23 सु-राज

2.2.24 कगार की आग

2.2.25 पिंजरे में पन्ना

2.2.26 जंगल के आस-पास

2.6.27 महर ठाकुरों का गाँव

2.2.28 वनतरी

2.2.29 शालवनों का द्वीप

2.2.30 शैलूष

2.2.31 धार

2.2.32 डूब

2.2.33 गगन घटा घहरानी

2.2.34 पार

2.2.35 जहाँ बाँस फूलते हैं

2.2.36 काला पहाड

2.2.37 गमना

2.2.38 सहराना

2.2.39 जंगल जहाँ शुरु होता है

2.2.40 अल्मा कबूतरी

2.2.41 सावधान नीचे आग है

2.2.42 काला पादरी

2.2.43 पठार पर कोहरा

2.2.44 हस्तक्षेप

2.2.45 जहाँ खिले हैं रक्तपलाश

2.2.46 उत्तर बाँया है

2.2.47 छैला सन्दु

2.2.48 जो इतिहास में नहीं है

2.2.49 पाँव तले की दूब

2.2.50 रुपतिल्ली की कथा

2.2.51 रेत

2.2.52 धूणी तपे तीर

2.2.53 ग्लोबल गाँव के देवता

2.2.54 पिछले पन्ने की औरतें

2.2.55 लौटते हुए

2.2.56 पलाश के फूल

2.2.57 जंगल के गीत

2.2.58 डंक

2.2.59 मरंगगोडा नीलकंठ हुआ

2.2.60 मौसी

2.2.61 डांग

2.3 कहानी

2.3.1 जंगल की ललकार

2.3.2 आखिर कब तक

2.3.3 सम्बन्धों की एवज में

2.3.4 मोहभंग

2.3.5 जोडा हारिल की रूप कथा

2.3.6 मेरी बस्तर की कहानियाँ

2.3.7 महुआ मांदल और अंधेरा

2.3.8 पेनाल्टी कार्नर

2.3.9 बहू-जुठाई

2.3.10 रात बाकी एवं अन्य कहानियाँ

2.3.11 पगहा जोरी-जोरी रे घाटो

2.3.12 साक्षी है पीपल

2.3.13 अपना अपना युद्ध

2.3.14 विकल्प

2.4 कविता

2.4.1 नगाडे की तरह बजते शब्द

2.4.2 पहाड हिलने लगा है

2.4.3 सुबह के इन्तज़ार में

2.4.4 बेघर सपने

2.4.5 आदिवासी मोर्चा

2.4.6 कोनजोगा

2.4.7 बाघ और सुगना मुण्डा की बेटी

2.4.8 जंगल पहाड के पाठ

2.4.9 चाँद से पानी

2.4.10 आदिवासी की मौत

2.4.11 आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएँ

2.4.12 एक और जनी शिकार

2.4.13 नये हस्ताक्षर

2.4.14 अंगोर

2.5 नाटक

2.5.1 हिरमा की अमर कहानी

2.5.2 एक बार फिर

2.5.3 मोर्चा मानगढ

2.5.4 धरती आबा

2.5.5 पोस्टर

2.6 आलोचना

2.7 संस्मरण

2.8 यात्रा वृत्तान्त

2.8.1 साईबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक

2.8.2 जंगल जंगल जलियांवाला

2.9 व्यंग्य

2.9.1 ईमानदारी से आखिरी मुलाकात

2.9.2 गप्प करने की कला

2.10 पत्र-पत्रिकाएँ

2.10.1 अरावली उद्घोष

2.10.2 युद्धरत आम आदमी

2.10.3 आदिवासी सत्ता

2.10.4 आदिवासी साहित्य

2.10.5 झारखण्डी भाषा साहित्य, संस्कृति अखड़ा

2.11 निष्कर्ष

तीसरा अध्याय : **185-329**

समकालीन हिन्दी कविता में आदिवासी विमर्श

3.1 विषय प्रवेश

3.2 भूख्र

3.3 गरीबी

3.4 गुलामी

3.5 हाशियेकरण

3.6 अन्धविश्वास

3.7 बेरोज़गारी

3.8 निरक्षरता

3.9 स्त्री

3.10 परंपरावादी-रूढिवादी मानसिकता

3.11 पुरुषों की भोगवादी दृष्टि

3.12 यौन शोषण

3.13 अस्तित्व संकट

3.14 मुक्ति की कामना

3.15 बाल शोषण

3.16 मानसिक संत्रास

3.17 इतिहास बोध

3.18 विद्रोह

3.19 विस्थापन

3.20 आर्थिक शोषण

3.21 संस्कारों पर अतिक्रमण

3.22 आवास एवं पुनर्वास

3.23 बेदखल

3.24 अस्थायी खेती

3.25 भूमि हस्तांतरण

3.26 प्रवास/प्रवसन

3.27 निर्जनीकरण या जनह्रास

3.28 प्रदूषण

3.29 संचार

3.30 स्वास्थ्य

3.31 पर्यटन

3.32 खनन

3.33 पूँजीवादी शोषण

3.34 जातिवाद

3.35 धर्मान्तरण

3.36 नक्सलवाद

3.37 वैश्वीकरण

3.38 उदारीकरण

3.39 निजीकरण

3.40 शहरीकरण

3.41 बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ

3.42 प्राकृतिक आपदाओं का शिकार

3.42.1 सूखा

3.42.2 बाढ

3.43 वन संपदा का दोहन

3.44 सह अस्तित्व

3.45 जल संकट

3.46 विकिरण

3.47 सत्ता

3.48 निष्कर्ष

चौथा अध्याय : 330-345

आदिवासी कविताओं का शिल्प

4.1 विषय प्रवेश

4.2 भाषा

4.2.1 मिथकीय प्रयोग

4.2.2 प्रतीकात्मकता

4.2.3 व्यंग्यात्मकता

4.3 शब्द प्रयोग

4.3.1 पुनरावृत्ति

4.3.2 शब्द के नये प्रयोग

4.3.3 अंग्रेज़ी शब्द

4.3.4 लोक शब्द

4.4 शैली

4.4.1 स्मृतिपरक शैली

4.4.2 पत्रात्मक शैली
4.4.3 प्रश्नात्मक शैली
4.4.4 वर्णनात्मक शैली
4.4.5 नाटकीय शैली
4.4.6 लोक गीत
4.5 मुहावरे तथा कहावतें
4.6 शीर्षक का विस्तार
4.7 शीर्षकों का खण्डों में विभाजन
4.8 कविताओं का खण्डों में विभाजन
4.9 कविता के आकार-प्रकार में बदलाव
4.10 निष्कर्ष

उपसंहार **346-359**

परिशिष्ट **360-361**

अध्ययन की संभावनाएँ (Recommendations)

सहायक ग्रंथ-सूची **362-369**

प्राक्कथन

प्राक्कथन

सदियों के गुज़र जाने के बाद आज हम एक ऐसे युग में आ पहुँचे हैं जहाँ सही और गलत के बीच के फासलों को समझना मुश्किल सा हो गया है। ऐसे माहौल में समाज के उन हिस्सों की बात अत्यन्त दयनीय बन गयी है जो आज तक समाज की मुख्य धारा से कटे रहे। आदिवासी माने हमारे आदिम वंशज, जो सदियों से अशिक्षित, पिछडे एवं गंवार शब्द के हकदार रहे और आज इनके जीवन में वैश्विक प्रतिस्पर्धा की दुनिया ने असह्य एवं कठिनाइयों की बोझ खडी कर दी है। वर्तमान माहौल ने उनके जीवन और संस्कृति को तोड-मरोडकर रख दिया है। वैश्वीकरण, औद्योगीकरण आदि का धमाका उनकी नसों में घुसकर जीवन को तूफान बना दिया है। इसलिए आज उनकी समस्याएँ अति गंभीर होती जा रही हैं।

कविता साहित्य की महत्वपूर्ण विधाओं में से एक है। प्राचीन संस्कृति के संवाहकों केलिए आज समकालीन कविता मार्गनिर्देशक का काम कर रही है। भारत के प्राचीन ग्रन्थ रामायण, महाभारत आदि से लेकर प्रगतिवादी एवं जनवादी कविताओं में आदिवासी जीवन का ज़िक्र उपलब्ध होता है। किन्तु आज समकालीन कविता ने आदिवासी साहित्य को उभरने का अवसर प्रदान कर आदिवासियों को खुद अपने ज़ुबान खोलने का रास्ता खोल रखा है। यह बात ज़ाहिर है कि आदिवासी समस्याओं में सुधार हेतु राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय स्तर पर प्रयास चल रहे हैं। लेकिन ये आदिवासी जीवन में कहाँ तक सार्थक हुए हैं

यह सोचने की बात है। आदिवासी जीवन प्रकृति पर आश्रित है। आज आदिवासी एवं प्रकृति का दोहन एक साथ चल रहा है। अक्षरों से दूर आदिवासी आंगनों में आज विकास की आँधी इस प्रकार पाँव पसारी है जिससे बचना नामुमकिन सा हो गया है। इसलिए आदिवासी शोषण को रोककर आदि वंशजों एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण केलिए समकालीन आदिवासी एवं गैर-आदिवासी साहित्यकार जमकर प्रयास कर रहे हैं। हरिराम मीणा, अनुज लुगुन, निर्मला पुतुल, रमणिका गुप्ता, जसिन्ता केरकेट्टा, ग्रेस कुजूर, ओली मिंज जैसे अनेक कवियों की कविताओं का मूल उद्देश्य यही है।

यहाँ शोध केलिए चुना हुआ विषय है - 'समकालीन हिन्दी कविता में आदिवासी विमर्श'। अध्ययन की सुविधा केलिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को चार अध्यायों में बाँटा गया है-

पहला अध्याय है- 'आदिवासी विमर्श : परिवेश एवं परिप्रेक्ष्य।' आदिवासी जीवन की मान्यताएँ एवं परम्पराएँ एकदम भिन्न हैं और उसकी जडें बहुत मज़बूत एवं गहरी हैं। प्रत्येक सामाजिक नियमों का पालन कर ग्राम्य एवं जंगली जीवन को संजोए हुए यह समूह अपनी अलग सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विशेषताओं से संपन्न है। मूल रुप से देखा जाए तो प्रस्तुत अध्याय में आदिवासी एवं विमर्श शब्द के अर्थ एवं स्वरुप को व्यक्त करने के साथ इतिहास के पन्नों से ही हटा दिए गए आदिवासी जीवन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार उनके जीवन संस्कार पर दृष्टि केन्द्रित की है। साथ ही उनके क्रान्तिकारी जीवन को भी

जोडा है। इसके अतिरिक्त साहित्य में आदिवासी विमर्श का पदार्पण एवं उसके वर्तमान परिप्रेक्ष्य का संक्षिप्त विचार-विमर्श प्रमुख आदिवासी हस्ताक्षरों के परिचय के साथ किया है।

दूसरा अध्याय है- 'हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श- एक सर्वेक्षण।' हिन्दी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में आदिवासी की बहस आज ज़ोरों पर है। प्रस्तुत अध्याय में हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं में आदिवासी साहित्य की विकास यात्रा को जोडने का प्रयास हुआ है।

तीसरा अध्याय है- 'समकालीन हिन्दी कविता में आदिवासी विमर्श।' आदिवासी शोषण इक्कीसवीं शती में सबसे अधिक चर्चित विषयों में से एक है। विकास के नाम पर अनियंत्रित दोहन का शिकार बनता आदिवासी समाज आज बेघर और बेदखल के दरवाज़े पर दस्तक दे रहा है। प्राचीन संस्कृति के संवाहक एवं प्रकृति के संरक्षक होते हुए भी उनके मूल्यों को तहस-नहस कर सभ्य समाज भूमण्डलीकरण, औद्योगीकरण एवं पूँजीवाद के नाम पर सवार कर रहा है। आज की हाईटेक योजनाओं के कारण आदिवासी समाज लगातार पिसता जा रहा है। विस्थापन, बेदखल, भूमि अधिग्रहण आदि के मारे गरीब, अशिक्षित एवं पिछडे आदिवासी आज अपनी ज़ुबान चलाने को मजबूर हैं। मूल रूप से देखा जाए तो प्रस्तुत अध्याय में आदिवासी समस्याओं को समकालीन हिन्दी कविता के माध्यम से विभिन्न पहलुओं के मद्दे नज़र गहराई से परखने की कोशिश हुई है।

चौथा अध्याय है- 'आदिवासी कविताओं का शिल्प।' साहित्य में भावपक्ष एवं कलापक्ष दोनों का अहम एवं समान स्थान है। आदिवासी कविताएँ अपने नए शिल्प विधान के दौरान समकालीन हिन्दी कविता के चेहरा को ही बदल दिया है। अधिकांश आदिवासी भाषाएँ मौखिक है। आज आदिवासियों के साथ उनकी भाषा भी विलुप्त हो रही हैं। ऐसे में आदिवासी कवि अपनी भाषाओं के प्रति सचेत हो रहे हैं। यहाँ पर आदिवासी कविताओं के शिल्प पक्ष पर गंभीर विचार-विमर्श करने के साथ आदिवासी भाषाओं के ऊपर मंडरा रहे संकटों पर भी आशंका व्यक्त की है। अंत में 'उपसंहार' है, जिसमें इस शोध-प्रबन्ध का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कालिकट विश्वविद्यालय के विभागध्यक्ष एवं प्रोफेसर डॉ. प्रमोद कोवप्रत जी के निर्देशन में संपन्न हुआ है। उन्होंने व्यस्ततापूर्ण समय में मेरी जिज्ञासाओं, त्रुटियों को दूर कर अमूल्य सुझाव एवं समय-समय पर प्रेरणा देकर मुझे प्रोत्साहित किया है। उनके विद्वतापूर्ण निर्देशन, प्रेरणा, प्रोत्साहन तथा शुभ आशिर्वाद का फल है यह शोध प्रबन्ध। ज्ञान के आलोक से संपन्न गुरुवर डॉ. प्रमोद जी ने मेरे लिए जो उपकार किया है वह असीम है। उनके स्नेहाशीश को कृतज्ञता, आभार जैसे शब्दों से व्यक्त कर गुरु ऋण से मुक्त होना मेरे लिए असंभव है। उनके असीम स्नेह, सहयोग, प्रेरणा एवं प्रोत्साहन के लिए मैं सदैव उनका ऋणी हूँ।

विभाग के पूर्व प्रोफेसर आरसु जी एवं प्रो. सुधा जी से सामग्रियों की सूचना एवं प्रेरणा मुझे मिली है। उनके प्रति भी हृदय से हार्दिक आभार प्रकट

करती हूँ। विभाग के अन्य सभी गुरुजनों के प्रोत्साहन एवं सहयोग के लिए कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। मेरे जीवन साथी श्री. मुहम्मद रियास एवं परिवारवालों का पूर्ण सहयोग एवं प्रोत्साहन मुझे सदैव मिलते रहे। उन सबके प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ।

शोध कार्य में कवि हरिराम मीणा, अनुज लुगुन, निर्मला पुतुल, रमणिका गुप्ता, महादेव टोप्पो आदि कवियों से फोन व पत्राचार के माध्यम से विचार-विमर्श करने का मौका मुझे मिला है। इससे मैं बहुत लाभान्वित हुई हूँ। उन सभी कवियों के प्रति भी मैं हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ। इसके अतिरिक्त श्री. सुधीर वास्तव जी ने सामग्री संकलन में सहायता दी है। उनके प्रति भी मैं हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ। अंत में सभी हितैषियों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ।

हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

अनीसा बीगम. ए
शोध छात्रा

पहला अध्याय

आदिवासी विमर्शः परिवेश एवं परिप्रेक्ष्य

1.1 आदिवासी शब्द : अर्थ एवं स्वरुप

आदिवासी शब्द सुनते ही हमारे मन में वे लोग याद आते हैं जो जंगलों में रहते हैं और प्रकृति के अंचल में सोते हैं। आदिवासी शब्द दो शब्दों के मेल से बना है। 'आदि' और 'वास'। आदि शब्द का अर्थ है- 'पहला', 'आरम्भ', 'प्रथम', या 'मूल' और वास शब्द का अर्थ है 'निवास', 'रहना' या 'घर'। इस प्रकार 'आदिवास' शब्द का अर्थ होता है- 'मूल निवासी' या 'प्रथम निवासी'।

आदिवासी शब्द के सम्बन्ध में भारतीय एवं अभारतीय भाषाओं में कई अर्थ दिए गए हैं। "संस्कृत ग्रंथों में इन्हें आत्विका या वनवासी कहा गया है। प्राचीन ग्रंथों में भीम, किरात, निषाद इत्यादि नामों से जाना जाता था।"[1] उसी प्रकार अंग्रेज़ी भाषा में- "Tribe (Primitive Class) जनजाति, आदिम जाति, Group-वंश, Community- समुदाय"[2] आदि और हिन्दी भाषा में- "किसी स्थान पर रहनेवाले वहाँ के मूल-असभ्य तथा जंगली निवासी।"[3] इस प्रकार आदिवासी शब्द का अर्थ होगा- "जो लोग आदिकाल से इस देश की धरती पर रहते आ रहे हैं, उन्हें आदिवासी कहा जाता है : वे ही यहाँ (भारत) के मूल निवासी है।"[4]

पूरे भारत देश में जनजातियों की संख्या लगभग 12 करोड से ज़्यादा है। विशिष्ट जीवन शैली को अपनाते इन आदिवासियों का भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, भाषा, स्वतन्त्रता आन्दोलन, राष्ट्रीय विकास आदि में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। किन्तु पौराणिक काल से लेकर उनके बलिदान और महत्वपूर्ण योगदान

को इतिहास के पन्नों से ओझल रखा गया। वास्तव में बाहरी समाज इन्हें बंद समाज बना दिया।

आदिवासी समाज का सम्बन्ध जल-जंगल-ज़मीन से जुडा है। दुनिया के नवीन आविष्कारों से वंचित आदिवासी सदियों से अपनी परंपरा एवं संस्कृति को कायम रखता आ रहा है। असल में उनकी यह विशिष्ट जीवन शैली एवं सोच ही बाहरी समाज से उन्हें भिन्न कराती है। लेकिन आज उनमें परिवर्तन होने लगा है। नई विचारधाराओं एवं क्रान्तियों के कारण आधुनिक जीवन शैली की रंगीनियों से आदिवासी समाज परिचित होने लगा है। शिक्षा का अभाव उनकी सर्वाधिक समस्याओं का मूल कारण है। अपने पिछडेपन का कारण ढूँढकर आज आदिवासी शिक्षित होने लगा है। और अपनी संस्कृति, भाषा, इतिहास सब का पड़ताल कर बाह्य समाज से परिचित कराने का बोध जागा है। वास्तव में 'आदिवासी' शब्द को आदिवासी बना कर रखने से ही उनके अस्तित्व पर क्षति पहुँची है। बाह्य एवं विकसित समाज ने आदिवासियों को हमेशा से हाशियेकृत रखने का षडयंत्र रचा है। लेकिन वे भौगोलिक दृष्टि से अलग होते हुए भी उनकी समान संस्कृति एवं सभ्यता के कारण एकता के धागे में बाँधे गए। आदिवासियों को मुख्यधारा से जोडना एवं जुडाना शिक्षित समाज का कर्तव्य है।

1.2 परिभाषाएँ

आदिवासी याने आदिम निवासी देश के सुदूर अंचलों में बसते हैं। उनका जीवन अनेक विशिष्टताओं से संपन्न है। आदिवासियों का इतिहास और आदिवासी साहित्य या आदिवासी विमर्श की ओर जाने से पहले आदिवासी शब्द

पर विचार करना होगा। क्योंकि आदिवासी को समझे बिना आदिवासी साहित्य का एहसास करना मुश्किल है।

आदिवासियों से संबन्धित अनेक परिभाषाएँ अभारतीय एवं भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हैं। किन्तु आदिम जाति की परिभाषा विद्वानों ने अपने अनुभवों के आधार पर अलग-अलग रूप से की है। उनमें से कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं :-

भारतीय संस्कृति कोश में आदिवासी की परिभाषा इस प्रकार है- "आर्य एवं द्रविड भारत के इन दो मानव समाज को छोडकर उनसे भी पूर्व भारत में रहनेवाले अथवा दूसरे देश से आकर वन पर्वत इनके आश्रय में निवास जातीय समूह को वन्य जाति अथवा आदिवासी कहा जाता है।"[5]

उसी प्रकार हिन्दी विश्व कोश में- "आदिवासी शब्द का प्रयोग किसी क्षेत्र के मूल निवासियों केलिए किया जाना चाहिए, परन्तु संसार के विभिन्न भू-भागों में जहाँ अलग-अलग धाराओं में अलग-अलग क्षेत्रों से आकर लोग बसे हों उस विशिष्ट भाग के प्राचीनतम अथवा प्राचीन निवासियों केलिए भी इस शब्द का उपयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ इंडियन अमरीका के आदिवासी कहे जाते और प्राचीन साहित्य में दस्यु, निषाद आदि के रूप में जिन विभिन्न प्रजातीय समूहों का उल्लेख किया जाता उनके वंशज भारत में आदिवासी माने जाते हैं।"[6]

आदिवासियों से संबन्धित परिभाषाएँ उनके समुदाय, धर्म, लक्षण आदि के आधार पर विज्ञानियों एवं साहित्यकारों ने प्रस्तुत किया है। समुदायों की

परिभाषा करते वक्त मूल रुप से दो बातों पर ध्यान देना पड़ता है। पहला यह कि समूहों का निर्माण व्यक्तियों द्वारा होता है और प्रत्येक समूह का राजनीतिक एवं आर्थिक क्रियाओं का एक क्षेत्र होता है। इस क्षेत्र की परिधि में रखकर विस्तार से चर्चा करनी है।

आदिवासियों के सम्बन्ध में आक्सफॉड डिक्शनरी में बतायी परिभाषा को देखिए- "A tribe is a group of people in a primitive or burburous stage of development acknowledging the authority of a chief and usually regarding themselves as havings a common ancestor."[7]

उसी प्रकार प्रसिद्ध नृतत्वशास्त्री डॉ. डी.एन मजूमदार के अनुसार- "A tribe is a social group with territorial affiliation, Endogamous, with no specilization of functions, ruled by tribal officers, hereditary or otherwise, united in language or dialect, recognizing social distance from other tribes or castes but without traditions, beliefs and customs, illiberal of naturalization of ideas from alien sources above all consious of a homogeneity of ethnic and territorial integration."[8] मजूमदार के अनुसार आदिवासी समूह भौगोलिक दृष्टि से एक दूसरे से जुडा हुआ होना चाहिए। उसी प्रकार उनका निश्चित वास स्थान, संस्कृति, भाषा आदि के साथ सभी कल्पनाएँ प्रकृति पर निर्भर होना है।

उसी प्रकार ए.आर. देशाई के अनुसार- "Tribal communities or those who are still continued to the original forest habitats and follow the old

pattern of life."[9] अर्थात "आदिवासी समाज अथवा जो समाज अभी भी जंगल में रहता है और पुरानी पद्धति से जीवनयापन करता है।"[10]

मूल रूप से कहा जाए तो किसी समुदाय को आदिवासी परिभाषित करते वक्त उनके भौगोलिक परिस्थिति, संस्कृति, भाषा, आर्थिक स्तर जैसी अनेक बातों पर ध्यान देना अवश्य है। अतः मूल धारा से कटकर अपनी पैतृक परंपराओं का पालन करते हुए विशिष्ट जीवन-शैली को अपनाकर जीवन बितानेवाले आदिवासी हैं।

आदिवासी संस्कृति के संवाहक हैं। भारतीय संस्कृति की सही तस्वीर इनसे प्राप्त होती है। लेकिन आज बाज़ारवाद एवं सरकारी नीतियों से आदिवासी जीवन अतिसंकट से गुज़र रहा है। जल-जंगल-ज़मीन पर कब्जा, वन संपदा का दोहन, भूख, बेरोज़गारी, विस्थापन आदि आदिवासियों की प्रमुख समस्याओं से हैं। यह आदिवासी समाज के प्रति सभ्य समाज का विकृत व्यवहारों का नतीजा है।

जल-जंगल-ज़मीन के अमूल्य निधि कहलानेवाले आदिवासी आधुनिक प्रगति से दूर रहकर संस्कृति एवं सभ्यता की रक्षा कर रहे हैं। सभ्य समाज का अपमान, दमन और उत्पीडन का शिकार के बावजूद।

लेकिन वर्तमान के बदलते परिप्रेक्ष्य में आदिवासी शब्द या आदिवासी को किस प्रकार परिभाषित किया जाएगा यह सोचने की बात है।

1.3 विमर्श शब्द : अर्थ एवं स्वरुप

हिन्दी साहित्य में विमर्श शब्द आधुनिक काल की देन है। पिछले दो दशकों से लेकर यह संकल्पना चलती आ रही है। विमर्श शब्द को हिन्दी साहित्य में परिचय कराने का श्रेय प्रसिद्ध कथाकार और 'हंस' के संपादक रहे 'राजेन्द्र यादव' को दिया जाता है। संपादक अपना हिन्दी कथामासिक 'हंस' के ज़रिए स्त्री विमर्श, दलित विमर्श आदि विमर्शों का गंभीर चिंतन का माहौल बनाया।

'विमर्श' शब्द को लेकर अनेक अभारतीय एवं भारतीय भाषाओं में कई अर्थ बताए हैं- संस्कृत हिन्दी शब्द कोश में विमर्श से तात्पर्य- "विचार विनिमय, सोच-विचार परीक्षण, चर्चा से है।"[11]

उसी प्रकार अंग्रेज़ी विश्वकोश Encyclopedia Britannica में विमर्श के लिए अंग्रेज़ी पर्याय शब्द Consultation का अर्थ इस प्रकार बताते हैं- "The word 'conscious' has been used in many different senses. By origin it is a latin compound, mining knowing things together either because several things are known simultaneously."[12]

आजकल हिन्दी में विमर्श शब्द का प्रयोग अंग्रेज़ी के डिस्कोर्स (Discourse) शब्द केलिए प्रयुक्त माना जाता है। इस प्रकार विमर्श शब्द का शाब्दिक अर्थ होग किसी विषय पर गंभीर चर्चा या निरंतर संवाद।

मूल रुप से कहा जाए तो विद्वानों ने अपने-अपने मतानुसार अलग-अलग शब्दिक अर्थ विमर्श केलिए प्रयुक्त किया है। जैसे : सोच, विचार, चिंतन,

परामर्श आदि। विमर्श किसी भी विषय को लेकर हो सकता है। इसलिए इसका स्वरुप बहुत व्यापक है।

1.4 परिभाषाएँ

साहित्य में विमर्श शब्द का प्रयोग पिछले दो दशकों से गूँज रहा है। और उन विषयों पर विचार विमर्श या बहस चल रही है जिनकी अभी तक कहीं भी ज़िक्र न किया हो। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इस तरह इक्कीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य विमर्शों का साहित्य बन गया है।

आजकल विमर्श शब्द का उद्भव और उसके अर्थ को लेकर बहस चल रही है। इसलिए विमर्श शब्द की परिभाषाएँ भारतीय एवं अभारतीय भाषाओं में उपलब्ध होने लगी हैं। उनमें से कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं :-

हिन्दी भाषा में- ‘‘जब व्यक्ति किसी समूह में किसी विषय पर चिन्तन अथवा चर्चा-परिचर्चा आदि करता है तो उसे विमर्श कहा जाता है।’’[13]

उसी प्रकार एक और परिभाषा मिलती है- ‘‘जब कोई व्यक्ति किसी विषय को लेकर अकेले में गहन, चिन्तन, मनन करने किसी समूह में जाकर उस विषय पर अन्य व्यक्तियों से तर्क वितर्क करता है तो उसे विमर्श कहते हैं।’’[14]

अंग्रेज़ी भाषा में विमर्श शब्द केलिए डिस्कोर्स (Discourse) शब्द प्रयुक्त है। इसलिए डिस्कोर्स शब्द को केन्द्र में रखकर कोलिन्स इंग्लीश डिक्शनरी में विमर्श शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी है- "Discourse is spoken or written

communication between people, especially serious discussion of a particular subject."[15]

एक और परिभाषा उपलब्ध है- "A discourse is a serious talk or piece of writing which is intended to teach or explain something."[16]

इस प्रकार विमर्श शब्द का शब्दिक अर्थ के अनुसार उसकी परिभाषा में भी अधिक गहनता पायी जाती है।

दरअसल समकालीन साहित्य में विमर्शों की शुरुआत सन् 1991 से मानी जाती है। क्योंकि इस समय वैश्वीकरण, उदारीकरण एवं निजीकरण जैसी प्रवृत्तियाँ लागू होने लगीं। इनके फलस्वरुप सामाजिक परिवर्तनों में हलचल मचने लगी। विकास की तेज़ दौड में ऐसे कई समाज पिसते गए कि उनका फिर से खडा होना नामुमकिन सा हो गया। इस तरह कई राजनीतिक एवं सामाजिक आन्दोलन शुरु हुए। उसी तरह साहित्यिक आन्दोलन का रुप ले लिया।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सामाजिक परिवर्तनों एवं चुनौतियों के कारण विमर्श शब्द साहित्य को खडा करने का एक अनोखा शब्द बन गया है। इसलिए उसकी परिभाषा एवं अर्थ व्यापक होते जा रहे हैं।

1.5 ऐतिहासिक परिवेश

मानव जाति का विकास धीरे-धीरे ही हुआ है। अनुमान से कह सकते हैं कि मनुष्य का जन्म मूलतः अफ्रीका में हुआ था। आगे दस हज़ार वर्ष पूर्व तक

वे आदिवासी जीवन ही जीते रहें। धीरे-धीरे अपने बुद्धि बल और सोच-विचार के ज़रिए जीवन को सुधारने का प्रयास किया। इस प्रकार प्रकृति और जंगल पर निर्भर होते हुए भी वे दुनिया के कोने-कोने में जा पहुँचे और उनमें विविधता होने लगी। मानव जीवन की प्रगति इसका परिणाम है।

भारत के ऐतिहासिक काल का पता लगाने केलिए उस समय प्राप्त ग्रन्थ, मुद्राएँ, अभिलेख, विदेशी विवरण, प्राचीन स्मारक जैसे अनेक साधन हैं। लेकिन पूर्व ऐतिहासिक काल का पता लगाना कठिन कार्य है। उस समय प्राप्त औजार, बर्तन आदि के सहारे पुरातत्व विद्धानों ने इस काल का अध्ययन किया है।

मानव जीवन की विकास यात्रा के दौरान ही आदिवासियों का ऐतिहासिक परिवेश का अध्ययन संभव हो सकता है। इसलिए भिन्न-भिन्न काल में आदिवासी जीवन के संदर्भ में संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

1.5.1 पाषाण काल

मानव जीवन का प्रारम्भिक काल पाषाण काल नाम से जाना जाता है। मनुष्य इस काल में जंगली जीवन ही जीते थे। अपने जंगली जीवन में उन्होंने पत्थर का औजार बनाना शुरू किया। इस समय वे नंगे रहते थे। बाद में वृक्षों के पत्तों से शरीर ढकने लगे। इनका निवास स्थान गुफाएँ थीं। कभी-कभी जंगली जानवरों से सुरक्षित रहने केलिए पेड के ऊपर भी रहा करते थे। पानी की सुविधा केलिए नदियों के किनारे रहने लगे। प्राकृतिक चीज़ों से अपनी भूख

मिटायी। कालान्तर में मछली पकडना और पशुओं का शिकार करना शुरु किया। इस काल में मनुष्य अपनी आवश्यक वस्तुएँ पत्थरों से बनाते थे। इस प्रकार यह युग पाषाण काल नाम से जाना गया।

1.5.2 उत्तर पाषाण काल

उत्तर पाषाण काल तक मानव जीवन में काफी बदलाव आ गया। पत्थरों के हथियार अधिक सुन्दर, सुडौल तथा चमकीले बनाये गये। इस काल में कृषि की खोज हुई। खेती के कारण मनुष्य निश्चित स्थान पर स्थायी रुप से रहने लगे। खेती केलिए औजारों की आवश्यकता होती थी। इसलिए चाकू, कुल्हाडी, बाण, धनुष, हल आदि औजारों का इस्तेमाल करने लगे। कुछ लोग लकडी का काम करते थे। धीरे-धीरे उनका एक अलग वर्ग बन गया। मिट्‌टी के बर्तन बनानेवाले कुम्हार नाम से जाने जाते थे। इस काल में पशु पालन में भी मनुष्य का ध्यान गया। गाय, भैंस, बकरी, घोडा आदि जानवरों को पालना शुरु किया। धीरे-धीरे कपडे बनने लगे। इस समय लोग देवी-देवताओं की उपासना भी करने लगे।

1.5.3 ताम्र काल

उत्तर पाषाण काल के बाद ताम्र काल आरम्भ होता है। इस काल तक मनुष्य को ध्यान में आया कि पत्थरों से ज़्यादा धातुओं से चीज़ें बनाना अधिक सुविधा जनक है। उत्तर भारत में ताम्बे का औजार बनाना शुरु हुआ। इस काल में पक्की ईंटों का उपयोग करना सीख लिया था। और उनके घर अधिक

मज़बूत और सुन्दर बन गये। पशुओं की संख्या बढने लगी तो उनको रहने की उचित व्यवस्था करने लगे। पहले-पहल बोझ ढोने का काम मनुष्य स्वयम करते थे। लेकिन ताम्र काल में वह पशुओं तथा गाडियों के द्वारा बोझ़ ढोने लगे। बोझ ढोने केलिए बैल, गधे, ऊँठ, घोडे आदि जानवरों का उपयोग करने लगे। पशुओं के साथ-साथ पहियेदार गाडियाँ चलाने लगीं। जल यात्रा केलिए नावों का निर्माण आरम्भ हुआ।

धातु के काम में कुशलता की आवश्यकता थी। इसलिए अपने कार्य में निपुणता प्राप्त करने केलिए लोग अपने कार्य में लगे रहने लगे। इस प्रकार विशेषज्ञ होने लगे जो अपने कार्य में बडे कुशल थे।

कृषि के दौरान प्रकृति की कृपा पर लोग अत्यधिक निर्भर रहने लगे। इस प्रकार प्राकृतिक शक्तियों में इनका बड़ा विश्वास हो गया और देवी-देवताओं के रूप में प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करने लगे। पूजा केलिए मंदिरों का निर्माण आरम्भ हुआ।

1.5.4 लौहकाल

लौहकाल में मनुष्य अपनी आवश्यक चीज़ें लोहे से बनाते थे। इस समय ताम्बे के अलावा सोना, चाँदी आदि धातुओं का भी प्रचार हुआ। इस प्रकार मालों का उत्पादन और उपजों का आदान-प्रदान आरम्भ हुआ। सम्पत्ति की वृद्धि होने लगी। समाज में दरिद्र और धनी का भेद भाव पैदा हो गया।

1.5.5 सिन्धु घाटी सभ्यता

लौह काल के बाद सिन्धु घाटी सभ्यता की शुरुआत हुई। असल में सिन्धु घाटी सभ्यता की स्थापना मूल निवासियों ने की थी। कृषि की खोज के बाद जनजातियों के जीवन में काफी बदलाव आने लगा। लेकिन कम लोगों ने ही खेती को स्वीकारा। कुछ जनजातियाँ जंगली जीवन और कुछ जनजातियाँ ग्राम्य जीवन बिताती रहीं। और कुछ जनजातियाँ नगरीय जीवन से जुडकर सिन्धु संस्कृति में मिल गयीं। हडप्पा तथा मोहनजदाडो सिन्धु घाटी के सबसे बडे नगर थे। हडप्पा वर्तमान लाहोर के दक्षिण-पश्चिम भाग में तथा मोहनजदाडो कराची से करीब 400 मील दूरी पर स्थित है। विद्वानों का मानना है कि सिन्धु घाटी सभ्यता दक्षिण भारत तक फैली थी। सिन्धु संस्कृति ने समुद्र मार्ग से मेसोपोटोमिया संस्कृति से संपर्क रखा। इस प्रकार भारत का व्यापारिक संबन्ध अन्य देशों तक जा पहुँचा। मानव पाँच हज़ार वर्ष पूर्व तक सुदृढ समाज व्यवस्था, शिल्पकला, मिट्टी से लेकर विभिन्न धातुओं का उपयोग, कृषि, पशुपालन, वाणिज्य जैसे अनेक क्षेत्रों में अपनी सभ्यता का नमूना पेश किया। इसी बीच आर्यों का आगमन हुआ और आर्यों एवं अनार्यों के बीच युद्ध रहा। जिसमें अनार्यों को पराजित होना पडा। इस प्रकार मूल आदिवासी सिन्धु संस्कृति और आर्य परम्पराओं के बीच आ गए।

1.5.6 वैदिक काल

भारतीय आर्यों के इतिहास का प्राचीनतम युग को वैदिक युग कहते हैं। वैदिक काल के दो भाग हैं- ऋग्वेदिक काल और उत्तर वैदिक काल।

1.5.6.1 ऋग्वेदिक काल

सिन्धु घाटी सभ्यता में ग्राम्य नगरीय और धनी-दरिद्र का भेद भाव था। लेकिन ऋग्वेदिक काल तक समाज में आर्य और अनार्य दो भाग बन गये। वैदिक व्यवस्था में मुखिया राजा होता था। राजा का प्रमुख कार्य दस्यु या दास के विरुद्ध लड़ना था। ये दस्यु अनार्य थे। ये जातियाँ नगरीय सभ्यता से दूर ग्रामों व पहाडों में रही हैं। अपनी संस्कृति को लेकर फिर धीरे-धीरे समग्र में समाहित हो गईं।

वैदिक काल में धर्म को सर्वोपरि मानते थे। इस प्रकार मानव जाति पर हिन्दू धर्म का प्रभाव होने लगा। आर्यों की सामाजिक व्यवस्था वर्ण पर आधारित थी। कर्म के अनुसार मनुष्य चार वर्गों में विभक्त हो गए। सबसे पहले ब्राह्मण लोग आते थे। पढना-पढाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना और लेना इनके प्रमुख कर्म थे। अतः समाज का भौतिक आध्यत्मिक विकास इनके हाथों सौंप दिया गया। युद्ध करना, शासन चलाना क्षत्रियों के हाथ में था। खेतीबाडी तथा वाणिज्य व्यापार में लगाव रखनेवाले वैश्य कहलाये। सबसे नीच शूद्रों का स्थान रहा। शूद्र लोग बाह्मण, क्षत्रीय एवं वैश्यों का सहायकों के रुप में काम करते थे। विभाजन के बावजूद भी सामाजिक संकीर्णता नहीं थी। सब अपने-अपने कर्मों को खुशी से निभाते रहें।

1.5.6.2 उत्तर वैदिक काल

उत्तर वैदिक काल में आर्य धीरे-धीरे पूर्व और दक्षिण में फैल गए। राजा का प्रताप बढने लगा। इसके फलस्वरूप राजनीतिक परिवेश में बदलाव होने

लगा। धर्म का स्वरूप जटिल होता गया। वैदिक धर्म के स्थान पर अंधविश्वासों और अनाचारों की प्रधानता हुई। ब्राह्मणों का प्रभाव बढा तो ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच संघर्ष पैदा हो गया। कर्म के अनुसार निर्मित वर्णाश्रम व्यवस्था जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो गयी। इस प्रकार उत्तर वैदिक काल तक समाज में जाति प्रथा तथा छुआ-छूत की भावना व्याप्त हो गई। समाज प्रत्येक वर्गों में विभक्त होने से प्रत्येक दण्ड विधान भी शुरू हो गया। अपराध केलिए विभिन्न वर्गों के लोगों केलिए अलग-अलग दण्ड विधान था। आदिवासी समुदाय के सदस्यों को उसकी जाति के कारण अधिक कठोर दण्ड दिया गया।

1.5.7 ज़मीन्दारी व्यवस्था

उत्तर वैदिक काल के बाद समाज में सामन्ती, ब्राह्मण, प्रभुत्ववालों का शासन प्रणाली चलने लगी। इस प्रकार आदिवासी कबीलों एवं समूहों को धीरे-धीरे जातियों में रूपान्तरित करके ऊँच-नीच के ढाँचे में डाल दिया गया। तत्कालीन समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था एवं छुआ-छूत के कारण उच्च जाति के लोग निम्न वर्ग के साथ क्रूर व्यवहार करते रहे। निम्न जाति की स्त्रियों और बच्चों को ज़्यादा सहना पड़ा। ऐसी सामाजिक व्यवस्था से डर कर आदिवासियाँ जंगलों एवं पहाडों में जा कर बस गए। फिर भी गुलामी जीवन का असर उन पर पडता रहा।

1.5.8 जैन एवं बौद्ध धर्म का प्रचार

जाति व्यवस्था के कारण समाज में कई परिवर्तन हुए। इस प्रकार सब की प्रतिक्रिया के रूप में नूतन मौलिक विचारों का प्रतिपादन हुआ। वैदिक धर्म का पतन और सामाजिक व्यवस्था के कारण जनता मोक्ष प्राप्ति के रास्ते खोजने लगे। इसके फलस्वरुप जैन एवं बौद्ध धर्म का उदय हुआ। जैन एवं बौद्ध धर्म के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में काफी परिवर्तन हुआ।

1.5.9 मुसलमानों का आगमन

भारत के साथ अरब सिन्धु घाटी की सभ्यता के समय से संबन्ध रखते आये हैं। इसलिए भारत की अपार संपत्ति से वे पहले ही परिचित थे। संपत्ति की लूट और इस्लाम धर्म का प्रचार मुसलमानों का प्रमुख उद्देश्य था। इस उद्देश्य से वे ग्यारहवीं सदी तक भारत आ पहुँचे। यह उनके लिए उचित समय था। क्योंकि भारतीय समाज जाति व्यवस्था के कारण छिन्न-भिन्न हो रहा था। हिन्दुओं पर जाति-उपजातियों का प्रचार ज़ोरों पर था। इससे इस्लाम के प्रचार में सुविधा हुई। मुसलमान शासकों ने सबसे पहले मध्यभारत, बिहार और छोटानागपुर के आस पास रहने वाले आदिवासियों पर हमला किया, बाद में असम की तरफ़ चले गए। इस प्रकार कई जनजातियों ने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया। धीरे-धीरे मुसलमान भारत भर शासन करने लगे।

1.5.10 यूरोपियों का आगमन

भारत ने यूरोपियों के साथ भी व्यापारिक संबन्ध रखा था। लेकिन कालान्तर में यहाँ की संपत्ति को देखकर यूरोपीय भी भारत आ पहुँचे। जितनी

भी जातियाँ भारत में आयी थी, वे सब उत्तर पश्चिम के पर्वतीय मार्ग से आती थीं। लेकिन यूरोप के लोगों ने समुद्रीय मार्ग से भारत में आना आरम्भ किया। भारत में आनेवाले यूरोपियों में पुर्तगली, डच्च, अंग्रेज़ और फ्रांसीसी आते हैं। यूरोपियों का मूल उद्देश्य भारत की संपत्ति को लूटना था। साथ ही वे ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार करने लगे। भारत के राजा लोग यूरोपियों से मिलकर भारतवासियों के साथ ही अन्याय एवं अत्याचार करने लगे। अभी तक के अन्यायों से बढकर यूरोपियों का अत्याचार था। इस तरह कई आन्दोलनों का उदय होने लगा। आदिवासी जनता अपने अस्तित्व को कायम रखने केलिए यूरोपियों के खिलाफ संघर्ष करती रहीं। ताना भगत आन्दोलन, खरवार आन्दोलन, मुंडा आन्दोलन आदि जनजातियों के प्रमुख आन्दोलन रहे। लेकिन इतिहास के पन्नों में इन आदिवासी आन्दोलनों और नेताओं का कहीं भी उल्लेख लगभग नहीं मिलता।

मानव विकास के आरम्भ से अब तक के अर्जित ज्ञान एवं कार्य व्यवहार के सिद्धान्तों के दौरान यह पता चलता है कि आदिवासियों को अब तक प्रचलित इतिहास प्रवाह में कोई व्यापक रूप से परिवर्तन नहीं हुआ है। भारतीय संस्कृति चार बडी क्रान्तियों का इतिहास है। यह चार क्रान्तियाँ हैं- आर्यों का आगमन, बुद्ध तथा महावीर का अवतरण, इस्लाम धर्म का आगमन और यूरोपियों का आगमन। भारत में समय-समय पर बाहर से आनेवाली अनेक जातियों एवं वंशों के कारण आदिवासी भौगोलिक प्रदेश में समाहित होते गए।

मनुष्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था में आदिवासी जीवन ही जीता रहा। सिन्धु घाटी सभ्यता तक आर्य अनार्यों को सहायता एवं प्रेरणा की ज़िम्मेदारी आवश्यक रुप से समुदाय एवं शासक दोनों के द्वारा सम्मिलित रुप से निभाई जाती थी। लेकिन राजपुतों के उदय के बाद नवीन राजनीतिक परिवेश के कारण आदिम जाति मुख्य धारा से अलग होते गए। वे सत्ता की वंचना के पात्र बनते गये। इस प्रकार उनका निवास स्थान कठोर भौगोलिक प्रदेश होता गया। बौद्ध एवं जैन धर्म के प्रादुर्भाव से समाज की कुछ व्यवस्थाओं एवं स्थिति में काफी हद तक सुधार हुआ लेकिन आदिवासी समाज हाशियेकृत होता गया। बाद में मुसलमानों और यूरोपियों का आगमन हुआ। इनके ख़िलाफ आदिवासी संघर्ष करते रहे।

कालान्तर के बाद अंग्रेज़ भी यहाँ से चले गए। सदियों के गुज़र जाने के बाद आज हमने इक्कीसवीं सदी की दुनिया में कदम रखा है। यह समय बाज़ारीकरण का है। अंग्रेज़ तो चले गए लेकिन उपनिवेशन का नया रास्ता यहाँ जारी है। अंग्रेज़ों ने किस कदर ईस्ट इंडिया कंपनी के दौरान भारत को लूटा था उसी तरह आज बाज़ारीकरण के माध्यम से बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत को लूट रही हैं। लेकिन यह समय इतिहास विहीन कर दिए गए उन मनुष्यों को अपने बारे में सोचने विचारने और जीवन की सुविधाओं को पाने का अवकाश देना चाहता है। उनके सपनों, आशाओं, चुनौतियों और संघर्ष के इतिहास पर आज चर्चा हो रही हैं।

भारत में हाशिए के लोगों का विमर्श शुरू हो गया है। आदिवासी भी अपने अधिकार के प्रति जागरुक हैं। सदियाँ आती जाती रहीं लेकिन उनकी स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया। लेकिन अब उनके सपने भी बड़े हो गए हैं और ये भी देश के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास की समान धारा में आगे आना चाहते हैं। इसका नमूना है कि अब आदिवासी स्वयं लेखनी चला रहे हैं। सिर्फ साहित्य के क्षेत्र में नहीं बल्कि अन्य क्षेत्रों में भी आज आदिवासियों की आवाज़ ज़ोरों पर है।

1.6 विविध आन्दोलन

भारत में ऐसा कोई वर्ग नहीं है जो अंग्रेज़ों के विरुद्ध संघर्ष न किया हो। भारत में स्वतंत्रता संग्राम सन् 1857 में हुआ था लेकिन इससे पूर्व आदिवासियों ने कई आन्दोलन किए हैं। पर इतिहास में कहीं भी दर्ज नहीं किया है। इस महत्वपूर्ण कमी के कारण भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में एक शून्यता अवश्य दिखाई देती है। इस कमी को मिटाने केलिए हमें भारत भर में व्यापक रुप से फैले उन जनजातीय समुदायों की संघर्ष गाथा को नज़दीक से देखना होगा जिन्होंने अपने अधिकारों की रक्षा केलिए अंग्रेज़ों के खिलाफ संघर्ष किया है। अतः विदेशी ताकत के खिलाफ आदिवासियों की भूमिका को रेखांकित किया जाना अवश्य बात है ताकि आनेवाली पीढी स्वतंत्रता सेनानियों के साथ आदिवासी सेनानियों एवं उनके आन्दोलनों को याद रख सके। आदिवासियों के प्रमुख आन्दोलन इस प्रकार हैं :-

1.6.1 चुआर आन्दोलन (1767-1805)

अंग्रेज़ों की औपनिवेशिक नीति और ज़मीन्दारों के शोषणचक्र के चलते आदिवासियों को अभावग्रस्त और भूखमरी से जीवन व्यतीत करना पड़ा। इसके फलस्वरुप उनमें असंतोष की भावना व्याप्त हो गयी। और वे इस शोषण से छुटकारा पाने केलिए बेताब हो गए। पहले 'मांझी' और 'खेरा' आदिवासियों ने ब्रिटिश और ज़मीन्दारों के खिलाफ विद्रोह किया। बाद में इन्हें दबा दिया गया तो चुआर ने विद्रोह किया। प्रस्तुत आन्दोलन के नेता महेशपुर राजा की रानी सर्वेश्वरी थी। प्रस्तुत आन्दोलन को शान्त करने केलिए अंग्रेज़ों को इनकी भूमि वापस देनी पडी। लेकिन भूमि पर पूरा नियन्त्रण अंग्रेज़ों को ही था।

1.6.2 चेर आन्दोलन (1771-1819)

चेर आन्दोलन का उदय पलामू क्षेत्र में हुआ था। सन् 1772 में पलामू में अंग्रेज़ों का हस्तक्षेप हुआ। पलामू किले को हस्तगत करना अंग्रेज़ों का मूल उद्देश्य रहा। अंग्रेज़ों की सेना ने कैप्टन कैमेक के नेतृत्व में पलामू किले पर आक्रमण किया लेकिन उन्हें जबर्दस्त विरोध का सामना करना पडा। धन की लालच देखकर अंग्रेज़ों ने वहाँ के राजा (उदवत्त राय) को अपने वश कर लिया। अंग्रेज़ों ने अपना अधिकार जमाकर अधिक कर वसूल करने लगा। यह देखकर चेरों को विद्रोह करना पड़ा।

उसके बाद सन् 1783 ई. में चूडामन राय वहाँ के राजा बने। राजा भी अंग्रेज़ों के साथ मिला हुआ था। फिर से विद्रोह जाग उठा। सन् 1800 ई. में

भूखन सिंह के नेतृत्व में चेर लोगों को आन्दोलन करना पडा। कर्नल जोन्स के नेतृत्व में दो साल तक युद्ध चलता रहा। सन् 1814 तक पलामू अंग्रेज़ों के अधीन में था। सन् 1814 में अंग्रेज़ों ने अपना शासन राजा घनश्याम सिंह को सौंप दिया। लेकिन सन् 1817 में फिर से विद्रोह भड़का। अंत में पलामू का पूर्ण अधिकार अंग्रेज़ों के हाथ आ गया और 'खास महल' नाम दिया।

1.6.3 तमाड आन्दोलन (1782-1821)

तमाड आन्दोलन की शुरुआत सन् 1782 में हुई। तमाड और उसके आस-पास के इलाके में फैलनेवाली नये शासन प्रणाली के कारण वहाँ की आदिवासी जनता असंतोष में थीं। प्रस्तुत आन्दोलन के नेता 'ठाकुर भोलानाथ सिंह' थे। मुंडा, मानकी और घटवालों ने मिलकर आन्दोलन में भोलानाथ को सहयोग दिया। परन्तु लेफ्टिनेंट कपूर की सेना ने आन्दोलन दबा दिया।

सन् 1789 में फिर से विद्रोह हुआ। यह विद्रोह सन् 1794 तक चलता रहा। छोटानागपुर के उरांव जनजाति ज़मीन्दारों के शोषण से परेशान थे। ज़मीन्दार ने अंग्रेज़ों की मदद से आन्दोलन संभाला। आदिवासियों की ज़मीन छीन ली गयी और कई प्रकार के कर लागु किए। इसके खिलाफ सन् 1819-20 में तमाड़ के मुण्डा लोगों ने विद्रोह किया। नेता रुगुदेव और कोन्ता थे। कई महीने रफसेज़ के नेतृत्व में कारवाई चलती रही और अन्त में जेल भेजे गए।

1.6.4 संथाल परगना आन्दोलन (1784)

संथाल परगना आन्दोलन का नेतृत्व 'तिलका मांझी' ने किया। संथाल परगना क्षेत्र के आदिवासी अंग्रेज़ों के शोषण एवं उत्पीडन से असंतोष थे। अग्रेज़ों का शासन देखकर तिलका मांझी उनका खजाना लूट लिया और बिना किसी भेद भाव से आदिवासियों को बांट दिया। आदिवासी उसे अपना मुक्तिदाता समझते थे। इस प्रकार उसके पास बडी संख्या में आदिवासी जुटने लगे। सन् 1784 में तिलका मांझी अपनी सेना के साथ अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह किया। विद्रोह के बीच तिलका मांझी अंग्रेज़ी कप्तान क्लीवलैंड की छाती में तीर मार दी। तिलका मांझी ने समझा कि अंग्रेज़ी सेना की हिम्मत टूट गई है। इसी अवसर पर वह जश्न मना रहे थे। उस समय तिलका मांझी के कई सहयोगियों को गिरफ्तार कर लिया गया। मांझी वहाँ से बच निकला और सुल्तानगंज में पहुँचकर छापामार युद्ध चलाते रहे। अन्त में अंग्रेज़ी सेना ने तिलका को गिरफ्तार कर लिया और फाँसी की सज़ा दे दी।

1.6.5 हो आन्दोलन (1820-21)

सन् 1820-21 में हो लोग अंग्रेज़ी सरकार एवं ज़मीन्दारों के खिलाफ अनियमित रूप से राजनीति अपनाई। उस समय सिंहभूम का राजा जगन्नाथ सिंह था। राजा आदिवासियों को अपना कठपुतली समझता था और उनके साथ दुर्व्यवहार करता था।

अंग्रेज़ों की सहायता से पोडाहाट के राजा और सिंहभूम के ज़मीन्दारों ने हो लोगों के प्रति अपना शोषण ज़ोर करने को चाहा। हो जाति के मन में हिंसात्मक भावना जाग उठी। इसके फलस्वरुप आन्दोलन मचा। मेजर रफसेज़ के नेतृत्व में आन्दोलन हुआ हो लोगों को आरम्भ में सफलता प्राप्त हुई पर अन्त में हार मानना पड़ा। इसके बाद सन् 1821 में हो लोग फिर से अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह किया। कर्नल रिचड्र्स के नेतृत्व की सेना ने हो लोगों को हरा दिया और अन्त में ब्रिटिश सरकार से समझौता करना पड़ा।

1.6.6 कोल आन्दोलन (1831-32)

सन् 1831 में झारखण्ड के छोटानागपुर में एक आन्दोलन मचा जो कोल आन्दोलन नाम से जाना जाता है। यह आन्दोलन पहले के विद्रोहों से अधिक भयानक रहा। इस आन्दोलन का मुख्य नेतृत्व मुण्डा और हो लोगों को था। इनके अलावा ओराव, खरवार और चेरो जनजाति भी शामिल थे। मुण्डा और हो लोगों ने मिलकर ऐसा विद्रोह चलाया कि ज़मीन्दार और अंग्रेज़ों के मन में थोडी देर केलिए तो सही डर की भावना खडी कर दी।

प्रस्तुत आन्दोलन का मूल कारण आदिवासियों की भूमि पर गैर-आदिवासियों का अधिकार और उससे उत्पन्न समस्याएँ थीं। अंग्रेज़ लोग वसूली केलिए आदिवासियों के ज़मीनों को मनमानी ढंग से अपनाते थे। इसके लिए ज़मीन्दारों पर दबाव डालते और ज़मीन्दार आदिवासियों पर अत्याचार करते थे। अंग्रेज़ों के कहने से ज़मीन्दार आदिवासी स्त्रियों पर दुर्व्यवहार करते थे।

प्रस्तुत आन्दोलन के प्रमुख नेतागणों में सिंगराय मानकी, बिन्दराय मानकी और सुरगा मुण्डा आदि का नाम उल्लेखनीय हैं।

1.6.7 बुधो भगत आन्दोलन (1832)

बुधो भगत एक धार्मिक नेता थे। उन्होंने अंग्रेज़ों का शासन और उसकी नीति के विरुद्ध चुरिया भू-भाग में आन्दोलन किया। उनका मानना था कि अंग्रेज़ों के गुलामी से बेहतर मृत्यु उत्तम है। बुधो भगत ने अपने पुत्रों और रिश्तेदारों के अतिरिक्त शिष्यों के साथ मिलकर अंग्रेज़ों के विरुद्ध आन्दोलन चलाया। वे बडी चालाकी से आक्रमण किया लेकिन अंग्रेज़ों की ताकत के सामने हार माननी पडी और जान कुरबान कर दी।

1.6.8 भूमिज आन्दोलन (1832)

भूमिज आन्दोलन की शुरुआत सन् 1832 में हुई थी। गंगा नारायण के नेतृत्व में इस आन्दोलन की शुरुआत हुई। लेकिन प्रमुख नेता बिन्दराय मानक था। इसका प्रभाव सिंहभूम और वीरभूम क्षेत्र में पड़ा। अंग्रेज़ी सरकार द्वारा बढाया गया राजस्व कर को चुका कर जीवनयापन करने में आदिवासी एवं किसान लोग असहाय हुए। उनमें असंतोष की भावना इतनी व्याप्त हो गयी कि आन्दोलन करने चले। इस आन्दोलन को दबाने केलिए अंग्रेज़ लोगों ने बैंडन एवं लेफ्टिनेंट टिमर को नेतृत्व दिया। गंगा नारायण ने सिंहभूम के हो लोगों से मदद मांगी। क्योंकि उस समय हो लोग खरसवा के ठाकुर का विरोध कर रहे थे जो अंग्रेज़ों के साथ मिला हुआ था। लेकिन इस आक्रमण में गंगा नारायण को

मार दिया गया और ठाकुर उसका सर काट कर अंग्रेज़ी अधिकारी कैप्टन विलकिन्सन के पास भेजा। उसके बाद यह आन्दोलन शान्त हो गया।

1.6.9 संथाल आन्दोलन (1855-57)

संथाल जनजातियों की सामाजिक व्यवस्था बिलकुल भिन्न थी। उनकी अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर थी। लेकिन भारत में जब औपनिवेशिक शासन स्थापित हो गया तो अंग्रेज़ों द्वारा अपनाई गई नीतियों ने आदिवासियों पर काफी बुरा प्रभाव डाला। समूचा अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया। संथालों ने देखा कि ज़मीन्दारों और साहूकारों के शोषण और अत्याचार के साथ ब्रिटिश अधिकारी मिले हुए थे। भूमि के हस्तांतरण, साहूकारों के आर्थिक शोषण, सामाजिक जीवन में आ रहे परिवर्तन से संथाल आदिवासियों को अपनी संस्कृति और अपनी आर्थिक स्थिति के विनाश की संभावना नज़र आने लगी। इस प्रकार सन् 1855 में भगनाडीह नामक स्थान पर संथालों की एक विशाल जन सभा हुई जिनमें अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा की गई। संथाल आन्दोलन के नेता सिद्धु और कान्हु थे। सिद्धु, कान्हु के फांसी के बाद नेतृत्व का अभाव और अस्त्र-शस्त्र की कमी के कारण अंग्रेज़ी सेना द्वारा संथाल विद्रोह को कुचल दिया गया।

1.6.10 खरवार आन्दोलन

सन् 1855 के संथाल आन्दोलन के बाद वातावरण शांतिपूर्ण नहीं रहा। महाजनों के शोषण से आदिवासी जन फिर से विद्रोह केलिए तैयार हो गए।

इस आन्दोलन का नाम खरवार आन्दोलन था। सन् 1871 में यह आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था। प्रस्तुत आन्दोलन के नेता 'भागीरथी मांझी' थे। उनका मूल उद्देश्य हिन्दुओं के सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाज़ों का पालन करते हुए संथालों में विकास लाना था। लेकिन आन्दोलन राजनीतिक रूप ले लिया तो भागीरथी को गिरफ्तार कर लिया गया। यह आन्दोलन हज़ारीबाग में भी फैला था। वहाँ इसके नेता 'दुबिया गोसाई' था। उन्होंने सन् 1881 में मतगणना का विरोध किया। स्वयं को शुद्ध करना और अच्छा इन्सान बनना उनका मूल उद्देश्य रहा पर लोगों के मन में उन्हें जगह नहीं बन पायी। अंत में इस आन्दोलन को दबा दिया गया।

1.6.11 कोरवा आन्दोलन

कोरवा आदिवासी समूह पलामू और सरगुजा के वनों में अपना स्वतंत्र जीवन बिता रहे थे। लेकिन सरगुजा के राजा ने उनके जीवन में असंतुष्ट पैदा करने की कोशिश की और कोरवा आदिवासी लोगों ने राजा के खिलाफ विद्रोह किया। इस आन्दोलन की शुरुआत कुथरा और पुरन के नेतृत्व में हुई। धीरे-धीरे यह आन्दोलन मज़बूत होता चला। अन्त में छोटानागपुर डिविज़न के कमिश्नर ने इनका दमन किया।

1.6.12 गोंड आन्दोलन

गोंड आन्दोलन की शुरुआत सन् 1888 में हुई। छोटानागपुर के कमिश्नर मिस्टर हेविट ने अन्याय पूर्ण भू-व्यवस्था लागू की। उन्होंने कई गोंड आदिवासियों

को हटाकर गैर-आदिवासियों को बसाया। खेती की असफलता से गोंडों को और नुक्सान झेलना पड़ा। इसके परिणाम स्वरुप अपने नेताओं (युधिष्ठिर महापात्रा और सबन दानपत) के नेतृत्व में विद्रोह किया। अंग्रेज़ी सेना के नेतृत्व में इस आन्दोलन को दबा दिया गया।

1.6.13 मयूर भंज आदिवासी आन्दोलन (1917)

मयूर भंज आन्दोलन की शुरुआत सन् 1917 में हुआ। संथाल और अन्य आदिवासियों ने मिलकर प्रस्तुत आन्दोलन चलाया। इस आन्दोलन का मुख्य कारण प्रथम विश्व युद्ध (1914-18) में फ्रांस भेजे जाने केलिए श्रम नेताओं की सेना बनायी गयी। उनमें आदिवासियों की भर्ती की जाने की कोशिश हुई। पुलिस के नेतृत्व में प्रस्तुत आन्दोलन को अस्थाई रूप में दबाया गया। लेकिन संथालों ने कई स्थानों पर दमनकारी शासन के विरुद्ध जन-सभाओं का निर्माण किया।

1.6.14 मुंडा आन्दोलन

आदिवासी आन्दोलनों में मुंडा आन्दोलन का अहम स्थान है। प्रस्तुत आन्दोलन उलगुलान नाम से भी जाना जाता है। 11 वीं शताब्दी तक मुंडा शान्तिपूर्ण जीवन बिता रहे थे। उसके बाद औपनिवेशिक तथा गैर जनजातियों की घुसपैठ से मुण्डाओं के तत्कालीन सामाजिक जीवन में परिवर्तन होने लगा। अंग्रेज़ों और साहूकारों द्वारा होने वाले शोषण एवं हिंसात्मक संघर्ष के कारण मुण्डाओं को असंतोष तथा गरीबी का सामना करना पड़ा। मुण्डा अपने

परम्परागत अधिकारों के प्रति जागरूक थे। लेकिन नेतृत्व के अभाव के कारण काफी समय तक क्रान्ति का रूप प्राप्त न कर सका। इस अभाव की पूर्ति सन् 1885 में बिरसा नामक एक मुण्डा के कारण सफल हुआ।

विदेशी राज को समाप्त करने की आकांक्षा तथा उसके समर्थक ज़मीन्दारों से मुक्ति पाने की कामना बिरसा आन्दोलन की विशेषता बन गई। इस प्रकार सन् 1895 में बिरसा आन्दोलन की शुरुआत हुई। मुण्डा जनजातियों के मन में विश्वास जताने केलिए बिरसा स्वयं को भगवान एवं धरती के पिता के रूप में संबोधित किया। उसने नैतिक आचरण की शुद्धता, आत्म सुधार और एकेश्वरवाद का उपदेश दिया। लेकिन उसी साल बिरसा को जेल जाना पड़ा। सन् 1897 को महारानी विक्टोरिया की हीरक जयंती के अवसर में बिरसा को कैद से मुक्ति मिली। जेल में रहने के बाद बिरसा और भी साम्राज्यवादी विरोधी निकले। सन् 1899 में डोम्बाडी पहाडों से बिरसा के अनुयायियों ने तीर धनुष और परंपरागत हथियारों से सरकार के विरुद्ध भीषण हमला किया। स्थिति काफी गंभीर थी। अंग्रेज़ी सरकार काफी डर गयी थी। लेकिन अंग्रेज़ी सेना के आधुनिक शस्त्रों तथा क्रूरतपूर्वक नरसंहार के सामने मुंडा विद्रोही को घुटने टेकने पडे। मरनेवालों में पुरुष, महिलाएँ, बच्चे सभी शामिल थे। बिरसा भाग गये लेकिन सन् 1900 में सिंहभूम के जंगलों से बिरसा को पकडा गया। बिरसा के ऊपर सरकार से बगावत करने और आतंक व हिंसा फैलाने का आरोप लगाया गया था। बिरसा की मृत्यु जेल में हैजा के कारण हुई थी। मुंडा आन्दोलन का

मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश शासन का विरोध, बाह्य तत्वों का अपने क्षेत्र से निष्कासन और स्वतंत्र मुंडा राज्य की स्थापना था।

1.6.15 मिजो आन्दोलन

सदियों से स्वतन्त्र जीवन बिताने वाले मिजो आदिवासियों को किसी भी प्रकार का राजनीतिक हस्तक्षेप पसन्द नहीं था। इसलिए मिजो लोग समय-समय पर तत्कालीन ब्रिटिश राज्य के अन्तर्गत भारतीय भू-भाग में आक्रमण किया करते थे। मिजो आतंक पर नियन्त्रण पाने केलिए ब्रिटिश सरकार को वर्मा सरकार का सहयोग भी लेना पड़ा था।

ब्रिटिश प्रशासन की स्थापना होते ही ईसाई मिशनरियों की गतिविधियाँ शुरू हो गईं। शिक्षा तथा चिकित्सकीय सुविधाएँ प्राप्त होने लगीं। आदिवासियों को अपने कब्जे में रखने केलिए उन्हें इस बात की उम्मीद दी गयी कि मिशनरियाँ द्वारा दी जानेवाली शिक्षा प्राप्त कर लेने और ईसाई धर्म को अपना लेने पर उन्हें सरकारी सुविधाएँ दी जायेंगी। इस तरह से उन्हें शारीरिक श्रम से छुटकारा मिलेगा। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् 1942 में जापानी सेनाओं द्वारा असम पर जब आक्रमण किया गया तो लगभग 300 मिजो सरदार ब्रिटिश सरकार का साथ दिया। इस प्रकार वे सन् 1880 तक एक सुसंगठित समाज और संस्कृति को अपना चुके थे। अतः देश के अन्य भागों के आदिवासी आन्दोलनों की तुलना में मिजो आन्दोलन पूरी तरह भिन्न है।

इन आन्दोलनों के अलावा दक्षिण भारत के अन्य हिस्सों में और महाराष्ट्र के वनांचलों में भी आदिवासियों ने विद्रोह किया। असम के वनांचल के गारों, लुशाइयों ने भी उन्नीस्वीं सदी के मध्य में अंग्रेज़ों के खिलाफ विद्रोह किया था। मध्यप्रदेश के पश्चिमी हिस्से में ख्वाज्या नायक, भीमा नायक, सीताराम कंवर और रघुनाथ मण्डलोई के नेतृत्व में भीलों को बडी संख्या में एकत्र करके ब्रिटिश अधिकारियों के खिलाफ आन्दोलन चलाया था।

अतः पूरे भारत में अंग्रेज़ी शासन की रीति-नीति के कारण आदिवासियों ने विद्रोह किया। सामाजिक रुप से उनमें आपस में एकता थी और अपनी संस्कृति को बाहरी प्रभाव से बचाने की उन्हें चिन्ता भी थी। इसलिए अपने सीमित हथियारों से वे लम्बे समय तक संघर्ष कर पाए।

1.7 भौगोलिक परिस्थिति

वर्तमान भारत में मनुष्यों की जो जातियाँ आदिम युग से अपने मूल प्रदेश में अपनी मौलिक स्थिति एवं परिस्थितियों के साथ निवास कर रही हैं, वे आदिवासी जातियाँ अथवा जनजातियाँ कहलाती हैं। भारत वर्ष में अनेक जनजातियाँ हैं। सबसे हाल ही के जनगणना के अनुसार इनकी संख्या लगभग एक करोड नब्बे लाख से भी अधिक माना है। आदिवासी समाज आदिम युग से अपनी मौलिक एवं परिस्थितियों के साथ निवास कर रहा है। लेकिन सभी आदिम जातियों में अपनी संस्कृति, भाषा, मूल जाति आदि में पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है।

भारत के 428 जिलों में से लगभग 58 जिलों में 20-88 प्रति विभिन्न समुदाय की जनजातियाँ प्रायः जंगली क्षेत्र या पहाडी इलाकों में रहती हैं। सबसे ज़्यादा मध्यप्रदेश, उडीसा और इसके आस-पास के क्षेत्रों में 20 जिलों में 60 प्रतिशत से ज़्यादा जनजातियाँ निवास करती हैं। महाराष्ट्र में 20 प्रतिशत से ज़्यादा जनजातियाँ दिखाई देती हैं। आदिवासी मुख्य रूप से भारतीय राज्यों में उडीसा, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, बिहार, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल आदि स्थानों में दिखाई देते हैं। लेकिन यहाँ इनकी संख्या अल्पसंख्यक हैं। जबकि भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में आदिवासी जातियाँ बहुसंख्यक हैं। इस तरह भौगोलिक परिस्थितियों के आधार पर जनजातियों का बहुत बडा समूह है।

भौगोलिक दृष्टि से आदिवासियों को चार भागों में विभाजित किया गया है:-

1.7.1 दक्षिण क्षेत्र

भारत के दक्षिण क्षेत्र में कर्नाटक की कोरगा से लेकर कूर्ग की पहाडियों की निचली दलानों पर रहनेवाली यूरुव, वयनाड की इरुल, पणियन तथा कुरुम्ब जातियों के आतिरिक्त कोचिन और तिरुवितांकूर की पहाडियों में काडर, कणिक्कर एवं मलपन्तरम जैसी भारत की सबसे प्राचीन आदिम जातियाँ रहती हैं। नीलगिरी पहाडियों में रहनेवाली टोडा, वडगा, कोटा जातियों को छोडकर अन्य सभी आदिवासियों का एक अलग आर्थिक अस्तित्व है। आदिवासियों के

जीवन का मूल आधार खाद्य पदार्थों को एकत्र करना ही है। लेकिन अभी तक उनमें एक सुव्यवस्थित एवं सामुदायिक जीवन का विकास नहीं हो पाया है।

1.7.2 मध्य क्षेत्र

आदिवासियों के अन्तर्गत आनेवाली प्रमुख जातियों में से अधिकांश भारत के मध्य क्षेत्र में पाये जाते हैं। मध्य क्षेत्र में नर्मदा एवं गोदावरी के बीच पहाडी भागों में इनका निवास स्थान है। यह पहाडी भाग उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत को एक दूसरे से अलग करता है। यहाँ के जनजातियों में संथाल सबसे प्रमुख है। संथालों की संख्या 25 लाख से भी ऊपर है। उडीसा की पहाडियों और पूर्वी घाट में रहनेवाली खोंड, भूमिज आदि जातियाँ मध्य क्षेत्र के अन्तर्गत आनेवाली हैं। मुण्डा, ओरांव, हो और बिरहोर जाति के लोग छोटानाग्पुर के पठारों में रहते हैं। संख्या की दृष्टि से संथालों के बाद गोंड जाति का स्थान है। ये लोग गोण्डवाना में रहते हैं और दक्षिण में हैदराबाद और उससे मिले हुए कांकर एवं बस्तर प्रदेश तक फैले हुए हैं। इनके अलावा कोरकू, अगारिया, परधान, बैगा आदि जानजातियाँ मैकल पहाडियों के चारों तरफ तथा सत्पुडा पर्वतमाला के दोनों ओर रहती हैं। बस्तर प्रदेश के अबुझमार पहाडियों में आदिम जातियों का निवास स्थान है। यहाँ के इन्द्रावति घाटी में माडिया जनजाति वास करती हैं। मध्य क्षेत्र की जनजातियाँ अपनी मूल भाषाएँ वर्तमान समय में भी प्रयोग करती हैं।

आमतौर पर देखा जाए तो यह ज्ञात होगा कि मध्य क्षेत्र की जनजातियाँ दक्षिण क्षेत्र की आदिवासियों की अपेक्षा अधिक उन्नत हैं।

1.7.3 उत्तर-पूर्वी क्षेत्र

भारत की आदिम जातियाँ संपूर्ण हिमालय की तराई और पूर्वी सीमान्त प्रदेशों की पर्वत घाटियों में मिलती हैं जो अदृश्य रूप से दक्षिण-पूर्व के बर्मा की पर्वत घाटियों तक मिलती हैं। असम तथा तिब्बत अबोर और मिशमी पहाडियों के अन्तर्गत आते हैं। यहाँ रहनेवाली आदिम जातियाँ सुवनसिरि नदी के पश्चिम में रहती हैं। उनमें पासी, गलोंग, पदम, पंगी आदि आती हैं। डिबंग और लोहित नदियों के बीच की ऊँची पहाडियों में मिशमी आदिम जातियाँ निवास करती हैं। पूर्व दिशा में सिंहपो तथा खमटी जातियाँ पाई जाती हैं। उसके आगे दक्षिण में पटकोई के दोनों तरफ की पर्वत घाटियों में अनेक प्रकार के नागा आदिम जातियाँ निवास करती हैं। मणिपुर, त्रिपुरा तथा चिटगांव के पर्वतीय प्रदेशों में नागा के अलावा लुशाई, कूकी, चिन आदि जातियाँ रहती हैं। भारत के उत्तर-पूर्व सीमान्त प्रदेशों में पटकोई से चिन पहाडियों तक असम तथा वर्मा के बीच जाति सम्बन्धी कोई स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं है। इन जातियों में परस्पर सांस्कृतिक एवं जातीय दोनों दृष्टियों से गहरे सम्बन्ध हैं। सिक्किम तथा दार्जिलिंग के उत्तरी भागों में बहुत सी पुरानी आदिम जातियों का निवास स्थान है। इनमें लेपया जाति सबसे प्रसिद्ध है। यहाँ खासी तथा गारो आदिम जातियाँ भी मिलती हैं। उत्तर-पूर्व सीमान्त में रहनेवाले आदिवासियों की संख्या बहुत अधिक हैं। लेकिन उनकी कुल संख्या मध्य क्षेत्र के आदिवासियों का उतना नहीं है।

1.7.4 पश्चिम क्षेत्र

भारत के पश्चिम विध्यांचल के पहाडी प्रदेश में कोल और भील रहते हैं। उत्तर-पश्चिम में अरावली की पहाडियों तक भील जाति का निवास स्थान है। इनके अलावा वाली, कटकरी आदि जनजातियाँ भी यहाँ पायी जाती हैं।

विद्वानों के विविध मतानुसार यह ज्ञात होता है कि आदिवासियों के वास स्थान के आधार पर सबसे ज़्यादा जनजातियाँ मध्य क्षेत्र में पायी जाती हैं। लेकिन आदिवासियों में सबसे ज़्यादा भील जनजाति है जो पश्चिम में वास करती हैं।

भौगोलिक दृष्टि से आदिवासी समुदाय अलग-अलग राज्यों में एक दूसरे से दूर नज़र आती हैं। किन्तु उनकी संस्कृति हज़ारों साल बाद भी एक दूसरे से बाँधे रखी हैं।

1.8 भारत के प्रमुख आदिवासी

भारत में अनेक प्रदेशों में आदिवासी दिखाई देते हैं। अध्ययन की सुविधा केलिए प्रादेशिक दृष्टि से पाँच भागों में इनका विभाजन किया गया है।

1.8.1 दक्षिण भारत

दक्षिण भारत के अन्तर्गत- केरल, तमिल नाडु, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश आदि राज्य आते हैं। इन प्रदेशों में रहनेवाले आदिवासी निम्न प्रकार के हैं :-

1.8.1.1 कोरग

कोरग आदिवासी केरल, कर्नाटक आदि स्थानों में पाए जाते हैं। इसलिए वे कन्नड और मलयालम दोनों भाषा जानते हैं। इनका भोजन मरे हुए जानवरों का गोश्त है। पुरुष लोग काले रंग के कपडे पहनते हैं और महिलाएँ ढंग से कपडे नहीं पहनते। अधिकांश कोरग आदिवासी झोंपडियों में रहते हैं और कुछ लोग छायादार पेडों के नीचे। कोरग आदिवासी पान का इस्तेमाल करते हैं। बच्चों से लेकर बूढे तक पान का उपयोग करते हैं। ये देवी देवताओं पर विश्वास रखनेवाले हैं। कोरगतनिया, मारियम्मा आदि इनकी प्रमुख देवी-देवता हैं।

1.8.1.2 कुरिच्यर

केरल में पाए जानेवाला एक प्रमुख आदिवासी समुदाय है कुरिच्यर। इनमें अस्पृश्यता और छुआ-छूत की भावना अत्यधिक दिखाई देती है। इसलिए ये ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य जातियों से अस्पृश्यता का भाव रखते हैं। इनकी आजीविका खेतीबाडी और शिकार पर निर्भर है। ये संयुक्त परिवार में विश्वास रखते हैं। उनकी देवी-देवताएँ मुत्तप्पन, भगवती और भद्रकाली हैं।

1.8.1.3 कुरुमा

केरल में पाए जानेवाला एक और आदिवासी वर्ग है कुरुमा। ये वैवाहिक जीवन को प्रमुखता देने वाले हैं। जंगल में वास करने से उनके जीवन में प्रकृति का बहुत बड़ा प्रभाव है। आजीविका केलिए टोकरियों का निर्माण,

मिट्टी के बर्तनों का निर्माण एवं शिकार करते हैं। उनकी झोंपडियाँ मिट्टी से निर्मित हैं। कुरुमा लोग सफाई का बहुत खयाल रखनेवाले हैं।

1.8.1.4 पणिया

पणिया जनजाति अधिकांश रुप से केरल और तमिलनाडू में पायी जाती है। उनका निवास स्थान पहाडी प्रदेशों में होता है। पणिया लोग दिखने में छोटे कदवाले और काले रंग के होते हैं। उनकी भाषा तमिल और मलयालम का मिश्रित रूप है। जीवनयापन खेती-बाडी से चलता है। पणिया आदिवासी संगीत और नृत्य में विशेष रुचि रखनेवाले हैं। शादि एवं त्योहारों के अवसरों पर नृत्य और संगीत का खूब आनन्द लेते हैं। उनकी देवी-देवता पत्थर है। वे पत्थरों को जमा करके उनकी पूजा करते हैं।

1.8.1.5 काटुनाय्क्कर

काटुनाय्क्करों को घुमक्कड कहते हैं। क्योंकि वे भोजन केलिए एक जंगल से दूसरे जंगल की ओर घूमते रहते हैं। ये मुख्य रुप से मांसाहारी है। इसलिए इनकी आजीविका शिकार पर निर्भर है। हिरण, सुअर और चिडियाँ अक्सर इनका शिकार बन जाते हैं। ज़्यादातर लोग कपडों का इस्तेमाल नहीं करते। इनके बीच भी पर्व एवं त्योहार हैं। इन त्योहारों के अवसरों पर उनमें नई ज़िन्दगी की शुरुआत होती है।

1.8.1.6 चोलनाय्क्कर

चोलनाय्क्कर घने जंगलों में बडे-बडे पत्थरों एवं गुफाओं के बीच अपना जीवन बिताते हैं। ये दिखने में छोटे कद और गोरे रंग के हैं। इनमें से ज़्यादातर लोग कपडे नहीं पहनते। चोला का मतलब 'जंगल' और नाय्क्कर का मतलब 'राजा' है। इस प्रकार वे अपने आप को जंगल के राजा समझते हैं।

1.8.1.7 उल्लाडर

उल्लाडर केरल के इडुक्कि जिले में पाए जाते हैं। ये संयुक्त परिवार में विश्वास रखनेवाले हैं। इनमें आज भी बाल विवाह की प्रथा विद्यमान है। उल्लाडर पहाडी देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना करते हैं। इनका जीवनयापन खेतीबाडी पर निर्भर है।

1.8.1.8 चेंचु

चेंचु भारत की प्रमुख जनजातियों में से एक है। ये जनजाति खासकर तमिलनाडू, आंध्रप्रदेश और कर्नाटक में पायी जाती है। वे मुख्य रूप से घने वनों और पहाडी क्षेत्रों में रहते हैं। जंगली जानवरों का शिकार करना उनकी मुख्य पेशा है। सुअर, हिरण, खरगोश जैसे जंगली जानवर अक्सर इनका शिकार बनते हैं। इसके अलावा जीवनयापन केलिए बीडी का पत्ता, फल, शहद, कंद, इमली आदि खाद्य पदार्थ इकट्टा करके बेचते हैं। उनका गाँव पेंटा नाम से जाना जाता है। उसमें काफी झोंपडियाँ होती हैं। चेंचुओं की भाषा द्रविड भाषा समूह की है जो चेंचवर, चेंस्वर, चेचुकुलम आदि नामों से जानी जाती है। आधुनिक

प्रभावों से अप्रभावित होने से चेंचु जनजाति अपने पारंपरिक रिवाज़ों को बरकरार रखने में कामियाब रही है।

1.8.2 मध्य एवं पूर्व भारत

मध्य एवं पूर्व भारत के अन्तर्गत- महाराष्ट्र, राजस्थान, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल, झारखण्ड, छत्तीसगढ, बिहार, उडीसा आदि राज्य आते हैं। इन प्रदेशों में रहनेवाले आदिवासी वर्ग निम्न प्रकार के हैं :-

1.8.2.1 संथाल

संथाल झारखण्ड की प्रमुख जनजाति है। उनकी आजीविका खेतीबाडी से चलती है। लेकिन आजकल शिक्षा प्राप्त करके वे शिक्षक, चिकित्सक, इंजिनीयर तथा सरकारी कार्यालयों में काम कर रहे हैं। संथाल वर्ग पुरुष प्रधान समाज है। पढे-लिखे होने पर भी इनके रीति-रिवाज़ों में अधिक बदलाव नहीं आया है। जैसे कि गोदना गुदवाने की प्रथा उनमें आज भी अधिकांश रूप में दिखाई देती है। प्रकृति की विभिन्न वस्तुओं में छिपी ऐसी शक्ति में विश्वास करते हैं जो हर जगह हर घडी विद्यमान रहती है। सिंगबोंगा, मारंगबुरु आदि मुख्य देवी-देवता हैं। उनके पर्व एवं त्योहारों में हरियाड, जानथाड, सोहरई, भागसिम आदि आते हैं।

1.8.2.2 बिझिंया

झारखण्ड में पाए जानेवाले एक ओर आदिवासी वर्ग है बिझिंया। बिझिंया समाज पूर्णतः पुरुष प्रधान है। इस समाज में संयुक्त परिवार को महत्व

दिया जाता है। परिवार का बुजुर्ग पुरुष परिवार का प्रधान होता है। जिसके नेतृत्व में बाकी परिवार के सदस्य चलते हैं। समुदाय के बाहर शादी नहीं की जा सकती। अस्वाभाविक कारणों से मरे बच्चों और व्यक्तियों का दफन किया जाता है। इनके पर्व-त्योहारों में होली, दीवाली, रामनवमी, करमा जितिया और सरहुल प्रमुख हैं। ये अपने पारम्परिक तरीके से लोक नृत्य एवं गीत गाते हैं।

1.8.2.3 मुण्डा

मुण्डा जनजाति बिहार, मध्यप्रदेश और उडीसा में पायी जाती है। इनकी भाषा को मुण्डारी कहते हैं। मुण्डा शब्द संस्कृत भाषा का है। इसका अर्थ है गाँव का मुखिया। आजीविका का मुख्य मार्ग कृषि है। इनका पहनावा सादा है। स्त्रियाँ साडी पहनती हैं और पुरुष वर्ग बोटोई नामक बोर्डर वाला वस्त्र पहनते हैं। इनमें गोदना गुदवाने का शौक अधिक दिखाई देता है। मृतकों को दफनाने एवं जलाने की दोनों प्रथा प्रचलित है। दाम्पत्य जीवन में तलाक की समस्या ज़्यादा नज़र आती है।

1.8.2.4 बैगा

बैगा झारखण्ड का एक प्रमुख आदिवासी वर्ग है। इनका प्रमुख कार्य पूजा-पाठ है। इसलिए वे पूजारी के रूप में कार्यरत हैं। बैगा मांस, मोटे अनाज एवं फलों का भोजन करते हैं। अधिक उन्नत बैगा गोमांस नहीं खाते। उत्सवों में सुअर की बली चढाने की प्रथा अभी भी विद्यमान है। चावल, मक्का, ज्वार आदि इनके प्रमुख भोजन पदार्थ हैं। बैगा रूढ शरीर वाले हैं। सिर के बाल को

काटने का रिवाज़ नहीं है। बालों का इकट्ठा कर पीछे चोटी डाल ली जाती है। ये साल में गिने-चुने अवसरों पर ही स्नान करते हैं। इनकी मुख्य पेशा खेतीबाडी एवं कृषि है। ये सघन वन क्षेत्रों में रहना पसंद करते हैं। इसलिए वे पहाडों और जंगलों के बीच छोटे-छोटे गाँव बना लेते हैं। बैगा अपनी कृषि में हल का प्रयोग नहीं करते। उनकी मान्यता है कि इससे धरती माँ की छाती पर घाव होगा और उसे पीडा होगी।

1.8.2.5 लोहरा

इनकी मुख्य पेशा लोहा गलाना है। इनका न कोई अपना गाँव होता है और न ही पंचायत। जहाँ-तहाँ घर बनाकर रह जाते हैं। विवाह के बाद अपने माता-पिता से अलग हो जाते हैं और अपना घर अलग बनाते हैं। लोहरा लोग सभी व्यवहार के कपडे, हाट बाज़ार से खरीदकर पहनते हैं। लोहारगिरी इनका मुख्य व्यवसाय है। ये हसुवा, टांगी, तीर-धनुष आदि बनाते हैं। ये सामग्री पडोस के लोग खरीदते हैं। या बाज़ार में बेच देते हैं। अपने मुख्य व्यवसाय के अतिरिक्त बाकी समय में शिकार करते हैं। दूसरे आदिवासी एवं गैर-आदिवासियों के साथ रहने के कारण इनको विकास का अच्छा अवसर मिलता है। पितृप्रधान परिवार है। लोहरा लोगों ने ईसाई धर्म को अपनाया है। इसके अतिरिक्त इस्लाम और सिख्र धर्म को भी मानते हैं। लोहरा मुख्यतः प्राकृतिक पूजक हैं। ये अनेक देवताओं की उपासना करते हैं। ये फगुवा, सोहराई, सरहुल, करमा, जितिया, विश्वकर्मा, पूजा, दीवाली, रामनवमी, शिवरात्री आदि मनाते हैं। जन्म से मृत्यु तक इनके अनेक विश्वास और अन्धविश्वास हैं।

1.8.2.6 बंजारा

बंजारा आदिवासी प्रमुख रूप से झारखण्ड और उडीसा में निवास करते हैं। बंजारा शब्द 'बान' और 'चारन' शब्द के मेल से बना है। जिसका सामान्य अर्थ जंगल और घुमक्कड है। इनकी मातृभाषा उडिया है जो इण्डो आर्यन भाषा से संबन्धित है। इनकी सम्पर्क भाषा हिन्दी है। इसके अतिरिक्त जहाँ ये निवास करते हैं उस राज्य की भाषा बोलते हैं। बंजारा लोग कृषि, पशु-पालन एवं अन्य धन्धे भी करते हैं। इन लोगों का पारम्परिक व्यवसाय नमक, नारियल, लेखन सामग्री आदि बेचना है। बंजारा समुदाय चार प्रमुख बडे समूहों में विभक्त हैं। जिनके नाम चौहान, पनवार, राठौर और ऊत्र है। लडकियों की शादी बहुत कम उम्र में होने की प्रथा है। इस समुदाय की महिलाएँ घाघरा, ओढनी, काँछी आदि पहनती हैं। बंजारी देवी इनकी सर्वोच्य देवी है। ये होली, दशहरा, जन्माष्ठमी, दीवाली आदि मनाते हैं। डंडा इनका प्रमुख नृत्य है।

1.8.2.7 खरवार

वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो खरवार आदिवासी वर्ग द्रविड प्रजाति के अन्तर्गत आ जाता है। खेरवारी सभ्यता के उद्भव और विकास तथा विस्तार से खरवार आदिवासी का इतिहास जुडा है। विभिन्न स्थानों में घूमना और विस्थापन के कारण खरवार लोग संपन्न कृषक नहीं बन सके। ये प्रमुख रूप से पश्चिम बंगाल में पाए जाते हैं। खरवार समाज पुरुष प्रधान है। अधिकांश लोगों ने हिन्दू धर्म को अपनाया है। इसलिए खरवार हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। सरहुल, करमा, सोहराई, अगहनी, खलिहानी पूजा आदि के

अलावा श्रावणी पूजा, जतिया अनंत, चतुर्दशी व्रत, दीपावली, दशहरा, नवमी, होली आदि पर्व भी मनाते हैं। खरवार समूह में भी नृत्य परंपरा जारी है। इनके प्रमुख नृत्य-झूमर, करमा, अगनई, जदुरा, औडी-बौडी आदि हैं तो ढोल, मांदर, नगाड़ा, खंजडी, बाँसुरी आदि प्रमुख वाद्य यंत्र हैं।

1.8.2.8 भूमिज

झारखण्ड, उडीसा और पश्चिम बंगाल के आस-पास भूमिज जनजाति पाई जाती है। भूमिज लोग दिखने में मध्यम कद के होते हैं। उनका रंग गहरा भूरा या काला होता है। उनके शरीर में अत्यधिक बाल होते हैं। उनकी नाक चपटी और सिर लम्बा होता है। भूमिज आदिवासी मूलतः कृषक हैं। ये शिकार भी करते हैं। जिनके पास ज़मीन नहीं है वे मज़दूर की तरह काम करते हैं। भूमिज समुदाय में भी पितृप्रधान की परंपरा जारी है। धार्मिक दृष्टि से देखा जाए तो भूमिज हिन्दू, इस्लाम, ईसाई, बौद्ध और अपने पारम्परिक धर्म को भी मानते हैं। भूमिजों का धर्म देवता सिंगबोंग और जाहुबुरु है। शैक्षिक दृष्टि से देखा जाए तो महिलाओं की साक्षरता चिन्ताजनक है। मध्यम वर्ग के भूमिज अपने बच्चों को स्कूल भेजते हैं। परन्तु गरीब परिवार के लोग घर में अपने बच्चों से काम कराते हैं। इनकी भाषा भूमिज है। आपसी झगडे और विवादों का निपटारा केलिए प्रत्येक परिषद लागू होती है। प्रधान का पद वंशानुगत होता है।

1.8.2.9 भील

मध्य भारत में निवास करने वाली एक प्रसिद्ध जनजाति है भील। ये लोग भील भाषा बोलते हैं। भील जनजाति छत्तीसगढ़, गुजरात मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र तथा राजस्थान में एक अनुसूचित जनजाति है। भील शब्द की उत्पत्ति 'बिल' शब्द से हुई है जिसका द्रविड भाषा में अर्थ होता है 'धनुष'। भीलों का जीवन यापन का प्रमुख मार्ग कृषि है। अन्य समुदायों की तुलना में उनकी खेती करने की रीति अभी भी पुरानी है।

1.8.2.10 बेदिया

झारखण्ड, बिहार, उडीसा आदि के आस-पास बेदिया जनजाति पायी जाती है। बेदिया लोग अपने को वेद पंथी मानते हैं। बुजुर्गों से जो सुन रखा उन्हीं के आधार पर उनके आगमन स्थान और उनकी प्राचीनता आदि का बोध होता है। बेदिया संथाल की ही एक उपजाति है। पितृसत्तात्मक समाज होने पर भी माता को उचित आदर प्राप्त होता है। बेदिया मूलतः प्राकृतिक पूजक हैं। इसलिए विभिन्न पर्वतों की पूजा करते हैं। सूर्य की उपासना बेदिया समाज में महत्वपूर्ण मानी जाती है। सिंगबोंगा इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध देवता है। हिन्दू धर्म से प्रभावित होने के कारण बेदिया लोग अनेक देवी-देवताओं की पूजा करनेवाले हैं- जिसमें दुर्गा, काली, लक्ष्मी, सरस्वती, गणेश, शिव, राम महावीर और तुलसी की पूजा प्रमुख हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक संस्कार होते हैं। साल भर धार्मिक अनुष्ठानों में लगे रहते हैं। इनके पर्व एवं त्योहार धार्मिक अनुष्ठानों से जुडे हैं। सरहुल, रामनवमी, रक्षाबन्धन, तीज, दुर्गा पूजा, होली

आदि इनके प्रमुख्र त्योहार हैं। सरकार द्वारा कल्याणकारी योजनाओं के द्वारा बेदिया समाज को विकास में लाने की कोशिश हो रही है। बच्चों को समुचित शिक्षा प्रदान करने केलिए प्राथमिक विद्यालय की स्थापना की गई है।

1.8.2.11 करमाली

झारखण्ड और पश्चिम बंगाल के आसपास पाए जानेवाले आदिवासी समुदाय है करमाली। कुशल कारीगरी एवं गृह उद्योग जैसी विशेषताओं के कारण ये विशेष रूप से उल्लखनीय हैं। करमाली आदिवासी समुदाय परम्परागत रूप से लोहा गलाने वाले तथा लोहारगिरी करनेवाले आदिवासी है। करमाली के परम्परागत पेशों में लोहे को गलाना और उससे विभिन्न औजार बनाना, पुराने औजारों की मरम्मत करना, घरेलु सामग्री बनाना आदि मुख्य हैं। करमाली मूलतः प्रकृति पूजक हैं। इसलिए नदी, नाले, झरने, पहाड आदि से अटूट सम्बन्ध रहा है। करमाली परिवार सामान्यतः पितृसत्तात्मक है। उनका कोई भी ऐसा पर्व-त्योहार नहीं होता जिसमें गीत और नृत्य का समावेश न हो। करमाली आदिवासी सरहुल, करमा, सोहराई आदि पर्व मनाए जाते हैं। इनका भी अपना पारम्परिक शासन व्यवस्था है। शिक्षा के क्षेत्र में ये अभी पिछडे हैं।

1.8.2.12 सहरिया

सहरिया जनजाति मध्यप्रदेश और राजस्थान में पायी जाती है। ये पूर्ण रूप से जंगल के आश्रित हैं। ज़रूरत पडने पर ही खेती करते हैं। इनकी खेती स्थानांतरण खेती की श्रेणी में आती है। खेतीबाडी के अलावा चिरौंजी, शहद,

आंवला, महुआ, कत्या, कुरेटा की दाल, धौली, मूसली गोंद आदि वस्तुएँ इकट्ठा करते है और बेचकर अनाज ले लेते हैं। बारिश के दिनों में जंगल में कोई उपज नहीं होती। इसलिए ये पहले से ही अनाज का बंदोबस्त करके रखते हैं।

1.8.2.13 पावरा

पावरा लोग भारत के महाराष्ट्र राज्य के नंदुरबार जिले में पाये जाते हैं। ये मुख्य रुप से सतपुडा पर्वतमाला के जंगलों में निवास करते हैं। पावरा लोग भील जनजाति का एक हिस्सा हैं। इनकी उत्पत्ति उदयपुर क्षेत्र से है। और स्वयं को राजपूत मानते हैं। पावरों की आजीविका खेतीबाडी, पशुपालन, और बरसातों में मछलियाँ पकडना आदि से चलती है। पावरा लोग अमावस्या के दिन अम्बा, काकड एवं पीपल जैसे वृक्षों की पूजा करते हैं। होली इनके लिए एक महत्वपूर्ण उत्सव है।

1.8.2.14 मीणा

मीणा आदिवासी राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और हरियाणा के कई भागों में पाए जाते हैं। मीणा जनजाति ‘मीना’ नाम से भी जाना जाता है। इनका इतिहास सिंधुघाटी सभ्यता से भी पहले शुरू होता है। मत्स्य अवतार से मीणा जनजाति का सम्बन्ध जोड़ा जाता है। यह बात सच है तो मीणा जनजाति विश्व की सबसे प्राचीन जनजाति है। मीणाओं की आजीविका कृषि पर निर्भर है।

1.8.2.15 बाथुडि

झारखण्ड में बाथुडि एक छोटी आदिवासी जाति है। झारखण्ड के अलावा उडिया में बाथुडि अत्यधिक संख्या में बसे हैं। अपनी जाति की एकता को बनाए रखने केलिए उनकी एक राजनीतिक प्रणाली है, जो आदिवासी परंपरागत रीति-रिवाज़ों के अभिभावक की हैसियत से कार्य करती है।

1.8.2.16 गोंड

भाषिक दृष्टि से देखा जाए तो गोंड जन द्रविड जातीय परिवार के हैं। लेकिन यह मुख्यतः मध्यप्रदेश में वास करते हैं। ये शासक वर्ग अथवा आभिजात वर्ग के नाम से जाने जाते हैं। गोंड जनजाति का जीवनयापन मुख्यतः खेती एवं वनों पर निर्भर है। इसके अलावा मछली मारना, शिकार करना भी करते हैं।

1.8.2.17 खोंड

खोंड उडिया में स्थित आदिवासी वर्ग है। इनकी संख्या दस लाख से भी अधिक है। प्राचीन काल में ये एक गोत्र में निवास करते थे लेकिन आजकल अनेक गाँवों से भी अनेक गोत्र के लोग आकर बसने लगे हैं। खोंड आदिवासी लोग लम्बी कतारों में मकान बनाकर उसमें रहते हैं। इनके गाँव में भी एक मुखिया होता है जो परम्परागत स्वशासन व्यवस्था का अध्यक्ष होता है। खोंड आदिवासी पितृसत्तात्मक परिवार को मानते हैं। विधवा विवाह और दहेज प्रथा का बोलबाला है। रोगादि के उपचार में धार्मिक एवं जादूई दृष्टि के साथ-साथ

जडी-बूटी की भी इस्तेमाल करते हैं। इसके लिए एक पुरोहित को रखा जाता है। खोंड लोग संगीत एवं नृत्य का अत्यधिक आस्वादन करते हैं।

1.8.2.18 किसान

किसान आदिवासी वर्ग नगेशिया नाम से भी जाना जाता है। किसान लोग पुरुष प्रधान समाज है। बच्चों को गोद लेने की प्रथा केवल निसंतान होने एवं बेटी संतान होने पर प्रचलित है। सामाजिक रीति रिवाज़ और परम्पराओं की देख-रेख केलिए एक सामुदायिक पंचायत होती है। पंचायत के मुख्य को महंत कोटवार और सरदार नाम से पुकारा जाता है। झारखण्ड राज्य में किसान नगेश्वर या नगेशिया के नाम से जाने जाते हैं। झारखण्ड के अतिरिक्त ये उडीसा, पश्चिम बंगाल, मध्यप्रदेश आदि राज्यों में भी पाए जाते हैं। इनका मुख्य पेशा खेतीबाडी है। इसके अलावा जंगल से मधु और फूल इकठ्ठा करके बेचते हैं।

1.8.2.19 कोरा

कोरा आदिवासी लोग झारखण्ड, पश्चिम बंगाल आदि क्षेत्रों में पाए जाते हैं। इनकी आजीविका खेतीबाडी, कृषक, मज़दूर, लकडी काटना तथा ठेके में कुआँ, तालाब खोदना आदि हैं। इस समाज में बाल मज़दूर ज़्यादा हैं। कोरा आदिवासी समाज पुरुषप्रधान है। इनके समाज में पारम्परिक जातीय समिति होती है जो सामाजिक मामलों पर नियंत्रण रखती है। जो नियमों का उल्लंघन करता है उसे समाज से बाहर किया जाता है, या उस पर आर्थिक दण्ड दिया जाता है। इनके पारम्परिक आदि धर्म में हिन्दू धर्म का प्रभाव है। ईसाई, इस्लाम

आदि धर्म को भी वे मानते हैं। पुरुष और महिलाएँ शिक्षित हैं। लेकिन पुरुषों की संख्या अधिक हैं।

1.8.2.20 हो

इनके इतिहास में प्रकाश डालने केलिए इनकी उत्पत्ति की कोई परंपराएँ प्रतीत नहीं होतीं। हो लोग सगोत्र वंशों में विभाजित हैं जो 'किली' कहलाता है। प्रकृति से इनका लगाव अत्यधिक है। वे अपना नाम जीव-जन्तुओं, पेड-पौधों अथवा वस्तुओं से लेते हैं। उनका मानना है कि विवाह के पश्चात प्राकृतिक वस्तुएँ उनके जीवन में कल्याणकारी प्रभाव डालती हैं। वे समय-समय पर प्रार्थना करते और धन्यवाद स्वरुप बलि चढाते हैं। सूर्य, चाँद, नदी, पहाड, पर्वत आदि हो लोगों का प्रधान बोंगा है। सिंगबोंगा इनमें सबसे प्रधान है जो सृष्टि-कर्ता भी है। अधिकांश लोग पारम्परिक धर्म को मानते हैं। ईसाई धर्म को मानने वाले भी हैं। पितृसत्तात्मक समाज है।

1.8.2.21 मारिया

मारिया जनजाति मुख्य रूप से मध्यप्रदेश में पायी जाती है। भूमियाँ, भुईहार, पांडो आदि इसकी उपजातियाँ हैं। वे अधिकांशतः पहाडी क्षेत्रों में निवास करते हैं। इसके अलावा नदी की घाटियों और समतल प्रदेशों में अपना निवास स्थान बना लेते हैं। आजीविका केलिए खेतीबाडी करते हैं। मारिया जनजाति हिन्दू धर्म से प्रभावित है। वे हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा के साथ-साथ सर्प, बाघ आदि की भी पूजा करते हैं। मुख्य देवता भीमसेन है। इनमें संयुक्त और

वैयक्तिक दोनों प्रकार के परिवार पाए जाते हैं। स्त्री, पुरुष और बच्चों केलिए अपना कार्य स्पष्ट रूप से विभाजित किया गया है।

1.8.2.22 कोल

मध्यप्रदेश में पायी जानेवाली यह जनजाति पूर्णरूप से हिन्दू धर्मावलम्बी है। इन्हें कोलेरियन और मुण्डारी जनजाति भी कहा जाता है। रोहिया वा रोठैल इस जनजाति की उपजातियाँ हैं। कोल जनजाति भूत-प्रेत में विश्वास रखते हैं और जादू टोने में भी इन्हें विश्वास है। कोलों का मुख्य पेशा कृषि है। कृषक या श्रमिक के अतिरिक्त वे पशुपालन भी करते हैं। इनकी भी अपनी पंचायत है। जिसे 'गोहिया' कहते हैं।

1.8.2.23 कमार

शहडोल, डिंडोरी आदि जिलों में पाए जाने वाले कमार जनजाति की मुख्य पेशा टोकरियाँ बनाना है। इसके अलावा कृषक, मज़दूर और पशुपाल भी है। इनमें स्व गोत्र विवाह की प्रथा नहीं है। गरीब कमार जनजाति मृत शरीर को दफनाती है और संपन्न लोग दाह संस्कार करते हैं। देवी-देवताओं की पूजा के साथ-साथ जादू टोने में भी इनका विश्वास है। कमार जनजाति पंचायत व्यवस्था को विशेष महत्व देती है।

1.8.2.24 पारधी

पारधी जनजाति मध्यप्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में निवास करती है। वन्य जानवरों का शिकार मुख्य पेशा है। पारधी मराठी शब्द 'पारध' का तद्भव रूप

है। इसका शाब्दिक अर्थ 'आखेट' है। चीता पारधी, लंगोटी पारधी, भील पारधी आदि इसके कई उपभेद हैं।

1.8.2.25 अगरिया

यह जनजाति मुख्य रूप से मध्यप्रदेश में पायी जाती है। लौह धातु का निर्माण मुख्य पेशा है। अगरिया जनजाति की देवता 'लोहा सूर' हैं। अपनी देवता को खुश रखने केलिए काली मुर्गी को बलि देते हैं। अगरिया जनजाति विधवा विवाह को मान्यता देनेवाला समुदाय है।

1.8.2.26 भिलाला

मध्यप्रदेश में निवास करनेवाली यह जनजाति भील जनजाति की एक शाखा है। भिलालों की उत्पत्ति राजपुतों से बने सम्बन्धों से है। इसलिए उनमें राजपुतों का गुण देखा जा सकता है। आजीविका केलिए कृषि का सहारा लेते हैं और कुछ भिलाल लोग एकमात्र कृषि से ही संपन्न हो गए हैं। अधिकांश रूप से देखा जाए तो एकाकी परिवार ही पाया जाता है। संयुक्त परिवार बहुत कम मिलता है।

1.8.2.27 पनिका

पनिका जनजाति भी मध्यप्रदेश में पायी जाती है। पनिका जनजाति के कई लोग कबीर पंथी में आती है। कहा जाता है कि कबीरदास का पालन पोषण पनिका महिला द्वारा हुआ था। कबीर पंथ में आनेवाले पनिकाओं को कबीरहा कहा करते हैं और दूसरे वर्ग को शक्ति पनिका। कबीर पंथी पनिका के

पुरुष और स्त्री श्वेत वस्त्र पहनते हैं, और गले में कंठी पहनते हैं और ये लोग देवी-देवताओं की पूजा नहीं करते।

1.8.2.28 माल पहाडिया

सन्थाल परगना, साहिबगंज, गोड्डा आदि इनका निवास स्थान है। सिकन्दर, पुझोर, माँझी, बिरिही आदि इसकी उपजातियाँ हैं। कहा जाता है कि माल पहाडिया 'सकरा' जाति का वंशज है। माल पहाडियों की भाषा बंगाली है। सगोत्रीय विवाह की प्रथा नहीं है। पंचायत व्यवस्था को विशेष महत्व देते हैं। इनका पंचायत 'भैयारी पंचायत' नाम से जाना जाता है।

1.8.2.29 गोराईत

सिंहभूम, सन्थाल परगना, हज़ारीबाग, राँची आदि गोराईत जनजाति का निवास स्थान है। गोराईत जनजाति मुण्डारी, हिन्दी, नागपुरी आदि भाषा जानते हैं। पितृसत्तात्मक समाज है। इनमें अन्धविश्वास का बोलबाला है। कृषि इनका मुख्य पेशा है। आजीविका केलिए जंगल के उत्पादन और श्रमिक का सहारा भी लेते हैं। गोराईत लोग पुरुनिया और देवी माई की पूजा करते हैं।

1.8.2.30 सबर

सबर जनजाति को भील जनजाति का ही वंशज माना जाता है। ये मुख्य रुप से सिंहभूम, राँची और हज़ारीबाग जिले में पाए जाते हैं। ये सदानी भाषा का इस्तेमाल करते हैं। इनका समाज भी पितृसत्तात्मक है।

1.8.2.31 चीक बडाईक

चीक बडाईक जाति झारखण्ड में पायी जाती है। इनमें सगोत्रीय विवाह की प्रथा नहीं है। साक्षरता की दृष्टि में देखा जाए तो अन्य जनजातियों की अपेक्षा इनका स्थान ऊँचा है।

1.8.2.32 परहिया

परहिया जनजाति मुण्डा जनजाति की उपशाखा है। परहिया लोग सदानी भाषा का प्रयोग करते हैं और इनकी भाषा पडोइसा नाम से जाना जाता है। परहिया जनजाति दिखने में नीग्रो अथवा मंगोलों की तरह है। इनमें बहिर्गोत्रीय विवाह की प्रथा है।

इनके अलावा मध्य एवं पूर्व भारत में महली, राठवा, मावची, लोडा, ठाकुर, चेंचु, बिरहोर, वारली आदि आदिवासी समुदाय भी पाए जाते हैं।

1.8.3 उत्तर भारत

उत्तर भारत के अंतर्गत कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, उत्तरप्रदेश आदि राज्य आते हैं। इन प्रदेशों में रहने वाले आदिवासी निम्न प्रकार के हैं :-

1.8.3.1 पाँगी

पाँगी जनजाति हिमाचल प्रदेश में पायी जाती है। ‘पाँगी’ शब्द हिमाचल की स्थानीय बोल पंगवाली से विकसित हुई है। इसलिए यह जनजाति पंगवाल नाम से भी जानी जाती है। पंगवाल लोगों की आजीविका कृषि एवं पशुपालन

पर निर्भर है। कृषि केलिए राजमा, आलू, टमाटर, मक्का, पातगोभी, फूलगोभी, मटर, शिमला मिर्च आदि फसलें होती हैं। पंगवाल लोग ऊनी कपडे, चादर आदि बनाते हैं। इसलिए ज़्यादातर पालतु पशुओं में बकरी, भेड और याक अधिक होते हैं। अनाज और फलों के अतिरिक्त जडी बूटियों की भी खेती की जाती है।

पंगवालों का मूलतः पितृप्रधान समाज है और इनमें संयुक्त परिवार की प्रथा प्रचलित है। समस्याओं के हल केलिए प्रजा मंडल भी होता है। वेशभूषा की दृष्टि से देखा जाए तो दोनों सिर को ढक्कर रखते हैं, पुरुष लोग टोप पहनते हैं और स्त्रियाँ 'जोजी'। इनके भी अपने पर्व एवं त्योहार हैं और जन्म से लेकर मृत्यु तक कई संस्कार पाए जाते हैं। अभी यह जनजाति विकासोन्नति के रास्ते में है। ज्ञान-विज्ञान की नयी रोशनी इन तक पहुँचने लगी है।

1.8.3.2 किन्नौर

किन्नौर हिमाचल प्रदेश में पायी जानेवाली एक प्रमुख जनजाति है। ये जनजाति कनोवर नाम से भी जाने जाते हैं। आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय है। हिमाचल प्रदेश की अन्य जनजातियों से पर्याप्त भिन्नता पायी जाती हैं।

1.8.3.3 भोटिया

भोटिया जनजाति उत्तराखण्ड क्षेत्र की 6 नदी घाटियों में फैली हुई है। और इन नदी घाटियों में ये अलग-अलग नामों से जाने जाते हैं। जैसे कि 'जौहार' परगना निवासी 'जौहारी' कहलाते हैं। इनके दो उपभाग भी हैं,

‘जैठोरा’ और ‘रावत’। विष्णु गंगातट निवासी ‘मारछा’ नाम से तथा धैली घाटी के ग्रामीण क्षेत्रों में बसनेवाले ‘तौलछा’ और उत्तर काशी में जाड नाम से जाने जाते हैं। आजीविका केलिए व्यापार मार्ग को अपनाया है।

1.8.3.4 थारु

थारु जनजाति उत्तराखण्ड में पायी जाती है। नैनिताल तथा उत्तरप्रदेश के गोरखपुर, खीरी, गोंडा, लखीमपुर आदि जिलों में पायी जाती है। कृषि और मज़दूरी से इनकी आजीविका चलती है।

1.8.3.5 बोक्सा

उत्तरप्रदेश के तराई क्षेत्रों में और उत्तराखण्ड के देहरादून एवं हलद्वानी क्षेत्र में बोक्सा जनजाति मुख्य रुप से पायी जाती है। आजीविका का मुख्य मार्ग कृषि है।

1.8.3.6 गुज्जर

हिमाचल प्रदेश में पाया जानेवाला एक आदिवासी समुदाय है गुज्जर। गुज्जरों की आजीविका पशुपालन से चलती है। उनसे प्राप्त विभिन्न वस्तुओं को बेचकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

इनके अलावा बकरवाल, लाहौर, गड्डी आदि आदिवासी समुदाय भी यहाँ पाये जाते हैं।

1.8.4 पूर्वोत्तर भारत

पूर्वोत्तर भारत के अन्तर्गत असम, नागालैंड, त्रिपुरा, मेघालय, मणिपुर आदि राज्य आते हैं। इन प्रदेशों में पाए जानेवाले आदिवासी समुदायों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार हैं :-

1.8.4.1 खासी

खासी एक आदिवासी वर्ग है, जो खासिया या खासा नाम से जाना जाता है। खासी जनजाति मुख्य रूप से असम और मेघालय प्रदेशों में पायी जाती है। पहाडी क्षेत्र इनका निवास स्थान है। ये दिखने में काला मिश्रित पीले रंग के हैं। उनकी नाक चपटी और मुंह चौडा है। इनका समाज मातृसत्तात्मक है। इनकी वंशावली स्त्री से चलती है और संपत्ति पर पूर्ण अधिकार स्त्री को है। संतान पर पिता का कोई हक नहीं होता। ईश्वार की कल्पना होते हुए भी उपदेवताओं की पूजा करते हैं। खेतीबाडी इनकी मुख्य आजीविका का मार्ग है। इसके अलावा नारंगी, पान और सुपारी का उत्पादन करते हैं।

1.8.4.2 गारो

गारो जनजाति असम और मेघालय में पायी जाती है। ये तिब्बती- बर्मी भाषा का प्रयोग करते हैं। गारो जनजाति दिखने में पीतवर्ण की है और उनका चेहरा छोटा गोल और नाक चपटी है। पुरुष मुर्गे के पंखोवाला मकुट सिर पर पहनते हैं। गारो जाति पहाडी और मैदानी दोनों क्षेत्रों में बँटे हुए हैं। इनका समाज मातृसत्तात्मक है और वंशावली स्त्री से चलती है। आजीविका केलिए

खेतीबाडी और मछली का शिकार करते हैं। वे अपना घर बाँस से बनाते हैं। अधिकांश गारो ने ईसाई धर्म को अपना लिया है। मदिरापान इनकी जीवन की आवश्यक वस्तु बन गई है।

1.8.4.3 मिजो

मिजोराम के निवासी मिजो आदिवासी कहलाते हैं। इनकी संख्या लगभग 60,000 है। पर्वतीय प्रदेशों में इनका निवास स्थान है। इनकी भी अपनी भाषा और संस्कृति है। ब्रिटिश प्रशासन की स्थापना के कारण उस समय से उन्हें शिक्षा तथा चिकित्सकीय सुविधाएँ प्राप्त होने लगीं। अतः मिजो जनजाति को सभ्य और आधुनिक जीवन की सभी सुविधाएँ प्राप्त हैं।

1.8.4.4 नागा

नागा जनजाति मुख्य रूप से नागालैंड में पायी जाती है। यह प्रदेश घने जंगलों और पहाडों से भरा है और यहाँ अत्यधिक वर्षा होती है। कृषि ही उनका एकमात्र आर्थिक आधार है। नागा जनजाति आर्थिक दृष्टि से गरीब है लेकिन नैतिक स्तर उच्च कोटि का है। नागाओं में अनेक समूह हैं- लोथा नागा, चांग नागा, सेमा नागा, जीमी नागा आदि उनमें प्रमुख हैं।

1.8.4.5 शेरदुक्पेन

शेरदुक्पेन अरुणाचल प्रदेश की प्रमुख जनजाति है। कामेंग जिला इनका प्रमुख निवास स्थान है। इनका समाज पितृसत्तात्मक है। ये लोग बौद्ध धर्म की महायान शाखा को माननेवाले हैं। और ये अत्यन्त शान्तिप्रिय होते हैं।

1.8.4.6 सिंहफो

अरुणाचल प्रदेश में पायी जानेवाली एक जनजाति है सिंहफो। इनका समाज पुरुष प्रधान है। इस समाज में संयुक्त परिवार की प्रथा भी पायी जाती है। धान, मक्का, आलू, सरसों आदि इनकी मुख्य फसल हैं। आजीविका केलिए कृषि को अपनाया है। ये लुहारी कार्य में प्रवीण हैं। अन्य जनजातियों की अपेक्षा सिंहफो अधिक परिश्रमी होते हैं।

1.8.4.7 मेंबो और खंबा

अरुणाचल प्रदेश के वेस्ट सियांग और अपर सियांग जिले में पाये जाते हैं। दोनों जनजातियाँ बौद्ध धर्मावलम्बी हैं। मेंबो और खंबा आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से अत्यधिक पिछडी हैं।

1.8.4.8 नोक्ते

अरुणाचल प्रदेश के तिरप जिले में पाये जानेवाले नोक्ते वैष्णव हिन्दू धर्मावलम्बी है। 'नोक्ते' शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है 'गाँव के लोग'। इनका समाज मूलतः पितृसत्तात्मक है।

इनके अलावा सीझी, बोडो, उफला, कुकी, अंगामी, लुशाई, मुरंग, खमीर, दिआंग, मिनमांग आदि आदिवासी समुदाय भी पाए जाते हैं।

1.8.5 अंडमान-निकोबार द्वीप समूह

अंडमान-निकोबार द्वीप समूहों में प्रमुख रूप से अंदमानी, निकोबारी, जारवा, सेंटिनली आदि जनजातियाँ दिखाई देती हैं। इनका संक्षिप्त इतिहास निम्नलिखित हैं :-

1.8.5.1 ग्रेट अंदमानी

अंदमान द्वीप समूहों में पायी जानेवाली दुर्लभ जनजातियों में से एक है ग्रेट अंदमानी। इनकी कुल जनसंख्या 27 है। पिछली शताब्दी में इनकी संख्या करीब 5000 थी। पर बाद में ये तेज़ी से घटते गए। सन् 1858 के बस्तियों के निर्माण से इनकी मृत्यु की करुण गाथा शुरू होने लगती है। आजकल बूढे हैं जो मौत के इन्तज़ार में जी रहे हैं, युवतियाँ हैं जिनके लिए शादी योग्य वर नहीं और युवकों केलिए शादी योग्य लडकियाँ नहीं। ग्रेट अंदमानियों का जीवन-यापन शिकार और वनोपज पर निर्भर है।

1.8.5.2 जारवा

अंडमान द्वीप समूहों में पायी जानेवाली जनजातियों में 'जारवा' जनजाति भी शामिल है। जारवा जनजाति की जीवन शैली पाषाण युग के मनुष्य से मेल रखती है। ये दिखने में काले रंग के और उनकी ऊँचाई 5 फूट है। कपडों का इस्तेमाल इन्हें नहीं आता। इनकी जनसंख्या करीब 225 से 250 के बीच आती है। शिकार करना, जंगली कन्दमूल, शहद और मछलियाँ इनका जीवनयापन का प्रमुख रास्ता है। ये लोग शंख- सीपियों से पाए जानेवाले मांस भी खाते हैं।

जारवा जनजाति का समाज मातृसत्तात्मक है। इसी कारण उनके जीवन व्यवहार में एक खुलापन दिखाई देता है। मनोरंजन केलिए संगीत और नृत्य का प्रयोग करते हैं। लेकिन वाद्ययन्त्रों का उपयोग नहीं जानते। इस जनजाति का मुख्य क्षेत्र दक्षिण अंदमान और मध्य अंदमान के बीच के द्वीप हैं। भोजन की उपलब्धता के अनुसार समुद्र के किनारे-किनारे घूमकर जीवनयापन करते हैं। जारवा जनजाति को हिंसक आदिवासी भी कहा जाता है। आदिवासियों को खदेडकर अंग्रेज़ लोग रहते आए। अपने अस्तित्व और पूर्वजों से प्राप्त ज़मीन और जंगल केलिए अंग्रेज़ों के विरुद्ध जारवा जनजाति संघर्ष करती रही। और सन् 1857 के विद्रोह के बाद जारवा जनजाति हिंसक बन गयी। तीर और बल्लम उनका पारम्परिक अस्त्र है। उनका एकाधिकार और सुरक्षा की भावना के कारण किसी को भी अपने द्वीप में ठहरने नहीं देते। मुसीबतों का सामना एकता से करते हैं। इस कारण उन्हें तोड पाना मुश्किल की बात है। जारवा जनजाति का एकाधिकार भावना के कारण उन्हें जन सम्पर्क में शामिल कराना एक मुख्य समस्या बन गई है।

1.8.5.3 निकोबारी

निकोबारी जनजाति मंगोल वंश की है। निकोबारी जनजाति आपस में प्रेम और विश्वास के साथ जीती है। इनका प्रमुख व्यवसाय सुअर, बकरी पालन, सुपारी, नारियल तोड़ना, मछली मारना आदि है। इसके अलावा सरकार की राशन दूकानें हैं जहाँ से चावल, शककर, तेल आदि मिलते हैं। निकोबारियों का शारीरिक गठन मज़बूत होता है। उनका रंग गेंहुआ हैं, नाक चपटी, आँखें कुछ

भीतर को धँसी हुई और गालों की हड्डियाँ उभरी हुई दिखाई देती हैं। इनकी संख्या लगभग 25 हज़ार है। निकोबारियों का प्रिय खेल - मल्ल युद्ध, नौका दौड और फूटबॉल है। लोक नृत्य और संगीत उनके जीवन का प्रमुख मनोरंजन है। पर्व-त्योहारों के अलावा मृत लोगों की स्मृतियों में नृत्य-संगीत का प्रयोग करते हैं। निकोबारी हस्तशिल्प में भी कुशल है। बिशप रिचर्डसन नामक अंग्रेज़ी व्यक्ति पर निकोबारियों का एहसान है। क्योंकि उन्होंने ब्रिटिश व जापानी हुकूमत के समय निकोबारियों को एक सूत्र में बाँधकर रखा। संघर्ष की प्रेरणा दी। कालान्तर में निकोबारी लोगों ने ईसाई धर्म को अपनाया। इसी वक्त शिक्षा का प्रचार प्रसार होने लगा। इस प्रकार वे सभ्य समाज की जमात में शामिल हो गए।

1.8.5.4 सेंटिनली

सेंटिनली अंदमान द्वीप समूह में पायी जानेवाली एक दुर्लभ जनजाति है। सेंटिनली नीग्रो वंश के अंतर्गत आती है। इस जनजाति के बारे में अधिक जानकारी नहीं है। अनुमान से कहा जा सकता है कि इनकी जनसंख्या पचास है। सेंटिनली की जीवन शैली और खान-पान जारवा आदिवासियों से मेल रखता है। उनका जीवनयापन शिकार पर निर्भर है। समुद्र किनारे या जंगलों में पेडों के नीचे वे अपने झोंपडियों का निर्माण करते हैं।

1.8.5.5 ओंगी

ओंगी जनजाति विश्व की दस आदिम प्रतिनिधि जनजातियों में से एक है। आजकल बाहरी लोगों केलिए ओंगी जनजाति एक प्रदर्शन की वस्तु बन गई है। इनकी जन संख्या लगभग 96 के आसपास है। ये शिकार और भ्रमण कर जीवनयापन करते हैं। सुअर, कछुए और मछलियाँ इनका मुख्य भोजन पदार्थ हैं। आजकल उनके जीवन में परिवर्तन हो रहा है। लिटिल अंदमान के डुआंग्रीक में सरकार ने उन्हें स्थायी रूप से बसा दिया है। राशन और अन्य सुविधाएँ दी जा रही हैं। चावल के अलावा, नमक, कुछ मसाले और चूना-तम्बाकू भी दिया जा रहा है।

1.8.5.6 शोम्पेन

शोम्पेन मंगोलवंश की दुर्लभ जनजाति है। इनकी अनुमानित जनसंख्या 250 है। शोम्पेन दिखने में आकर्षक और उनका देह गठी हुई है। वे गोरे रंग के हैं। पहले-पहल वस्त्र पहनते नहीं थे। आजकल न के बराबर वस्त्र पहनते हैं। भोजन की उपलब्धता के अनुसार वे समुद्र के किनारे जीवनयापन करते हैं। शहद, पांडुनस, कटहल और जंगली कन्द मूल इनके मुख्य भोजन हैं। इनके अलावा मछली, कछुआ, केंकडे और मगर का भी शिकार करते हैं। शोम्पेन का कोई विशेष वाद्य यन्त्र नहीं और नृत्य संगीत भी नहीं। लेकिन तम्बाकू का इस्तेमाल अवश्य करते हैं। धर्म के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं है। सभ्य समाज के लोगों ने शोम्पेन जनजाति की महिलाओं के साथ शोषण किया इसी कारण वे जनसम्पर्क में आने से कतराते हैं।

1.9 आदिवासी : जीवन और संस्कार

"मनुष्यों की जो जातियाँ आदिमयुग से अपने मूल प्रदेश अथवा क्षेत्र में अपनी मौलिक स्थिति एवं परिस्थितियों के साथ निवास कर रही हैं वे आदिवासी जातियाँ अथवा जनजातियाँ कहलाती हैं।"[17] आदिवासी समुदाय पीढ़ियों से अपने विशिष्ट संस्कारों, रीति-रिवाज़ों एवं मान्यताओं के साथ जीते आ रहे हैं। अतः उनकी अपनी स्वतंत्र संस्कृति, रहन-सहन एवं पूजा पाठ हैं। जनजातियों का जीवन जल, जंगल और जंगली जानवरों के साथ बीतता है। ऐसे सीधे-साधे तथा भोले-भाले जीवन बितानेवाले और अपनी संस्कृति का जतन करनेवाले आदिवासी समुदायों का जीवन और संस्कृति से परिचय होना अनिवार्य है।

1.9.1 खान-पान

आदिवासियों का निवास स्थान जंगल है। इसलिए उनका भोजन वनोपज एवं कृषि पर निर्भर है। कुछ जनजातियाँ शाकाहारी हैं तो कुछ मांसाहारी और कुछ दोनों खाते हैं। मुख्य रुप से चावल, चना, गेहूँ, मक्का, ज्वार, कुटकी, सावाँ आदि की खेती करते हैं। त्योहारों के अवसरों पर मीठा चावल, दाल-रोटी, खिचडी आदि बनाते हैं। वर्षा के समय खेती नहीं होती। इसलिए कंदमूल सुखा कर रखते हैं।

1.9.2 पहनावा

हर एक व्यक्ति का पहनावा उसके समुदाय की परंपरा एवं जातीय विशेषताओं को प्रकट करता है। आदिवासियों के संसार में सभी जनजातियों के

पहनावे में परस्पर भिन्नता देखी जा सकती है। उदाहरण केलिए गोंड आदिवासी घुटनों तक लंबी धोती पहनते हैं, धोती के साथ एक ऊपरी वस्त्र पहनते हैं, उसे 'बंडी' कहा जाता है। गोंड जाति के लोग कंधे पर एक कपडा डालते हैं और सिर पर एक कपडा बाँधते हैं। स्त्रियाँ काँछ लगाकर साडी पहनती हैं। उसके साथ ढीला बड़ा ब्लाउज़ पहनती हैं। वे हरे, लाल आदि गहरे रंगों के कपडे पहनती हैं। इस प्रकार हर एक जनजाति का अपना अलग पहनावा है। लेकिन आज भी कुछ ऐसी जनजातियाँ हैं जो नंगे घूमती हैं।

1.9.3 गहने तथा गोदने

सुन्दरता मानवीय जीवन का अभिन्न हिस्सा है। हर मनुष्य अपने को सुन्दर दिखना चाहता है। इसलिए अपने शरीर को सजा कर रखते हैं। आदिवासी भी अपने शरीर को सजाने केलिए गहने तथा गोदनों का इस्तेमाल करते हैं। प्रत्येक जनजाति के गहने एक-दूसरे से भिन्न है। पहले-पहल फूलों के गहने पहनते थे। पाषाणकाल में आते वक्त पत्थरों के मनकों के गहने पहनने लगे। आदिवासी सोने के गहने नहीं पहनते। उनके गहने ज़्यादातर चाँदी, तथा अन्य धातुओं से बनते हैं। लकडी, मोती, सींगों, हाथी दाँत, कौडी आदि से बने गहने बडे शौक से पहनते हैं। कुछ जनजातियाँ ऐसी हैं जिनमें पुरुष लोग भी गहने पहनते हैं। आदिवासी गोदना गोदवाना पसंद करते हैं। ये पीढियों से गोदना गोदवाते चले आ रहे हैं।

1.9.4 घर-द्वार

मानवीय जीवन में घर-द्वार का अहम स्थान है। जब से मानव, समुदाय में रहना शुरू किया उसके भी पहले घरों में रहना सीख चुके थे। जनजातियों के अपने घर-द्वार हैं जिनके बारे में सुनने और दिखने से कौतूहलता पैदा होती है। पहले प्रत्येक जनजाति के घरों का निर्माण अलग-अलग होता था। पहले वे घास-फूँस, बाँस, लकडी, पत्ते आदि से घर बनाते थे धीरे-धीरे मिट्टी, पुआल, खपरैल आदि ने जगह ले ली। आदिवासियों के घर अधिक लंबे और चौडे नहीं होते। लेकिन घर के मुख्य दरवाज़े और अन्दर के भित्तियों को महिलाएँ चित्रों से सजाकर रखती हैं। सबसे आश्चर्य की बात यह है कि कुछ जनजातियाँ आज भी ऐसी हैं जिनके अभी तक कोई घर-द्वार नहीं है। छायादार पेड और गुफाएँ इनके लिए अपना घर है।

1.9.5 आजीविका

जनजातियों का वास स्थान मुख्यतया जंगल में होता है। पहले-पहल उनकी आजीविका मात्र वनोपज पर निर्भर थी। लेकिन कृषि की खोज के बाद उन्होंने खेती करना शुरू किया। मौसम के अनुसार वे वनोपज इकट्ठे करते हैं और उन्हें बाज़ार ले जाकर बेचते हैं। इसप्रकार उन्हें धन की प्राप्ति होती है। तेंदू पत्ता, महुआ, गुल्ली कोसा, भिलावा, तीखुर, बहेरा आदि उनके वनोपजों में प्रमुख हैं। पशुपालन से भी आदिवासी अपनी आजीविका चलाते हैं। बैल, गाय, बकरी, मुर्गा, कुत्ता, आदि जानवरों को वे पालते हैं। बैलों का उपयोग खेती के कामों में किया जाता है। गाय से दूध, गोबर आदि मिलते हैं। मुर्गों और बकरे

मांसाहार केलिए पाले जाते हैं। इसके अलावा शिकार करना और मछली मारना उनकी रोज़ी-रोटी का मार्ग है।

1.9.6 औषधियाँ

सदियों से जंगल में बसनेवाले आदिवासी समुदायों को जंगल में उगने वाली औषधियों का ज्ञान अच्छे से होता है। विभिन्न प्रकार के जडी बूटियों को इकट्ठा करके वे औषधियों का निर्माण करते हैं। अपने बीमारियों का इलाज वे खुद इन औषधियों के सहारे करते हैं। जंगल में बसकर भी उनका यह औषधीय ज्ञान आश्चर्यजनक की बात है।

1.9.7 नृत्य-संगीत

आदिवासियों के जीवन में नृत्य और संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है। कोई भी ऐसा आदिवासी परिवार नहीं है जिनके पास नृत्य और संगीत का सामान न हो। वे दिन भर के मेहनत के बाद नृत्य और संगीत के द्वारा अपनी थकान दूर करते हैं। आदिवासी नृत्यों में - भगोरिया, सैला, रीना, करमा, गादली, छेरता, सजनी, सोलो आदि प्रमुख हैं। उनके वाद्ययंत्र काफी बडे और आकर्षक होते हैं। नगाडा, मंजीरा, खरताल, चुटकी, ढोल, माँदल, बाँसुरी, पवई, चिटकोरा आदि उनके प्रमुख वाद्ययंत्र हैं।

1.9.8 शिल्प- कलाएँ

शिल्प कला मानवीय भावनाओं को प्रकट करने का एक माध्यम है। जिसके द्वारा मनुष्य अनेक प्रकार के चित्रों, कलात्मक सामग्रियाँ, औजार आदि

बनाते हैं। आदिवासियों के जीवन में शिल्प कला केलिए अहम स्थान है। प्रत्येक जनजाति की अपनी विशेष कला एवं शैली होती है। एक ओर पुरुष लोग कृषि केलिए आवश्यक औजार, धनुष-बाण, सुतली, रस्सी आदि बनाते हैं तो दूसरी ओर स्त्रियाँ घर के दरवाज़े और भित्तियों पर रंग-बिरंगे चित्र बनाते हैं। उसी प्रकार वे लकडी के सजावटी सामान बनाते हैं। सजावटी सामानों में- मूर्तियाँ, पशु-पक्षी, सर्प, जंगली बिलाव आदि मिलते हैं। सहरिया जनजाति के लोग अनाज रखने केलिए मिट्टी के बडे-बडे सुन्दर बर्तन बनाते हैं। अतः शिल्प कला के क्षेत्र में जनजातियों की निपुणता आकर्षणीय है।

1.9.9 पर्व एवं त्योहार

हर व्यक्ति पारिवारिक और सामाजिक खुशियों केलिए त्योहारों को मनाते हैं। आदिवासियों के जीवन में भी पर्व एवं त्योहारों का अहम स्थान है। उनका त्योहारों को मनाने का मूल उद्देश्य देवताओं को प्रसन्न करना है। वे मुख्य रुप से पूर्णिमा और अमावस्या के समय त्योहार मनाते हैं।

होली का त्योहार भारत में बडे धूम-धाम से मनाया जाता है। लेकिन होली के दूसरे दिन जनजातियाँ एक विशेष त्योहार मनाती हैं जिसका नाम है- गल त्योहार। जनजातियों का मानना है कि इस त्योहार से उनके कष्ट एवं रोग इत्यादि से गल देवता रक्षा करेंगे। होली के समय में ही फगुआ त्योहार मनाया जाता है।

उसी प्रकार दशेहरा त्योहार हिन्दू धर्म का दशहरा नाम से मिलता-जुलता है। लेकिन उससे एक दम भिन्न है। यह त्योहार खेती तथा अच्छी फसल की प्रार्थना से जुडा है। आदिवासी फागुन महीने में भगोरिया त्योहार मनाते हैं। इसी बीच युवक् युवतियाँ अपने जीवन साथी को चुनते हैं। चैत गल त्योहार भी आदिवासी युवक युवतियाँ मनाते हैं। इनके अलावा करमा त्योहार, हरेली, बिदरी उत्सव, बाघ पूजन, शंकर चौथ, महादेव पूजन, बरा देव पूजन आदि जनजातियों के प्रमुख्र पर्व एवं त्योहार हैं। पर्व और त्योहार आदिवासी जीवन के अभिन्न अंग है। वे आदिकाल से परंपरा के रूप में अब तक मनाते आ रहे हैं।

1.9.10 देवी-देवता

आदिवासियों का जीवन सदियों से घने जंगलों, पहाडों एवं गुफाओं से होकर गुज़रता आ रहा है। इसलिए उनके मन में भय का वातावरण अवश्य होगा। अतः जनजातियाँ विभिन्न प्रकार की देवी-देवताओं पर विश्वास रखते हैं। ‘आंगादेव’, ‘भीमादेव’, ‘पाटदेव’, ‘त्रिशूलधारी देवी’, ‘पंडिन देवी’, ‘शीतला माता’, ‘बघेश्वर देव’ आदि इनके प्रमुख्र देवी-देवताएँ हैं। देवी-देवताओं की पूजा करने का मूल उद्देश्य अच्छे फसलों का उगना, पारिवारिक दुःख्र एवं बीमारियों से रक्षा इत्यादि है। मानवीय जीवन मिथकों और मान्यताओं से भरा हुआ है। देवी-देवता इनके प्रमुख्र पात्र हैं। लेकिन आदिवासियों के जीवन में मिथक एवं मान्यताओं का असर ज़्यादा पडता है। इसलिए देवी-देवताओं पर उनका विश्वास भी अधिक दिख्राई देता है।

आदिवासी जीवन विभिन्न संस्कारों से संपन्न है। जन्म से मृत्यु तक इन संस्कारों को वे बखूबी निभाते हैं।

1.10 आदिवासी विमर्श

भारत वर्ष के इतिहास में इक्कीसवीं शताब्दी चमत्कारपूर्ण आँकडों का समय है। इस युग का प्रारम्भ ज्ञान, विज्ञान एवं टेक्नॉलजी की उपलब्धियों के साथ हुआ है। इसका प्रमुख कारण मानव जाति का भाव के साथ बुद्धि का प्रयोग है। इस प्रकार वर्तमान दौर चिन्तन के रास्ते खोल रहे हैं। साहित्य उन विषयों पर विचार विमर्श कर रहा है अभी तक विचार नहीं किया हो। साहित्य में आनेवाले नए विमर्श इसके प्रमाण हैं। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, किन्नर विमर्श, पारिस्थितिक विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि इक्कीसवीं सदी के साहित्य को समृद्ध बनानेवाले महत्वपूर्ण विमर्श हैं।

वास्तव में समकालीन लेखन में सन् 1991 के बाद काफी परिवर्तन आया। क्योंकि इस समय भारत में नई आर्थिक नीतियाँ लागू होने लगीं। वैश्वीकरण, उदारीकरण एवं निजीकरण के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में आशातीत उन्नति हुई। आँकडे इसके गवाह हैं। पर नई सभ्यता एवं नई आर्थिक नीतियों से उत्पन्न स्थितियों ने आदिवासी जीवन को सबसे ज़्यादा तंग पहुँचाया है। आदिवासी याने जंगल के बच्चे किसी को ज़रा सा भी तकलीफ नहीं देख सकता। लेकिन आज वे अपने अधिकारों के हकदार नहीं हैं। बद से बदत्तर ज़िन्दगी जीने को विवश है।

नवीन आर्थिक नीतियों ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर अनुकूल एवं प्रतिकूल परिणाम डाला। एक तरफ भौतिक वैज्ञानिक एवं संचार की दृष्टि से विकसित हमारा राष्ट्र है तो दूसरी तरफ तहस-नहस हो रहे हमारे पर्वत, नदियाँ, जंगल और आदिवासी मज़दूर हैं। बहुराष्ट्रीय निगमों केलिए प्रयुक्त विकास शब्द आदिवासियों केलिए विनाश का अर्थ प्रस्तुत करता है। आदिवासी जीवन तथा उनकी ज़मीन पर कब्जा वैदिक काल से आज तक चला आ रहा है। लेकिन आज वे विकास की अंधी दौड में अदृश्य होते जा रहे हैं। शिक्षित समाज ने उनकी मूल्यवत्ता और महत्व को नज़र अन्दाज़ कर उनकी जान पर खतरा पहुँचाया है।

आदिवासी जल-जंगल-ज़मीन के नायक हैं। वे संयोगपूर्ण जीवन जीना चाहते हैं। परन्तु पौराणिक ग्रन्थों में आदिवासियों का उल्लेख अपमानित रूप से हुआ है। जैसे जंगली, राक्षस, बन्दर इत्यादि। जनजाति या अनुसूचित जनजाति शासकीय शब्द है। सभ्य समाज आदिवासियों को आदिम निवासी के रूप में स्वीकार करने के बजाय उनकी पहचान को मिटा रहा है।

भारत के अधिकांश आदिवासी कृषक हैं। इसलिए उनका ज़मीन से विशेष लगाव है। परन्तु सभ्य समाज का हिंसात्मक हस्तक्षेप से आदिवासी अपनी ज़मीन से खदेडे जा रहे हैं। भूमि हीनता के कारण आदिवासी आज अपनी आजीविका से वंचित हो रहे हैं। और कटे पतंग की तरह महानगरों में दर-दर भटक रहे हैं। भूमण्डलीकरण, उत्खनन, संचार, सूचना प्रौद्योगिकी, भ्रष्टाचार,

सामाजिक उत्पीडन, शोषण आदि सभ्य समाज के हथियार हैं। जो आदिवासी इलाकों में चील की भाँति मंडरा रहे हैं।

वैश्वीकरण के महाजाल से अधिकांश आदिवासी परेशान हैं। महानगरीय सभ्यता में आकर उनके तन मन पर चोट पहुँचा है। विकास के खोखलेपन में चूर होता आदिवासी समाज असल में भारतीय संस्कृति के संवाहक हैं। लेकिन आज वे अपनी संस्कृति एवं सभ्यता की रक्षा नहीं कर पा रहे हैं। बाज़ारवाद, सरकारी नीतियाँ आदि के कारण आदिवासी संस्कृति, जीवन शैली, भाषा सब संकट में है।

आदिवासी जल-जंगल-ज़मीन का लूट का सिलसिला आज ज़ोरों पर है। आदिवासी इलाकों में से बन्दूकों की आवाज़ें गरज रही हैं। विस्थापन, बेरोज़गारी, बेदखली, भूख आदि कई समस्याओं से आदिवासियों का जीवन दूभर हो गया है। दरिन्दगी और बर्बरता के कारण आदिवासी समाज तबाह हो रहा है।

घने जंगलों और पहाडों में निवास करनेवाले आदिवासी अशिक्षित भी हैं। लेकिन उनमें जागी स्वतन्त्रता के संघर्ष बोध ने वास्तव में नए आयाम को उद्घाटित किया है। जीवन के जटिल मोडों, युद्धों आदि कई कारणों से उनमें परिवर्तनों की आँधी छायी है। इसलिए वे मुख्यधारा में शामिल होना चाहते हैं। परन्तु आधुनिकता की चकाचौंध में किसे छोडना किसे ग्रहण करना यह आदिवासी समाज के सामने सबसे बडा सवाल है।

नयी शती में आदिवासी स्वर गूँज रहा है। आज आदिवासी अपने जीवन के जटिल मोडों का सामना कर मुक्ति का सपना देख रहा है। ऐसे में वे नये सिरे से संघर्ष करने को कटिबद्ध हुए हैं। एक तरफ अपनी बात सुनाने हेतु आदिवासी लडने को विवश हुए हैं। और दूसरी तरफ पढे-लिखे आदिवासी कलम लिए अपने जीवन यथार्थ को रचनाओं के माध्यम से व्यक्त कर रहे हैं। सदियों से अंधेरा छायी उनकी ज़िन्दगी में भरपूर अंधेरा छाने जा रहा है। ऐसे जीवन में उजाले की किरणें लाना अवश्य है। इसलिए आदिवासी और गैर-आदिवासी साहित्यकार जमकर संघर्ष कर रहे हैं। और ऐसे साहित्य रच रहे हैं जो पाठक मन में सीधे उतर जाएँ। आदिवासियों की चुप्पी को देख सभ्य समाज हमेशा मसखरी उडाता रहता है। लेकिन किसी की खामोशी को उनकी कमज़ोरी समझना अक्सर गलत स्थापित होता है।

1.11 आदिवासी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर

समकालीन आदिवासी साहित्य को जानने और समझने केलिए आदिवासी रचनाकारों को जानना अनिवार्य है। क्योंकि कृतिकार और उनकी रचनाओं के अध्ययन से ही उस साहित्य का अध्ययन हो सकता है। लेकिन आदिवासी साहित्य लेखन में आदिवासी समाज और गैर-आदिवासी समाज से जुडे लेखक एक साथ शामिल हैं। इसलिए अध्ययन की सुविधा केलिए आदिवासी साहित्यकार और गैर-आदिवासी साहित्यकार ऐसे दो भागों में बाँटा गया है:-

1.11.1 आदिवासी साहित्यकार

आदिवासी साहित्यकारों में वे लेखक शामिल हैं जो खुद आदिवासी समाज से जुडे हो या आदिवासी हो। ऐसे प्रमुख रचनाकारों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

1.11.1.1 रामदयाल मुण्डा

रामदयाल मुण्डा आदिवासी साहित्य जगत के वरिष्ठ एवं मशहूर लेखकों में से एक हैं। वे आदिवासी साहित्य में कवि के रूप में सक्रिय रहें। उनकी कविताएँ चार-पाँच पंक्तियों में पूरे आदिवासी जीवन को दर्ज करने में सक्षम रही हैं। उनकी रचनाएँ आदिवासी समाज के प्रति सभ्य समाज का विकृत व्यवहार को नए अन्दाज़ से परखने का प्रयास हैं। काव्य भाषा प्रतीकों से युक्त है।

‘नदी और उसके सम्बन्धी तथा अन्य नवगीत’ उनका महत्वपूर्ण काव्य संकलन है।

1.11.1.2 हरिराम मीणा

आदिवासी साहित्य जगत में हरिराम मीणा का अग्रिम स्थान है। उनकी रचनाओं में इतिहास बोध झलकता है। साथ ही समस्त आदिवासी समाज के यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं। साहित्य की लगभग सभी विधाओं में उनकी रचनाएँ शामिल हैं।

अब तक तीन काव्य संकलन (हाँ याद मेरा है, सुबह के सत्तज़ार में, आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएँ), दो यात्रा वृत्तान्त (साईबर सिटी से लंगे आदिवासियों तक, जंगल-जंगल जलियाँवाला), दो उपन्यास (धूणी तपे तीर, डाँग) और अमली नामक कहानी भी लिख चुके हैं।

1.11.1.3 लक्ष्मण सिंह कावडे

आदिवासी रचनाकारों में लंक्ष्मण सिंह कावडे उल्लेखनीय हैं। वे हिन्दी और छत्तीसगढी दोनों भाषा के ज्ञाता है। हास्य/व्यंग्य तथा मौलिक रचनाओं का प्रकाशन दोनों भाषाओं में हुआ है। इसके अलावा सम्पादित पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं। 'आज भी वैसी', 'भविष्य के प्रति' आदि उनके आदिवासी केन्द्रित महत्वपूर्ण कविताएँ हैं।

1.11.1.4 सहदेव सोरी

सहदेव सोरी आदिवासी युवा साहित्यकारों में से हैं। वे गोंड परिवार से हैं। कविता, कहानी आदि क्षेत्रों में उनका लेखन कार्य चल रहा है। सम्पादित पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं।

1.11.1.5 महादेव टोप्पो

समकालीन आदिवासी साहित्यकारों में महादेव टोप्पो का अहम स्थान है। वे कवि एवं निबन्धकार के रूप में सक्रिय हैं। उनकी रचनाएँ विकास, पूँजीवाद, बाज़ारवाद, नक्सलवाद आदि विद्रूपताओं को झेलते आदिवासी समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती हैं।

‘जंगल पहाड के पाठ’ (2017) उनका महत्वपूर्ण काव्य संकलन है।

1.11.1.6 भगवान गव्हाडे

भगवान गव्हाडे युवा आदिवासी साहित्यकारों में से एक हैं। कविता के अलावा कहानी लेखन में भी वे रुचि रखते हैं। उनकी रचनाएँ आदिवासी जीवन का त्रासदपूर्ण दस्तावेज हैं और हिन्दी कविता को एक नयी परिभाषा गढने में सफल हुई हैं।

‘आदिवासी मोर्चा’ (2014) उनका काव्य संकलन है। ‘गोल्डन सिटी’ आदिवासी जीवन केन्द्रित उनकी बहुचर्चित कहानी है।

1.11.1.7 शिवलाल किस्कू

शिवलाल किस्कू आदिवासी रचनाकारों में से एक हैं। सम्पादित पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कृतियाँ प्रकाशित हो रही हैं। ‘सवाल’, ‘आश्वासन’ आदि उनकी महत्वपूर्ण कविताएँ हैं।

1.11.1.8 ओली मिंज

ओली मिंज युवा साहित्यकारों में प्रमुख्र हैं। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में और सम्पादित पुस्तकों में उनकी कृतियाँ प्रकाशित हो रही हैं। ‘सरई’ नामक काव्य संकलन प्रकाशित हैं। ‘सरहुल आ गया’, ‘स्वर्णिम युग की स्वर्णरेख्रा’ आदि उनकी महत्वपूर्ण कविताएँ हैं। आदिवासी समाज के सपने और भविष्य को लेकर कवि चिन्तित हैं।

1.11.1.9 शिशिर टुडू

शिशिर टुडू आदिवासी साहित्यकारों में प्रमुख हैं। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाएँ और सम्पादित पुस्तकों में उनकी कृतियाँ प्रकाशित हो रही हैं। 'फिर होगा उलगुलान', 'जान देंगे ज़मीन नहीं' आदि उनकी आदिवासी जीवन पर आधारित बहु चर्चित कविताएँ हैं।

1.11.1.10 शिरोमणि महतो

समकालीन आदिवासी युवा कवियों में शिरोमणि महतो अपना अलग स्थान रखते हैं। 'तहलका', 'युद्धरत आम आदमी', 'समकालीन भारतीय साहित्य', 'सर्वनाम' आदि पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। 'धूल में फूल' (बाल कविता संग्रह) 1993, 'पतझड का फूल' (काव्य पुस्तिका) 1996, 'उपेक्षित' (उपन्यास) 2000, 'कभी अकेले नहीं' (कविता संग्रह) 2007, 'भारत का भूगोल' (कविता संग्रह) 2012, 'करमजला' (उपन्यास) (2018) आदि प्रकाशित पुस्तकें। 'चाँद से पानी' (2018) शिरोमणि महतो का आदिवासी जीवन केन्द्रित महत्वपूर्ण काव्य संकलन है।

1.11.1.11 ग्लैडसन डुंगडुंग

समकालीन आदिवासी साहित्यकारों में ग्लैडसन डुंगडुंग का नाम काफी चर्चित हैं। अब तक अग्रेज़ी एवं दैनिक अखबारों, पत्रिकाओं और सम्पादित पुस्तकों में 200 से ज़्यादा आलेख प्रकाशित हो चुके हैं। 'ह्यूज कंट्री इट इज़ एनिवे?', 'क्रासफायर', 'उलगुलान का सौदा', 'विकास के कब्रगाह' एवं

‘झारखण्ड में अस्मिता संघर्ष’ आदि उनके महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं। ‘नगाडी का नगाडा’, ‘झारखण्ड मानवाधिकार रपट’ आदि का संपादन। ‘हमें नहीं चाहिए तुम्हारा रंगीन चश्मा’, ‘बिरसा आबा अब तो आओ’, ‘अगुआ बनने की कोशिश मत करना’ आदि उनके आदिवासी जीवन केन्द्रित महत्वपूर्ण कविताएँ हैं।

1.11.1.12 अनुज लुगुन

समकालीन आदिवासी साहित्यकारों में अनुज लुगुन का नाम उल्लेखनीय हैं। वे ‘मुक्तिबोध राष्ट्रीय काव्य सम्मान’ (2001), ‘भारत भूषण अग्रवाल सम्मान’ (2011) आदि सम्मानों से सम्मानित हैं। ‘उलगुलान की औरतें’, ‘अघोषित उलगुलान’, ‘गुरिल्ले का आत्मकथन’ आदि उनके बहुचर्चित कविताएँ हैं। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं और सम्पादित पुस्तकों में उनकी रचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं। ‘बाघ और सुगना मुण्डा की बेटी’ (2017) उनकी आदिवासी जीवन केन्द्रित लम्बी कविता है।

1.11.1.13 भुजंग मेश्राम

आदिवासी साहित्यकारों में भुजंग मेश्राम का नाम उल्लेखनीय हैं। ‘उलगुलान’ (1990) उनका पहला काव्य संकलन है। हिन्दी, मराठी एवं अंग्रेज़ी भाषा में अनेक कविताएँ प्रकाशित हो रही हैं।

1.11.1.14 वाल्टर भेंगरा तरुण

वाल्टर भेंगरा तरुण का नाम समकालीन आदिवासी साहित्यकारों में काफी चर्चित हैं। वे कथाकार के रूप में सक्रिय हैं। ‘लौटती रेखाएँ’, ‘देने का

सुख', 'जंगल की ललकार' आदि उनके महत्वपूर्ण कहानी संकलन हैं। 'शाम की सुबह', 'तलाश', 'गैंग लीडर', 'कच्ची कली' आदि उपन्यास हैं।

1.11.1.15 भुवन लाल सोरी

भुवन लाल सोरी आदिवासी रचनाकारों में मशहूर है। वे गोंड परिवार से हैं। कविता एवं व्यंग्य लिखने में रुचि रखते हैं। सम्पादित पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं। 'झुरमुटों में छुपा मेरा गाँव', 'उजाले की तलाश में', 'पहाडी के उस पार से' आदि उनकी आदिवासी केन्द्रित महत्वपूर्ण कविताएँ हैं।

1.11.1.16 मोती लाल

मोती लाल युवा आदिवासी साहित्यकार हैं। विभिन्न महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कृतियाँ प्रकाशित हो रही हैं। 'जंगल में बस्तियाँ', 'फ्रेम के बाहर खडा वह' आदि उनके महत्वपूर्ण कविताएँ हैं।

1.11.1.17 वाहरु सोनवणे

वाहरु सोनवणे का नाम आदिवासी साहित्यकारों में काफी चर्चित है। कई आदिवासी आन्दोलनों में भाग लिये। बाद में श्रमिक संघटन नामक आदिवासी संगठन में कार्यरत रहें। उनका कविता संकलन 'पहाड हिलने लगा है' नाम से अनुदित हैं। 'स्टेज' उनकी सबसे महत्वपूर्ण कविता है।

1.11.1.18 पीटर पॉल एक्का

आदिवासी साहित्यकारों में पीटर पॉल एक्का का नाम काफी चर्चित रहा। वे कथाकार के रूप में सक्रिय रहें। 'खुला आसमान बंद दिशाएँ', 'परती ज़मीन', 'राजकुमारों के देश में' आदि उनके महत्वपूर्ण कहानी संकलन हैं। 'पलाश के फूल', सोन पहाडी', 'मौन घाटी', और 'जंगल के गीत' उनके उपन्यास श्रृंखला में आते हैं।

1.11.1.19 सुनील कुमार 'सुमन'

सुनील कुमार 'सुमन' नाटककार एवं कथाकार के रूप में सक्रिय हैं। कई प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, कविता, आलेख और नाटक प्रकाशित हो रहे हैं। 'दोस्ती' उनका कहानी संकलन है। और 'एक बार फिर' उनका आदिवासी जीवन केन्द्रित चर्चित नाटक है।

इनके अलावा शंकर लाल मीणा, हज़ारी लाल मीणा 'राही' आदि अन्य आदिवासी लेखकों में प्रमुख हैं।

1.11.1.20 सुशीला सामद

सुशीला सामद हिन्दी की पहली भारतीय आदिवासी कवयित्री हैं। वे 'सुशीला सामंत' नाम से भी जानी जाती हैं। कवयित्री के अलावा पत्रकार, संपादक एवं स्वतन्त्रता आन्दोलनकारी भी हैं।

‘प्रलाप’ (1935) और ‘सपने का संसार’ उनके दो महत्वपूर्ण काव्य संकलन हैं।

1.11.1.21 एलिस एक्का

एलिस एक्का हिन्दी कथा साहित्य में पहली महिला आदिवासी कहानीकार के रुप में मशहूर हैं। एलिस एक्का की कहानियों का संकलन ‘एलिस एक्का की कहानियाँ’ (2015) नाम से वंदना टेटे के संपादन में प्रकाशित हुआ है।

1.11.1.22 वंदना टेटे

वंदना टेटे भारत की आदिवासी लेखिकाओं में महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। वे कवयित्री, आलोचक एवं संपादक के रुप में सक्रिय हैं। ‘कोनजोगा’ (2015) उनका महत्वपूर्ण काव्य संकलन है।

1.11.1.23 निर्मला पुतुल

निर्मला पुतुल आदिवासी कवयित्रियों में सबसे अधिक चर्चित हैं। संथाली, हिन्दी, बंगला भाषाओं में कविता, गीत, लघुकथा एवं डायरी लेखन और साथ ही अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित हैं। वे आदिवासी जीवन को जड से जानकर वर्तमान में उनकी जीवन शैली, सामूहिकता, संस्कृति और भाषा के मूल्यों को लेकर चिंतित हैं।

‘नगाडे की तरह बजते शब्द’ (2004), ‘बेघर सपने’ (2014) आदि उनके दो महत्वपूर्ण काव्य संकलन हैं। निर्मला पुतुल संथाली है। इसलिए उनकी

रचनाएँ संथाली भाषा में उपलब्ध हैं। लेकिन संथाली कविताओं का हिन्दी, अंग्रेज़ी एवं मराठी भाषा में अनुवाद कार्य किया है।

1.11.1.24 ग्रेस कुजूर

ग्रेस कुजूर समकालीन आदिवासी कवयित्रियों में वरिष्ठ नज़र आती हैं। 'आज', 'प्रभात खबर', 'युद्धरत आम आदमी' आदि कई पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित हैं। उनकी अधिकांश रचनाएँ आदिवासी समाज में व्याप्त बाज़ारीकृत विस्फोट के प्रति चेतावनी देती हैं।

ग्रेस कुजूर का संपूर्ण कविताओं का संकलन रूप 'एक और जनी शिकार' नाम से 2020 में प्रकाशित हुआ। 'महुआ गिरे आधी रात' नामक नाटक बहुचर्चित है। वे रेडियो नाटक तथा प्रहसन में भी विशेष रुचि रखती हैं।

1.11.1.25 जसिंता केरकेट्टा

जसिंता केरकेट्टा समकालीन आदिवासी युवा कवयित्रियों में मशहूर हैं। उनकी रचनाएँ आदिवासी जीवन की टूटन से साक्षात्कार करानेवाली है। अपने अनुभूत जीवन यथार्थ को समाज के सामने लाना उनका मूल उद्देश्य है।

अनेक प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं। 'अंगोर' (2016) और 'जडों की ज़मीन' (2018) आदि उनके दो महत्वपूर्ण काव्य संकलन हैं।

1.11.1.26 रोज़ केरकेट्टा

रोज़ केरकेट्टा आदिवासी रचनाकारों में सबसे पुराने हस्ताक्षरों में से एक हैं। अब तक कई प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ निबन्ध एवं कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। उनकी रचनाएँ आदिवासी स्त्री शोषण और आदिवासी जीवन के इर्द-गिर्द से होकर गुजरती हैं।

1.11.1.27 आलोका कुजूर

आलोका कुजूर समकालीन आदिवासी युवा कवयित्रियों में से एक हैं। वे स्वतंत्र पत्रकार, लेखिका, शोधार्थी, महिला चिन्तक एवं कवयित्री के रूप में कार्यरत हैं। अब तक कई प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित हुई हैं। आलोका कुजूर की कविताएँ आदिवासी जनजीवन की गहराई तक छूती है। साथ ही सांस्कृतिक धरोहर से साक्षात्कार कराती हैं।

‘नये हस्ताक्षर’ (2020) उनका महत्वपूर्ण काव्य संकलन है।

1.11.1.28 सरिता सिंह बडाइक

सरिता सिंह बडाइक हिन्दी की वरिष्ठ आदिवासी कवयित्रियों में से एक हैं। उनकी कई रचनाएँ प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाएँ और सम्पादित पुस्तकों में छपकर आ रही हैं। उनकी कृतियाँ आदिवासी स्त्री मुक्ति को ज़ोर देती हैं।

‘नन्हें सपनों का सुख’ उनका महत्वपूर्ण काव्य संकलन है।

इनके अलावा सरोज केरकेट्टा, सरस्वती गागराई, ज्योति लकडा, नितिशा खलको, मंजु ज्योत्सना, मीरा राम निवास आदि अन्य आदिवासी महिला लेखिकाओं में मशहूर हैं।

1.11.2 गैर-आदिवासी साहित्यकार

गैर-आदिवासी साहित्यकारों में वे लेखक शामिल है जो आदिवासी न हो। ऐसे रचनाकारों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

1.11.2.1 संजीव

संजीव हिन्दी साहित्य की जनवादी धारा के प्रमुख साहित्यकार हैं। कहानी एवं उपन्यास दोनों विधाओं में समान रूप से रचना कार्य। उनकी रचनाओं का केन्द्रीय विषय मुख्यधारा से कटे क्षेत्रों और वर्गों का गहन अध्ययन है। अतः आदिवासी संस्कृति का यथार्थ चित्र है।

'प्रेतमुक्ति', 'दुनिया की हसीन औरत', 'डायन और अन्य कहानियाँ' आदि उनके महत्वपूर्ण कहानी संकलन हैं। 'सावधान नीचे आग है', 'धार', 'पांव तले की दूब', 'जंगल जहाँ शुरु होता है' आदि उनके आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यास हैं।

1.11.2.2 राकेश कुमार सिंह

गैर-आदिवासी साहित्यकारों में राकेश कुमार सिंह का नाम उल्लेखनीय हैं। वे जनवादी धारा के प्रमुख साहित्यकार हैं। कहानीकार एवं उपन्यासकार के

रूप में सक्रिय हैं। उनकी रचनाओं ने आदिवासी जीवन की आर्थिक परिस्थितियों को हूबहू चित्रित किया है।

'ओह पलामू', 'हांका तथा अन्य कहानियाँ', 'जोडा हारिल की रूप कथा', 'महुआ मांदल और अंधेरा' आदि उनके महत्वपूर्ण कहानी संकलन हैं। और उपन्यासों में 'जो इतिहास में नहीं है', 'पठार पर कोहरा', 'जहाँ खिले हैं रलपलाश' आदि उल्लेखनीय हैं।

1.11.2.3 वीरेन्द्र जैन

समकालीन गैर-आदिवासी साहित्यकारों में वीरेन्द्र जैन का अहम स्थान है। उन्होंने 'डूब' एवं 'पार' उपन्यासों के माध्यम से आदिवासी साहित्य जगत में अपना अलग स्थान बना लिया। प्रस्तुत उपन्यासों में लेखक आदिवासी जीवन-शैली, आचार-विचार, पर्व एवं त्योहारों का विस्तृत विचार किया है। साथ ही विकास के खोखलेपन से टूटता उनके जीवन को भी दर्शाया है।

1.11.2.4 रणेन्द्र

रणेन्द्र का गैर-आदिवासी साहित्यकारों में अग्रिम स्थान है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' उनका महत्वपूर्ण उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास आदिवासी जीवन पर केन्द्रित है। असुर नामक जनजाति के माध्यम से लेखक आदिवासी समाज में व्याप्त भूख, गरीबी, अशिक्षा एवं जल-जंगल-ज़मीन पर कब्जा आदि अनेक समस्याओं को हमारे सम्मुख रखने का प्रयास किया है। साथ ही सरकारी अफसरों एवं नेताओं द्वारा आदिवासी कन्याओं पर होनेवाले शोषण पर भी विचार-विमर्श किया है।

1.11.2.5 डॉ. खन्ना प्रसाद अमीन

डॉ. खन्ना प्रसाद अमीन समकालीन युवा कवि एवं आलोचक के रूप में सक्रिय हैं। आदिवासी साहित्य जगत केलिए उनका काव्य संकलन 'आदिवासी की मौत' (2019) महत्वपूर्ण देन है। प्रस्तुत संकलन की अधिकांश कविताएँ विस्थापन की पीडा को झेलते आदिवासियों की हकीकत को दर्शाता है। 'विस्थापन का दर्द', 'बिखर गए', 'जंगल और पहाड', 'गायब होता जंगल', 'काम की तलाश में', 'विकास के लिए' आदि इस संकलन की महत्वपूर्ण कविताएँ हैं।

इनके अलावा गैर-आदिवासी साहित्यकारों में श्रीप्रकाश मिश्र, भगवानदास मोरवाल, विनोदकुमार शुक्ल आदि का नाम उल्लेखनीय हैं।

1.11.2.6 मैत्रेयी पुष्पा

गैर-आदिवासी लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा का नाम उल्लेखनीय है। उनका 'अल्मा कबूतरी' नामक उपन्यास बहुचर्चित है। प्रस्तुत उपन्यास में आदिवासी स्त्री शोषण का सटीक चित्रण हुआ है। उपन्यास के दौरान लेखिका ने आदिवासी समाज में व्याप्त स्त्री शोषण, उत्पीडन एवं अत्याचारों को समाज के सामने लाने का प्रयास किया है।

1.11.2.7 रमणिका गुप्ता

रमणिका गुप्ता कथाकार एवं कवयित्री के रूप में काफी चर्चित हैं। उनकी रचनाएँ मज़दूरों, दलितों, आदिवासियों एवं महिलाओं के अधिकारों के

लिए संघर्षरत हैं। साहित्यिक पत्रिका 'युद्धरत आम आदमी' की संपादक भी रहीं। 'सीता मौसी' उपन्यास और 'बहु-जुठाई' कहानी संकलन है। उनके चौदह कविता संग्रह हैं। उनमें 'आम आदमी के लिए' (1982), 'प्रकृति युद्धरत है' (1987), 'अब मूक नहीं बनेंगे हम' (1997), 'तुम कौन' (1999) आदि प्रमुख हैं। आदिवासी जीवन एवं आदिवासी साहित्य जगत् केलिए उनका जीवन एक अमूल्य देन है। आदिवासी समाज के यथार्थ को परखना उनकी खास विशेषता रही।

1.11.2.9 मेहरुन्निसा परवेज़

गैर-आदिवासी साहित्यकारों में मेहरुन्निसा परवेज़ का नाम उल्लेखनीय है। वे समकालीन महिला साहित्यकार एवं कथाकार के रूप में सक्रिय हैं। उपन्यासों से ज़्यादा उनकी कहानियों में आदिवासी बस्तर की ज़िन्दगियाँ झलकती हैं।

'आँखों की दहलीज', 'अकेला पलाश', 'कोरजा' आदि उनके महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। और 'गलत पुरुष', 'फालगुनी', 'कानी बाट' आदि आदिवासी जीवन केन्द्रित महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं। अतः उनकी रचनाएँ आदिवासी जीवन और संस्कार के यथार्थ को उकेरती हैं।

गैर-आदिवासी लेखिकाओं में शरद सिंह का नाम भी उल्लेखनीय है।

1.12 वर्तमान परिप्रेक्ष्य

साहित्य दिन-ब-दिन नया आकार ले रहा है। साहित्यकार का मूल उद्देश्य समाज के वस्तु स्थिति से अवगत कराना और उसे नयी दिशा देना है। हिन्दी के

साहित्यिक परिदृश्य पर आज आदिवासी विमर्श को लेकर हल-चल मच रहा है। लगभग साठ वर्षों से हिन्दी साहित्य में आदिवासी जीवन की चर्चा हो रही है। लेकिन उत्तरशती तक पहुँचते यह एक विमर्श का रूप धारण कर लिया और आज इक्कीसवीं शती में एक आन्दोलन के रूप में हमारे सामने आ रहा है। आदिवासी साहित्य या आदिवासी विमर्श पूरी दुनिया में अनेक नामों से जाना जाता है। ‘‘यूरोप एवं अमेरिका में इसे नेटिव अमेरिकन लिटरेचर, कल्र्ड लिटरेचर, स्लेव लिटरेचर, आफ्रीकन देशों में ब्लैक लिटरेचर और आस्ट्रेलिया में एबोरिजनल लिटरेचर, फर्स्ट पीपुल लिटरेचर और ट्राइबल लिटरेचर कहा जाता है। भारत में इसे हिन्दी और भारतीय भाषाओं में सामान्यतः आदिवासी साहित्य ही कहा जाता है।’’[18]

आज आदिवासी साहित्य हिन्दी साहित्य का मूल आधार बनता जा रहा है। लेकिन आदिवासी साहित्य माने क्या है? यह एक प्रश्न चिह्न है। इस सवाल को लेकर मशहूर लेखिका रमणिका गुप्ता की राय इस प्रकार थी-‘‘मैं आदिवासी साहित्य उसी को मानती हूँ जो आदिवासियों ने लिख्रा और भोगा है। उसे आदिवासी समस्याओं, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक स्थितियों तथा उनकी जीवन-शैली पर होना आधारित होगा। आदिवासियों को अपनी आस्थाओं, मिथकों, लोक कथाओं, लोक गीतों, लिजिन्द्रयों व वीर गाथाओं का वाचिक साहित्य बहुतज समृद्ध हैं आज के समकालीन साहित्य में भी वे कहानी, कविता, उपन्यास, आत्मकथा, संस्मरण व पत्रकारिता में हस्तक्षेप कर रहे हैं। इन सब के बावजूद उनमें धार्मिक कट्टरता व अन्याय नहीं बल्कि सहिष्णुता,

सरलता और सहजता है। वैसे जो गैर-आदिवासी समर्थक साहित्य के रचनाकार होते हैं। वे भी आदिवासियों की समस्याओं के हल के लिए कंधे से कंधा मिलाकर खडे होते हैं। यही परिभाषा दलित साहित्य के संदर्भ में भी लागू होती है। ऐसे आप सहानुभूति या समर्थन का साहित्य भी कह सकते हैं। इसका हम स्वागत करते हैं।"[19] इससे स्पष्ट है कि आदिवासी लेखन क्षेत्र में आदिवासी समाज के लोग और गैर-आदिवासी लोग सक्रिय हैं। वास्तव में आदिवासी साहित्य आदिवासी जीवन का साहित्य है। उनकी सहनशीलता और संघर्षशीलता से परिचित कराना इसका मूल उद्देश्य है।

आदिवासी समाज को केन्द्र बनाकर लिखने की परम्परा नयी नहीं है। बहुत पहले से ऐसी रचनाएँ होती आयी हैं। लेकिन अब एक धारा के रूप में एक विमर्श के रूप में आदिवासी साहित्य उभर रहा है। हिन्दी के गैर-आदिवासी साहित्यकारों में- रमणिका गुप्ता, संजीव, राकेश कुमार सिंह, बजरंग तिवारी, रणेन्द्र, शानी, मैत्रेयी पुष्पा, राधाकृष्ण, मेहरुन्निसा परवेज़ आदि का नाम उल्लेखनीय हैं। और हिन्दी के आदिवासी साहित्यकारों में- सुशीला सामद, वंदना टेटे, महादेव टोप्पो, निर्मला पुतुल, हरिराम मीणा, ग्रेस कुजूर, वाहरु सोनवणे आदि का नाम उल्लेखनीय हैं।

आदिवासी जीवन को साहित्य के केन्द्र में लाने का काम अनेक आदिवासी एवं गैर-आदिवासी लेखकों द्वारा संपन्न हुआ है। समय के साथ साहित्यकार आदिवासी विमर्श व आदिवासी समस्याओं को साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से उचित अभिव्यक्ति प्रदान की है। साहित्य की अन्य

विधाओं की अपेक्षा उपन्यास विधा में आदिवासियों की चर्चा काफी ज़्यादा हुई है। जब कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन का पदार्पण हुआ तो उन्हें आंचलिक कहकर उसकी परिधि सीमित कर दी गई। लेकिन साहित्यकार उनकी लेखनी समृध्द करते रहे। आज साहित्य की लगभग सभी विधाओं में आदिवासी विमर्श का रचनात्मक आधार प्राप्त होता है।

कविता साहित्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा है। हिन्दी काव्य साहित्य में आदिवासी की चर्चा काफी पुरानी है। क्योंकि पौराणिक काल के ग्रन्थों में उनका आख्यान मिलता है। आज समकालीन साहित्यकारों ने उनकी समस्याओं को काव्यात्मक रूप प्रदान करने में कोई कोर-कसर नहीं छोडा है। आदिवासी समाज का संकट सदियों से जारी है। साहित्यकार आदिवासियों की सभ्यता, विस्थापन, शोषण, अस्मिता की पहचान, परंपरा, आँचलिकता, भाषा आदि को महत्व दिया है। अनुज लुगुन, निर्मला पुतुल, महादेव टोप्पो, जसिंता केरकेट्टा, हरिराम मीणा, वंदना टेटे जैसे साहित्यकार पिछडापन और हाशियेपन के धागे में बंदे आदिवासी समाज को देख प्रतिकार का महाख्यान रचने में एक साथ समर्थ हुए हैं। इसलिए हिन्दी काव्य साहित्य में उनकी पीडा कसक उठती है।

आदिवासी विमर्श का उद्देश्य आदिवासी की जीवन प्रणाली, सामाजिक स्थिति और उनकी समस्याओं का विश्लेषण करके उन समस्याओं की ओर सभ्य समाज को आकर्षित कराना है। वर्तमान में देखा जाए तो आधुनिकता के इस माहौल में अगर कोई समाज सबसे अधिक वंचित है तो वह आदिवासी समाज

है। आदिवासी समाज की दशा, दुर्दशा एवं जीवन संघर्ष आज समकालीन साहित्य का प्रमुख्र स्वर बन गया है।

आज हमारा देश प्रगति की राह पर है। पर भारतीय आदिवासी समाज विकास की धारा से पूरी तरह जुड नहीं पायें। मूलभूत अधिकारों से वंचित गरीबी की रेख्रा के नीचे जीवनयापन कर रहे आदिवासी अपनी अस्मिता और अस्तित्व की लड़ाई लड रहे हैं। अन्य पिछडे लोगों की तुलना में आदिवासी अधिक पीडित, शोषित, उपेक्षित एवं अभावग्रस्त हैं। एक तरफ चमचमाता हुआ इक्कीसवीं सदी का भारत है तो दूसरी तरफ सब कुछ छीना जा रहे भारत के आदिम वासी। पूँजीपतियों, व्यवसायियों, नेताओं और नामी पत्रिकाओं में छपने वाले धनाढ्य व्यक्तियों के आर्थिक व सामाजिक स्थिति के आधार पर देश के विकास को मापा जाना गलत बात है। क्योंकि आज भी बहुत बडी जनसंख्र्या झोंपडियों में बस रही है जो शिक्षित समाज द्वारा हाशिए पर है और जिन्हें देश के अधिक छला गया वर्ग के नाम से पुकारा जाता है।

आदिवासी साहित्य के केन्द्र में आदिवासियों के जल, जंगल, ज़मीन और जीवन की चिंताएँ हैं। उपनिवेशकाल के पहले तक आदिवासियों को जल, जंगल, ज़मीन पर अपना स्वामित्व रहा। लेकिन जब से औपनिवेशिक ताकतों का घुसपैठ शुरु हुआ तब से उन पर होनेवाले अत्याचार बढते गए। आज वैश्वीकरण, औद्योगिक सभ्यता एवं सूचना प्रौद्योगिकी के महाविस्फोट के कारण मनुष्य की बुनियादी ज़रूरतें और भावात्मक दृष्टिकोण बदल चुके हैं। इनसे आदिवासियों के रहन-सहन, संचार एवं विचार धारा में कहीं न कहीं आशातीत

उन्नति तो हुई है। लेकिन वे अपनी जडों से जुडे रहने के साथ आगे बढना चाहते हैं। मुक्त व्यापार व्यवस्था एवं उदारीकरण के फलस्वरूप सरकारी कर्मचारी, नेता और अधिकारी वर्ग सभी राष्ट्र के विकास के नाम पर आदिवासियों का शोषण कर रहे हैं। उनके जल-जंगल-ज़मीन को छीनकर प्राकृतिक संपदा का लूट-मार कर रहे हैं। विशाल एवं अत्यंत शक्तिशाली बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपनी स्वार्थ पूर्ति केलिए आदिवासियों से उनकी ज़मीनें छीन रही हैं। इस प्रकार वे विस्थापन का दर्द झेलते महानगरों में आने को विवश हुए हैं। लेकिन महानगरीय सभ्यता आदिवासी संस्कृति, लोक परम्परा एवं साहित्य को निगल रहा है। आत्मरक्षा हेतु जब ज़ुबान खोले तो उन्हें माओवादी या नक्सलवादी की गलतफहमी भी हो जाती है। पहाडों और ज़मीनों के भीतर छुपे धातुओं को निकालकर आदिवासी इलाकों में विकिरण का जाला फैला दिया है। उनका जीवन दिन-ब-दिन नरक तुल्य बनता जा रहा है। भूखमरी, गरीबी, अशिक्षा आदि जनजातियों की मूलभूत समस्याएँ रही हैं। लेकिन वर्तमान में उनकी समस्याएँ अनगिनत हो चुकी हैं। ऐसे में उनमें जागृति लाना अवश्य की बात है।

सच्चे लोकतांत्रिक देश में गैरबराबरी केलिए जगह नहीं हो सकती। लेकिन आदिवासी समाज के प्रति गैर-आदिवासियों का आम नज़रिया ही सबसे बडी समस्या है। जीवन की विभिन्न विपरीत स्थितियों को झेलते आदिवासियों में थकावट की ज़रा सी भी आहट सुनाई नहीं देती। इस बात से यह स्पष्ट है कि

अपने को ज़िन्दा रखने का उनका ठोस संघर्ष ही आदिवासी साहित्य के भविष्य को उज्ज्वल बना रहा है।

1.13 निष्कर्ष

भारतीय समाज में सहस्रों वर्ष का इतिहास जुडा हुआ है। जिसमें विभिन्न परिस्थितियाँ एवं घटनाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। किसी भी समाज की पहचान मात्र उसकी आर्थिक हैसियत से नहीं होती बल्कि उसमें निहित संस्कृति, जीवन शैली आदि अनेक बातें होती हैं। आदिवासी समाज का अपना अलग इतिहास, परिवेश एवं अपनी विशिष्ट संस्कृति है। जिसकी हिफाज़त वे सदियों से करते आ रहे हैं। आज की वैश्वीकृत दुनिया तो जंगली मनुष्य को अपनी परम्परा, संस्कृति तथा सारे रिश्ते नातों से दूर कर रही है। लेकिन प्रगति के तमाम सोपानों के बावजूद भी आदिवासी अपनी सांस्कृतिक विरासत को काफी हद तक बचाए हुए हैं। साहित्यकार आदिवासी समाज का समाजशास्त्रीय अध्ययन कर समाज को आदिवासी जीवन की समस्याएँ और पिछडापन से अवगत करा रहे हैं और आदिवासी समाज की कडवी सच्चाइयों से साक्षात्कार करा रहे हैं। जंगलों में विचरण करनेवाले आदिवासी स्वार्थ रहित हैं। वे लालची नहीं हैं। लेकिन सभ्य समाज की लालची प्रवृत्तियों ने भोले-भाले आदिवासियों को हमेशा हाशिए में डाला है। अतः आदिवासी विमर्श हाशिए पर जीनेवाले उत्पीडित, शोषित आदिवासियों के प्रति सदियों से चले आ रहे दमन के विरुद्ध प्रतिरोध की आवाज़ है।

संदर्भ-सूची

1. डॉ. जालिंदर इंगले- आदिवासी दमन शोषण और यथार्थ, पृ.सं.98
2. वही, पृ.सं.98
3. वही, पृ.सं.98
4. वही, पृ.सं.98
5. डॉ. शिवाजी देवरे, डॉ. मधु खराटे- समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श, पृ.सं.34
6. वही, पृ.सं.34
7. नदीम हसनैन- ट्रय्बल इण्डिया, पृ.सं.32
8. वही, पृ.सं.32
9. डॉ. शिवाजी देवरे, डॉ. मधु खराटे- समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श, पृ.सं.35
10. वही, पृ.सं.35
11. डॉ. अर्जुन चव्हाण- विमर्श के विविध आयाम, पृ.सं.18
12. वही, पृ.सं.18
13. https://www.scotbuzz.org.com
14. वही
15. https://www.yourdictionary.com

16. https://www.yourdictionary.com

17. सं. हरिनारायण दत्त- आदिवासी स्वर (३) संस्कार व प्रथाएँ, पृ.सं.9

18. डॉ. जालिंदर इंगले- आदिवासी दमन शोषण और यथार्थ, पृ.सं.46

19. सं. डॉ. उषा कीर्ति राणावत, डॉ. सतीश दूबे, डॉ. शीतला प्रसाद दूबे- आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य, पृ.सं.30

दूसरा अध्याय

हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श - एक सर्वेक्षण

2.1 विषय प्रवेश

इक्कीसवीं सदी ज्ञान विज्ञान एवं टेक्नोलजी का युग है। इस विकासशील युग में हिन्दी साहित्य जगत में काफी अभिवृद्धि हुई है। आज साहित्य की लगभग सभी विधाओं में मानव जीवन की वास्तविकता की चर्चा हो रही है। अतः साहित्य उपेक्षित समाज के प्रति प्रतिबद्ध है और उनमें हाशिएकृत लोग केन्द्र पात्र बन गए हैं। समाज में उपेक्षित आदिवासियों को न्याय दिलाने हेतु अनेक आदिवासी और गैर-आदिवासी साहित्यकार अपनी लेखनी चला रहे हैं और साहित्य की लगभग सभी विधाओं में उनकी बहस चल रही है। इसी ओर विस्तार से दृष्टि डालना समय की माँग है।

2.2 उपन्यास

उपन्यास साहित्य की महत्वपूर्ण विधाओं में से एक है। इस विधा ने अपने प्रारम्भिक युग से लेकर इक्कीसवीं सदी तक एक लम्बी और संघर्षपूर्ण यात्रा की है। अतः उपन्यास विधा युगानुरुप से परिवर्तित होते हुए दृष्टिगत होती है। हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासकार आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यास लिखना शुरू किया था। इसके लिए घने जंगल और पहाडों में बसनेवाले आदिवासी जीवन को खोज निकाला और अछूते अंचलों की ओर दृष्टि डाली।

आज साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा उपन्यासों में आदिवासी की चर्चा हो रही है। इसलिए आदिवासी उपन्यासों की ओर दृष्टि डालना अनिवार्य है। आदिवासी उपन्यास की विकास यात्रा रचनाकाल के अनुसार निम्नांकित है :-

2.2.1 बसंत मालती

आदिवासी जीवन सम्बन्धी उपन्यास लिखनेवालों में सबसे पहले जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का नाम आता है। जिन्होंने सन् 1899 में 'बसंत मालती' उपन्यास लिखा। प्रस्तुत उपन्यास में मुंगेर जिले के मलयपुर अंचल में बसने वाले मल्लाह आदिवासी जीवन को केन्द्र बनाया है।

2.2.2 अरण्यबाला

हिन्दी के प्रारम्भिक आदिवासी उपन्यासकार उपन्यास साहित्य केलिए घने जंगल और पहाडों में बसनेवाले आदिवासी जीवन को खोज निकाला है। ब्रजनंदन सहाय कृत 'अरण्यबाला' (1904) उपन्यास विध्यांचल के पहाडी जीवन बितानेवाले आदिवासियों की कहानी है।

2.2.3 रामलाल

मन्नन द्विवेदी द्वारा कृत 'रामलाल' (1904) उपन्यास में गोरखपुर जिले में बसनेवाले आदिवासियों की कहानी है।

2.2.4 अध खिला फूल

अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध की कृति 'अध खिला फूल' (1907) में कहीं-न-कहीं आदिवासी जीवन के कुछ अंश मिलते हैं।

2.2.5 बन विहंगिनी

रामचीज सिंह कृत 'बन विहंगिनी' उपन्यास में आदिवासी जीवन की सही तस्वीर खींची है। प्रस्तुत उपन्यास में संथाल परगना के आदिवासी क्षेत्र में बसनेवाले कोस कुमारियों का जीवन संघर्ष है। साथ ही उनकी वेश-भूषा, भाषा, रहन-सहन, देवी-देवता और पर्व-त्योहार से उत्पन्न मानसिकता के वातावरण को अंकित किया गया है।

2.2.6 कचनार

वृन्दावनलाल वर्मा का 'कचनार' (1947) उपन्यास गोंड जनजातियों के जीवन से सम्बन्धित हैं। कचनार गोंड आदिवासी स्त्री का नाम है। कचनार के माध्यम से लेखक आदिवासी महिला जीवन की समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है।

2.2.7 रथ के पहिये

'रथ के पहिये' (1952) देवेन्द्र सत्यार्थी का पहला उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस उपन्यास का वातावरण करंजिया गाँव के आदिवासियों के इर्द-गिर्द से होकर गुज़रता है। आनंद इस उपन्यास का मुख्य पात्र है। आनंद के पिता डॉ. जय आदर्श मोहनजोदाडो में क्युरेटर हैं। लेकिन आनंद को इस विषय पर रुचि नहीं थी। एक दिन आनंद आदिवासियों का गाँव करंजिया जा पहुँचता हैं। आनंद का मानना है कि- ''ज़िन्दगी भर मुर्दों के टीले की खुदाई करते रहने की बजाय उन ज़िन्दा लोगों के बीच रहना कहीं

ज़्यादा दिलचस्प है जो आज हमारे बीच मौजूद हैं, लेकिन हज़ारों साल पहले की सभ्यता में रह रहे हैं।''[1]

2.2.8 मैला आँचल

अंग्रेज़ी शासन काल में आदिवासियों को हक और नवीनता मिली तो दूसरी तरफ शोषण का शिकार भी होना पड़ा। सबसे ज़्यादा शोषण धर्म के नाम पर हुआ था। ऐसे उपन्यासों में फणीश्वर नाथ रेणु का 'मैला आँचल' (1954) आता है। प्रस्तुत उपन्यास में पूर्णिया जिले के मेरीगंज नामक पिछडे गाँव का अंकन है।

2.2.9 वनलक्ष्मी

योगेन्द्र सिन्हा द्वारा रचित उपन्यास 'वनलक्ष्मी' का प्रकाशन सन् 1956 में हुआ था। प्रस्तुत उपन्यास 'हो' आदिवासी जातियों के जीवन पर आधारित है। धर्मान्तरण की प्रवृत्ति को केन्द्र में रखा है।

2.2.10 ब्रह्मपुत्र

देवेन्द्र सत्यार्थी का दूसरा उपन्यास है 'ब्रह्मपुत्र'। प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन सन् 1956 में हुआ था। यह उपन्यास असम के लोक जीवन पर आधारित है। लेखक पिसांगमुख के निवासियों की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सभी स्थितियों और संबन्धों का जीवंत चित्रण प्रस्तुत करते हैं।

2.2.11 सूरज किरण की छाँव

'सूरज किरण की छाँव' (1958) राजेन्द्र अवस्थी जी का पहला आँचलिक उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास जंगली आदिवासी युवती बंजारी की कहानी है। बंजारी स्त्री पहले प्यार में धोखा पाती है उसके बाद उसके जीवन में अनेक समस्याएँ उभर आती हैं। उसे अपनी मर्ज़ी के खिलाफ वेश्या व्यवसाय तक करना पड़ता है। बाद में गाँववालों की सेवा करके अन्य आदिवासी स्त्रियों को नरकीय जीवन से बचाना चाहती है। एक तरफ शहरीय जीवन की विरूपता है तो दूसरी तरफ आँचलिक जीवन के पुराने मूल्यों का उद्घाटन है। अतः प्रस्तुत उपन्यास के दौरान लेखक ने ईसाई मिशनरियों के प्रभाव से उत्पन्न आदिवासियों पर हो रहे अन्याय एवं अत्याचार को व्यक्त करने का प्रयास किया है।

2.2.12 जंगल के फूल

राजेन्द्र अवस्थी का 'जंगल के फूल' (1960) उपन्यास बस्तर के मुडिया गोंड आदिवासियों के जीवन पर आधारित है। स्वयं लेखक ने लिखा है- "उपन्यास की पूरी कहानी प्रायः काल्पनिक है। इसके द्वारा मेरा मूल उद्देश्य बस्तर के घोटूल जीवन, वहाँ की संस्कृति, वहाँ के निवासियों के रीतिरिवाज़ और उनके जीवन के समग्र चित्र को सामने रखना है।"[2] प्रस्तुत उपन्यास से ही- "मैं घोटूल के सारे सदस्यों से कहूँगी कि वे जाकर काम तलाशें। सुना है नारायनपुर में एक स्कूल बनने वाला है। मैं कहूँगी सब वहाँ जाएँ, मैं भी वहाँ जाऊँगी और जो कुछ मजूरी मिलेगी, सब हम तुझे लाकर देंगे।"[3] मूलतः जंगल के फूल

उपन्यास बस्तर अंचल के आदिवासियों की आत्मा को बारीकी से पड़ताल करने का प्रयास है।

2.2.13 साँप और सीढी

'साँप और सीढी' (1960) शानी का लघु उपन्यास कस्तूरी का विस्तृत रुप है। प्रस्तुत उपन्यास की कथाभूमि बस्तर अँचल एवं वहाँ के ग्रामीणों का संघर्षमय जीवन है। पूरी कहानी धान-माँ नामक आदिवासी बाल-विधवा के इर्द-गिर्द से होकर गुज़रती है। एक चाय का होटल से उसका गुज़ारा चलता है। इस होटल में हर तरह के लोग आते है- मास्टर, मास्टरनियाँ, पटवारी, सरकारी मुलाजिम, कंडक्टर, बसों और ट्रकों के ड्राइवर आदि सभी का वहाँ आना जाना है। शानी जी आम-आदमी के रचनाकार है।

2.2.14 हवलदार

'हवलदार' उपन्यास के लेखक शैलेश मटियानी चरित्र प्रधान उपन्यास लिखने में सिद्धहस्त है। प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन सन् 1960 में हुआ था। उपन्यास की कथाभूमि डुंगरसिंह की जीवन कथा के माध्यम से कुमायूँ पर्वतीय अँचल में बसने वाले आदिवासियों की कहानी है। हवलदार बनने की इच्छा से डुंगरसिंह फौज में जाता है। लेकिन ट्रेनिंग के समय अपने ही गोली से लंगड़ा बन जाता है। इस प्रकार उसकी इच्छा निराशा में बदल लेती है। 'हवलदार' उपन्यास टूटे हुए और हारे हुए आदमी की व्यथा कथा का दस्तावेज है।

2.2.15 वन में मन में

योगेन्द्रनाथ सिन्हा का 'वन में मन में' (1962) उपन्यास बिहार के सिंहभूमि अंचल में बसनेवाले 'हो' आदिवासी जीवन पर आधारित है। 'हो' आदिवासियों में नारी एवं पुरुष को समान अधिकार है। इसलिए नारी पुरुष पर आश्रित नहीं है। 'हो' आदिवासी जीवन की रीति-रिवाज़ों को लेकर लिखा गया यह उपन्यास भारत वर्ष की संपूर्ण आदिवासी संस्कृति को प्रदर्शित करता है।

2.2.16 कुर्राटी

'कुर्राटी' सतीश दूबे का आदिवासी जीवन पर आधारित उपन्यास है। भील जनजाति की सांस्कृतिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक विकास की समस्याओं को लेखक नज़दीक से जानने पहचानने की कोशिश की है। प्रस्तुत उपन्यास का मुख्य पात्र नागराज शर्मा है। उपन्यास का आरम्भ नागराज शर्मा का आदिवासी इलाके में नौकरी के बहाने प्रवेश होने से होता है। जनजातियों की शिक्षा को केन्द्र में रखकर उपन्यास की कथाभूमि आगे बढती है। सरकार की ओर से आदिवासी छात्रों को छात्र वृत्ति दी जाती है। एक वक्त की रोटी केलिए तरस खाते जनजाति बच्चों को स्कूल भेजना पसंद करते हैं। लेखक लिखते हैं- ''जिस दिन छात्र वृत्ति मिलती है, उस दिन पिताजी छक्कर पीते हैं, घर में दिवाली-होली का जश्न मनाया जाता है।''[4] उपन्यास में लेखक ने भीलों की विभिन्न समस्याओं को प्रस्तुत करने के साथ छात्रावास और उससे सम्बन्धित कार्यालयों में हो रहे भ्रष्टाचार को पाठकों के सामने लाने का प्रयास किया है।

भूमण्डलीकरण के इस युग में भी शहरी लोगों ने आदिवासियों को अपने समकक्ष नहीं माना है। उपन्यास में सभ्य जाति के लोग जनजातियों के साथ कई तरह के घृणित कार्य करते हैं। इसके खिलाफ आवाज़ उठाने की कोशिश नागराज करता है तो स्कूल का ही एक अधिकारी का बयान इस प्रकार था- "नागराज एक बात बताऊँ, सच तो यही है कि कोई भी इन हरिजन आदिवासियों से अपने को जोडने में हिकारत महसूस करता है। क्या करें अपनी तो रोज़ी रोटी है... एक बात बताऊँ मैं तो किसी आउटसाइडर को हवा ही नहीं लगने देता कि मैं इस डिपार्टमेण्ड में हूँ... अरे भैय्या लोगों की निगाह में एक दम नीच आ जाते हैं, भील भंगियों के नाम की खाने वाले।"[5] उपन्यास के सारे प्रसंग तथा घटनाएँ आदिवासियों के निजी जीवन से सम्बन्धित हैं। इसके साथ उनका रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज़ों का भी परिचय हो जाता है।

'कुर्राटी' उपन्यास के दौरान लेखक का मूल उद्देश्य आदिवासियों पर हो रहे शासन तथा सभ्य समाज और शिक्षित युवा वर्ग द्वारा होनेवाला अन्याय एवं अत्याचार को सामने लाना है।

2.2.17 जाने कितनी आँखें

'जाने कितनी आँखें' (1969) राजेन्द्र अवस्थी जी का चौथा उपन्यास है। सुवेगा और कमलापति के प्रेम कहानी के दौरान बुन्देलखण्ड के जन जीवन को व्यक्त किया है। लेखक प्राचीन जडमूल्यों, जातिवाद, नैतिकता और सामाजिक नियंत्रण आदि को सुवेगा के पीडा के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं।

2.2.18 धर्म पुत्री सोमा

राजीव सक्सेना कृत 'धर्म पुत्री सोमा' (1972) उपन्यास ऋग्वैदिक पृष्ठभूमि पर आधारित एक काल्पनिक कहानी है। यायावर आर्यों के जीवन एवं उनके जीवन के रीति-रिवाज़ों, परम्पराओं, रूढियों, तीज त्योहारों को पाठक के सामने प्रस्तुत करते हैं। लेखक ने तत्कालीन रंग देने केलिए उस समय के शब्दों का भी रचनात्मक प्रयोग किया है।

2.2.19 महासागर

हिमांशु जोशी के द्वारा लिखित उपन्यास 'महासागर' में निकोबार द्वीप की आदिवासी जाति को पेश किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास का रचनाकाल सन् 1973 है। महासागर उपन्यास का हर एक पात्र अपनी ज़िन्दगी स्वयं चुनता। पर उसे जीने का ढंग उनमें नहीं था। इसलिए वे नियति के हाथों की कठपुतली बन जाते हैं।

2.2.20 अरण्य

हिमांशु जोशी का एक ओर उपन्यास है 'अरण्य'। प्रस्तुत उपन्यास कुमाँचल में बसनेवाले आदिवासियों की व्यथा कथा सुनाती है। 'अरण्य' उपन्यास का कथासार इस प्रकार हैं- अनाथ कावेरी अपने मामा माधव प्रधान के यहाँ रहती हैं। वहाँ उसे ख़ामोशी भरी ज़िन्दगी जीना पड़ता है। मानिक इस उपन्यास का नायक है। जो कावेरी में अपनी सहानुभूति ढूँढ पाता है। बाद में अपने अपराध केलिए कावेरी से तिरस्कृत होकर भाग जाता। इसी बीच कावेरी

की शादी बूढे ठेकेदार से होती है। मानिक जब फौजी बन गाँव लौटता तो कावेरी की शादी हो चुकी थी। कावेरी के दिल में फिर से पीडा जगाकर वह वापस चला जाता है। लेकिन वह कावेरी का मदद करता रहता है। एक दिन मानिक युद्ध में शहीद हो जाता है। कावेरी का पति भी आत्महत्या कर लेता है। उपन्यास के अंत तक कावेरी मानिक की प्रतीक्षा करती रहती है।

2.2.21 काँछा

हिमांशु जोशी द्वारा लिखित 'काँछा' उपन्यास में भारत के सीमावर्ती क्षेत्र में बसनेवाले आदिवासियों का अंकन हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास का रचनाकाल सन् 1973 है।

2.2.22 अंधेरा और

हिमांशु जोशी का 'अंधेरा और' उपन्यास में तराई का आदिवासी जीवन अंकित किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास का रचनाकाल सन् 1973 है।

2.2.23 सु-राज

'सु-राज' उपन्यास हिमांशु जोशी की कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से नई उपलब्धि है। कुमाऊँ का पर्वतीय अंचल सु-राज उपन्यास का मुख्य क्षेत्र है। प्रस्तुत उपन्यास का रचनाकाल भी सन् 1973 है।

2.2.24 कगार की आग

'कगार की आग' (1978) हिमांशु जोशी का एक और उपन्यास है। यह रचना पर्वतीय आदिवासी जीवन पर आधारित है। कगार की आग उपन्यास गोमती नामक पहाडी स्त्री की व्यथा कथा सुनाती है।

2.2.25 पिंजरे में पन्ना

आदिवासी जीवन सम्बन्धी उपन्यास लिखनेवालों में मणि मधुकर का नाम उल्लेखनीय हैं। 'पिंजरे में पन्ना' (1981) राजस्थान के गाडिया लुहार आदिवासी जाति के जीवन को केन्द्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। आधुनिकता से गाडिया लुहार का जीवन पूर्णतया बेखबर है। प्रस्तुत उपन्यास में तीन कथाओं का समावेश हुआ है। गाडिया लुहार, ख्याल की नायिका पन्ना और नंदेरम्या की लोक कला की गवेषणा यह तीन कहानियाँ समान रुप से चलती है। लेखक ने तीन कथाओं के माध्यम से रेगिस्तान का संघर्षमय जीवन और यायावर समाज की समस्याओं के साथ उन लोगों के लोक जीवन एवं लोक संस्कृति को केन्द्र में रखा है। अतः पिंजरे में पन्ना उपन्यास यायावर गाडिया लुहार जाति का जीवंत चित्रण है।

2.2.26 जंगल के आस-पास

आदिवासी जीवन सम्बन्धी उपन्यास लिखनेवालों में राकेश वत्स का नाम महत्वपूर्ण हैं। उनका 'जंगल के आस-पास' (1984) उपन्यास दमकडी के आदिवासियों को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। सोन नदी के किनारे फैले

जंगल और पहाडियों में बसनेवाले आदिवासियों पर हो रहे आतंक, अन्याय, पूँजीपतियों द्वारा किया जानेवाला अमानुषीय शोषण, जंगली जानवरों की समस्या, अभाव आदि इस उपन्यास के महत्वपूर्ण बिंदु है।

2.2.27 महर ठाकुरों का गाँव

हिन्दी आदिवासी साहित्य में बटरोही का नाम भी उल्लेखनीय हैं। उनका 'महर ठाकुरों का गाँव' (1984) उपन्यास अल्मोडा जिले की गहरी घाटियों में बसे आदिवासी महर ठाकुरों के जीवन पर आधारित है। प्रस्तुत उपन्यास धर्म के जाल में फँसे आदिवासी समुदाय की करुण कहानी का दस्तावेज है। उपन्यास का कथासार इस प्रकार हैं- हरदा नामक चौदह साल का युवक बनारस जाकर धर्म ग्रंथ और विधि का अध्ययन कर शास्त्री बनता है। वापस गाँव आकर गाँव में व्याप्त अज्ञान, अंधविश्वास, धार्मिक आडम्बर, भूत-प्रेत की मान्यताएँ आदि का जमकर विरोध करता है। गाँव के प्रधान हरदा के विरुद्ध होकर पूरे गाँव वालों को उसके खिलाफ खड़ा करता है। पर हरदा हार नहीं मानता और पूरे समाज को, शिक्षा, अधिकार, वैज्ञानिकता आदि को नए सिरे से अध्ययन कराके आदिवासियों में नई मानसिकता तैयार करता है। अतः हरदा के प्रयत्न से संपूर्ण गाँव समस्याओं से मुक्त होता है।

2.2.28 वनतरी

'वनतरी' (1986) सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव का आदिवासी जीवन केन्द्रित प्रख्यात उपन्यास है। उपन्यास की कथाभूमि बिहार राज्य के होयहात प्रखंड की

डुमरी अंचल है। बिहार में भुइयाँ तुरी, महरा, महतो आदि आदिवासियाँ पायी जाती हैं। किन्तु प्रस्तुत उपन्यास परहिया जनजाति को केन्द्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। परहिया जनजाति स्त्री वनतरी के माध्यम से पूरे परहिया के बिरादरी की कहानी सुनाती है।

2.2.29 शालवनों का द्वीप

'शालवनों का द्वीप' (1986) उपन्यासकार शानी की एक और सशक्त रचना है। मध्यप्रदेश के माडिया-गोंडो की जीवन पद्धति, रीति-रिवाज़ों, रूढियों, धार्मिक मान्यताओं के साथ-साथ उनकी सभी पीडाओं को हमारे सम्मुख रखा गया है।

2.2.30 शैलूष

'शैलूष' शिवप्रसाद सिंह का उपन्यास है। उपन्यास का रचना काल सन् 1986 है। इसमें आदिवासी नट जीवन का समग्र एवं जीवंत तस्वीर प्राप्त होता है। आदिवासी नटों का अभावग्रस्त जीवन एवं लोक संस्कृति का अंकन के साथ विभिन्न कथाओं का संयोजन किया है। रजिया, गोपू, रूपचंद, सोनिया, सुधाकर, रेवती, जुडावन, सावित्री, ननकू, मयनवा सूरज, सलमा, ताहिरा आदि इस उपन्यास के प्रमुख पात्र है।

2.2.31 धार

संजीव द्वारा लिखित 'धार' (1990) उपन्यास आँचलिक उपन्यास केलिए एक नवीन देन है। नवम दशक के अंतिम वर्ष में धार उपन्यास का प्रकाशन

हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास बिहार संथाल परगना में कोयला अंचल की खदानों में काम करनेवाले श्रमजीवि आदिवासियों की कथा सुनाता है। " 'धार' आत्यन्तिक रुप से आदिवासी समाज का चित्र न होकर कोयलारी क्षेत्र में गंधक के तेजाब के कारखाने के विरुद्ध संघर्ष पर केंद्रित उपन्यास है। कारखाने से निकला भूरा-भूरा धुँआ पूरे गाँव पर उड़कर वातावरण को विषाक्त करता है। बस्ती में जहाँ-तहाँ से लोगों के खाँसने और उबकाइयों की आवाज़ें आती रहती हैं। बस्ती में नया आया भंगर खाँसते-खाँसते पूछता है-यह काहे का कारखाना है? उत्तेजित होकर हैदर मामा जवाब देता है-जहर का। यह बोलते-बोलते वह खुद खाँसने लगता है।"[6]

प्रस्तुत उपन्यास के केन्द्र में आदिवासी स्त्री 'मैना' है। जो अशिक्षित होने पर भी सजग और विद्रोही नज़र आती है। लेखक उसी के परिप्रेक्ष्य में आदिवासी जीवन और संघर्ष का विस्तार से वर्णन करते हैं। जनजातियाँ खदानों में कडी मेहनत कर कोयला उत्पादन करते हैं। लेकिन उन्हें पूँजीपतियों, माफिया, पुलिस एवं अधिकारियों का शिकार बनकर अभावग्रस्त और असुरक्षित जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

2.2.32 डूब

'डूब' (1991) वीरेन्द्र जैन का महत्वपूर्ण उपन्यास है। नाम के अनुरुप इस उपन्यास के पात्र डूब की समस्या से जूझते रहते हैं। प्रस्तुत उपन्यास के केन्द्र में बेतवा नदी के किनारे वाला लडैई गाँव है। 'माते' इस उपन्यास का मुख्य पात्र है और वह हमेशा लडैई गाँव को सुधारने की कोशिश करता रहता

है। क्योंकि सरकार की झूठी आर्थिक नीति के कारण गाँववालों को विस्थापन तय हो जाता है। साथ में प्रकृति का नुक्सान भी होता है। सरकार का कहना है- ''तुम अपने खेत-खलिहान हमें बेच दे, बदले में याहो तो नगद फलदार ले लो।''[7] विकास नामी षड्यंत्र से उत्पन्न समस्याओं से गाँव वाले बेखबर है। इसलिए माते गाँव में सुधार लाने का प्रयत्न करता रहता है। वह मनुष्य के अस्तित्व केलिए मिट्टि के अस्तित्व को ज़रूरी मानता है। वह कहता है- ''विकास के नाम पर मनुष्य की जगह धीरे-धीरे धरती को दी जाने लगी। धरती बचेगी तो हम भी बचेंगे, बाँध बनेगा। जल प्लावन होगा। .... हमें नहीं चाहिए बाँध और न ऐसा विकास।''[8] विकास के नाम पर हो रहे छल-छद्म का ज़्यादा असर आदिवासी ग्रामीण जन-जातियों पर होता है। विस्थापन के कारण अनेक गाँव आज जड से उजड गए हैं। डूब उपन्यास एक संघर्षशील मानवीय जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति है।

2.2.33 गगन घटा घहरानी

मनमोहन पाठक का 'गगन घटा घहरानी' (1991) उपन्यास बिहार-झारखंड के पलामू क्षेत्र के उराँव आदिवासियों के जीवन पर केन्द्रित है। ''मनमोहन पाठक ने 'गगन घटा घहरानी' उपन्यास में जंगल में शोषित और संघर्षशील जीवन जीनेवाली ओराँव जाति का अंकन किया है चो भारत की आजादी के साठ साल बाद भी दासता में जीवन जी रही है। शोषण, अभावग्रस्तता, पिछड़ापन, भूख जैसी कई समस्याओं से ओराँव जाति घिरी हुई है। रायबहादुर जैसे सामंती लोग उन्हें केवल सपने दिखाते हैं। सोनाराम ऐसे

उनकी ही बिरादरी के लोग उन्हें आजाद करने का प्रयास भी करते हैं। सामन्त रायबहादुर के द्वारा जबरन कब्जा किये गये उनके खेत दिन दहाड़े काटते हैं। जो सामन्त खड़े होने से डरते थे वही पढ़ाई-लिखाई के कारण जागृति आने से अपने हक छीनना चाहते हैं।''[9] और तथी तो पैरु गुनी विचार करता है- ''जंगल छोटा होता जा रहा है और इतिहास बड़ा से बड़ा। पर रोज इतिहास में नए-नए अध्याय जोड़ती यह दुनिया पठार पर उसे इस जंगल को, जंगल में बसे गाँवों को क्या दे रही है।''[10]

2.2.34 पार

'पार' (1994) वीरेन्द्र जैन का बहुचर्चित उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से लेखक मध्यप्रदेश की बुन्देलखण्ड सीमा पर स्थित बेतवा नदी के तट पर बाँध बाँधने के कारण डूब में आनेवाली लडैई-चंदेरी गाँव की ज़मीन और उसमें जुडी पहाडी जीरोन-खेरा की राऊत आदिवासियों का जीवन्त चित्रण बाहर लाया है। उपन्यास के दौरान बेतवा के विशाल बाँध परियोजना के विरुद्ध विस्थापितों की लडाई में लेखक का ज़ोरदार प्रवेश हुआ है। आधुनिक विकास केलिए बिजली अनिवार्य है। लेकिन इस विकास में कुछ जंगलों, गाँवों और समाजों की बलि हो जाती है।

नदी पर बना बाँध एक ऐसा बाँध है जहाँ पानी रुक गया है और बाँध की दीवारों में दरारें पड गई हैं। इसके फलस्वरुप राऊत जनजाति को अपना गाँव छोड जाने में मजबूर बना देता है। सरकार का कहना है- ''हमारा आग्रह है कि बाँध बनते ही आप अपने घरों से निकल जाएँ। घरों से निकल जाना ही

आपके लिए बेहतर होगा। नहीं तो हम पानी छोड देंगे और आपको डुबो देंगे।''[11] अपनी ज़मीन से विस्थापित होती राउत जनजाति की औरत उनके बदनसीब हालात को बेबस भरी आवाज़ में बताती है- ''सिरकार ज़हर दे देता सबको तो अच्छा रहता। अपना मकान को रहनवाल इंहा का अच्छे लगे टट्टी खाने मा। वोही वो रहे आतो अकेले ओके बाँध के साथ।''[12] उपन्यास में चित्रित समस्या सम्पूर्ण मनुष्य जाति की समस्या है।

2.2.35 जहाँ बाँस फूलते हैं

'जहाँ बाँस फूलते हैं' (1997) श्रीप्रकाश मिश्र का यथार्थवादी उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास मिजो आदिवासियों के जीवन पर केन्द्रित है। उपन्यास की विषयवस्तु पर लेखक इस प्रकार टिप्पणी देते हैं कि- ''यह उपन्यास ऐतिहासिक नहीं है। कहीं इक्का-दुक्का वास्तविक व्यक्तियों के नाम आए भी हैं तो कथा को विश्वसनीय बनाने केलिए। अगर किसी के जीवन के टुकडे से कोई अंश इत्तेफाक करता मिलेगा तो सिर्फ इसलिए कि कल्पना की दीवार कहीं-न-कहीं यथार्थ की बुनियाद पर ही बनती है।''[13] उपन्यास के दौरान लेखक मिजो विद्रोह के कारणों को गहराई से छानबीन करने का प्रयास किया है।

2.2.36 काला पहाड

'काला पहाड' (1991) भगवानदास मोरवाल का महत्वपूर्ण उपन्यास है। देश की बढती सांप्रदायिकता के साथ आदिवासी जीवन भी इसमें केन्द्रित है। इसमें हरियाणा, उत्तरप्रदेश और राजस्थान की सीमा पर स्थित मेवात प्रदेश

बसनेवाले आदिवासी मेवों की ज़िन्दगी है। सांप्रदायिकता के ज़हर से शोषित आदिवासी समाज के यथार्थ जीवन को सामने लाना ही लेखक का मूल उद्देश्य है।

2.2.37 गमना

हबीब कैफी द्वारा लिखित 'गमना' (1999) उपन्यास राजस्थान के गरासिया आदिवासी समाज पर आधारित है। इस समाज पर लिखा गया यह अकेला उपन्यास है। लेखक के अनुसार-"गमना वास्तव में अरावली पर्वत श्रृंखलाओं से मेवाड़, गोड़वाड और मारवाड के मैदानी इलाकों में उतर आएँ आदिवासियों की जीवन गाथा है।"[14] 'गमना' इस उपन्यास का मुख्य पात्र है। गमना के माध्यम से लेखक पूरा 'गरासिया' समाज का आइना पेश करने का प्रयास किया है। विकास के नाम पर सरकार, पुलिस एवं शासक वर्गों द्वारा होनेवाले शोषण एवं अत्याचारों का शिकार अक्सर आदिवासी होते हैं। गमना के अनुसार-"कैसा कानून बाबू जी? पुलिस, पंचायत और कलक्टरी सब इनकी जेब में हैं। यही शक की सुई घुमाते हैं। यही हमारी सेवा पूजा करते हैं और फिर जुर्माना भी यही तय करते हैं और कुछ भी हाथ न लगने पर छोड देने का उपकार भी कर देते हैं।"[15] लेखक प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से यह बताना चाहते हैं कि विकास के आँकडे सिर्फ कागज़ों तक सीमित है।

2.2.38 सहराना

'सहराना' (1999) पुन्नी सिंह की महत्वपूर्ण रचना है। सहराना उपन्यास राजस्थान की एक मात्र आदिम जनजाति सहरिया के जीवन और समस्याओं पर केन्द्रित है। 'सोमा' उपन्यास का मुख्य पात्र है। उपन्यास की सारी गतिविधियाँ सोमा के इर्द-गिर्द से होकर गुज़रती है। सोमा शादीशुदा होने पर भी अन्य स्त्रियों के साथ सम्बन्ध रखनेवाला व्यक्ति है। साथ ही स्त्रियों को वेश्यावृत्ति कराने में भी दिलचस्प रखता है। लेखिका बताती है- "चंपा के अलावा किसी और लड़की को एस.डी.ओ को परोसे जाने से उसे कोई आपत्ति नहीं है।"[16] लेखिका सहरिया जनजाति के माध्यम से आदिवासियों के बीच होनेवाला पारिवारिक विघटन, यौन शुचिता, धर्मान्तरण आदि समस्याओं को केन्द्र में रखा है। लेखिका आदिवासियों में इन सभी समस्याओं का मुख्य कारण शिक्षा का अभाव माना है।

2.2.39 जंगल जहाँ शुरू होता है

'जंगल जहाँ शुरु होता है' थारु जनजातियों पर लिखा गया संजीव की सशक्त रचना है। इसका प्रकाशन काल सन् 2000 है। प्रस्तुत उपन्यास का मुख्य क्षेत्र पश्चिमी चंपारन जिले का 'मिनी चंबल' है। जो भौगोलिक और सामाजिक स्थिति के अनुसार डाकुओं केलिए अनुकूल पडती है। अतः इस उपन्यास के मुख्य विषयों में डाकू समस्या, प्राकृतिक संघर्ष, ज़मीन्दारों द्वारा किया जा रहा शोषण, औरतों का शारीरिक शोषण आदि आते हैं।

काली इस उपन्यास का मुख्य पात्र है। ज़िन्दगी की हालात उसे एक डाकू बना देती है। वह सोचता है-"हक की कमाई माँगने पर ठेकेदार के पास पैसे नहीं हैं और हराम की कमाई डकारने वाले दुराचारी लुटेरे परशुराम केलिए पन्द्रह हज़ार। क्या वह इन हराम खोरों की बेगार करने और उनकी गाँड धोने केलिए ही पैदा हुआ है?"[17]

कानून तथा प्रशासन व्यवस्था में नये-नये विधान आये लेकिन थारु जनजाति इन सारी सुविधाओं से वंचित रही। सुविधाओं का असर पूँजीपति, ज़मीन्दार, ठेकेदार आदि तक ही सीमित रहा। समाज के रक्षक पुलिस दोषियों को सज़ा दे तो शोषित आदिवासियों को कभी डाकू नहीं बनना पड़ता। प्रस्तुत उपन्यास का पात्र 'काली' को सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आन्तरिक स्तर पर भी संघर्ष करना पड़ता है।

2.2.40 अल्मा कबूतरी

'अल्मा कबूतरी' यायावर कबूतरा आदिवासी जीवन पर आधारित मैत्रेयी पुष्पा का सशक्त उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन सन् 2000 में हुआ था। कबूतरा बुन्देलखण्ड की आदिवासी जाति है। अल्मा कबूतरी में मुख्यतः दो समाजों का विस्तार से वर्णन हुआ है। पहला आदिवासी कबूतरा समाज और दूसरा सभ्य समाज जिसे कबूतरा जाति के लोग उनकी भाषा में कज्जा कहते हैं। कबूतरा जाति के पात्रों में- कदमबाई, भूरी, अल्मा, राणा, रामसिंह, सरमन, दूलन आदि मुख्य हैं। सभ्य समाज के अन्तर्गत मंसाराम, जोधा, केहरसिंह, धीरज, सूरजभान आदि हैं।

उपन्यास का आरम्भ मंसाराम और कदमबाई के जीवन से शुरु होता है। वहीं से दोनों समाज का आपसी टकराव दृष्टिगत होता है। कदमबाई के पति जंगलिया को कज्जा लोग मरवा देते हैं। और कदमबाई के शरीर को धोखे से मंशाराम प्राप्त करता है। इसका परिणाम कदमबाई राणा को जन्म देती है। राणा को जन्म देने का मूल उद्देश्य सभ्य समाज से टकराना और प्रतिरोध करना था। लेकिन उसकी हार हो जाती है।

इस उपन्यास का एक ओर पात्र है रामसिंह। रामसिंह अपनी पुत्री अल्मा के साथ शहर में रहता है। और कदमबाई अपने बेटे को पढाई हेतु रामसिंह के पास शहर भेजती है। फलस्वरुप अल्मा और राणा में दोस्ती होती है। पुलिस और डाकुओं के चक्कर में आकर रामसिंह की हत्या होती है। लेकिन अनाथ अल्मा को राणा स्वीकार नहीं करता।

'अल्मा कबूतरी' में मैत्रेयी पुष्पा ने तमाम नारी पात्रों को बलपूर्ण दिखाने का प्रयास किया है। उनमें से एक है अल्मा। भारतीय धार्मिक संस्कारों के अनुसार किसी की मृत्यु हो जाती है तो उसका अंतिम संस्कार का अधिकार केवल पुत्र को है। लेकिन अल्मा इस संस्कार को तोड देती है- ''जनसमूह सतब्ध रह गया। लोगों की आँखें अंधी या नज़र झूठी? अल्मा ने आहिस्ता-आहिस्ता अग्निमुख उठा लिया और अनवरत गूँजती मंत्रध्वनि के बीच श्रीराम शास्त्री की 'चंदन चिता' को अग्नि समर्पित कर दी।''[18] पीडा सहने की अद्भुत क्षमता अल्मा में संघर्ष करने की शक्ति जगा देती है।

पढे-लिखे होने पर भी समाज में कबूतरा जनजाति को सभ्य समाज स्थान नहीं देता। उनके नज़र में ''कबूतरा पुरुष या तो जंगल में रहता है या जेल में स्त्रियाँ शराब की भट्टियों पर या हमारे बिस्तरों पर।''[19] पुलिस द्वारा जनजातियों पर हो रहे अत्याचार, प्रशासन का शोषण, सभ्य समाज का धिक्कार और घृणा की भावना को लेखिका बहुत ही मार्मिक ढंग से हमारे सम्मुख रखा है। अतः 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास आदिवासी स्त्री-पुरुषों के साथ हो रहे शारीरिक, मानसिक, आर्थिक शोषण का सीधा खुलासा है।

2.2.41 सावधान नीचे आग है

संजीव के उपन्यासों में शोषित आदिवासियों की आहट सुनाई देती है। 'सावधान नीचे आग है' संजीव का एक ओर आदिवासी केन्द्रित उपन्यास है। उपन्यास की पृष्ठभूमि चन्दनपुर गाँव पर आधारित है। कोयला खदानों में काम करनेवाले आदिवासी समूहों का जीवन्त चित्रण प्रस्तुत करना लेखक का मूल उद्देश्य है। ''सच तो यह है कि जिनके हाथ में कानून और पावर है सब चोर है। मेहनत, ईमान्दारी की कोई कदर नहीं। जो लूट रहा है लूट रहा है, जो बिला रहा है, बिला रहा है...।''[20]

2.2.42 काला पादरी

तेजिन्दर कृत 'काला पादरी' (2002) उपन्यास सरगुजा अंचल में बसनेवाले आदिवासियों की अतीत और वर्तमान का आख्यान है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक आदिवासियों की धर्मान्तरण की समस्या को केन्द्र में रखा है।

दरअसल इसमें आदिवासियों पर हुई स्वार्थी सामंती और मिशनरी कोशिशों का ऐतिहासिक अध्ययन है। अंग्रेज़ों को आदिवासियों का धर्म परिवर्तन करने में अधिक समय नहीं लगा। मिशनरी फादर मैथ्यून बताते हैं कि-"इनके (आदिवासियों) पास ईश्वर का कोई इमेज नहीं ता डियर जिसकी ओर से आस भरी निगाह के साथ देख्र सकें, जब हम यहाँ आया तो राजा भी अपना देवी को प्लांट कर रहा था। यू नो हाउ टू प्लांट ए थाट, इट इज इम्पार्टेंट, हमने भी प्रभु यीशु की इमेज प्लांट कर दी, इट वाज ए फार ऑफ इमेजेज, जिसमें जीत हमारी हुई।"[21] यहाँ पर लेख्रक आदिवासियों को ईसाई धर्म में परिवर्तन करने की अग्रेज़ों की चालाकी को रेख्रांकित किया है।

2.2.43 पठार पर कोहरा

राकेश कुमार सिंह का 'पठार पर कोहरा' (2003) झारख्रण्ड के मुंडा आदिवासियों के वर्तमान जीवन पर आधारित है। उपन्यास की कथाभूमि पलामू का गजलीठोरी है। उपन्यास का नायक संजीव सान्याल है। संजीव के माध्यम से लेख्रक मुंडा जनजातियों का रहन-सहन, आदान-प्रदान, लोककथाएँ तथा लोकगीतों आदि का गहन वर्णन किया है। साथ ही मुंडा समाज पर होनेवाला उच्च वर्ग का अन्याय, राजनीतिक तंत्र, भ्रष्टाचार, प्राकृतिक संपदा का ख्रुली लूट आदि का भी विस्तार से वर्णन हुआ है। अंग्रेज़ों का भारत छोडने के बाद भारत में साहू, बाबू तथा बंदूक की संस्कृति उपजी। इनके बीच पडकर आदिवासी समाज शोषण का शिकार बनते रहे। जनजातियों को अपने और बच्चों के पेट भरने केलिए स्त्रियाँ देह व्यवसाय करती हैं। लेख्रक उपन्यास में इसकी ओर

संकेत करते हैं- ''अपनी मर्जी से तो किसी के साथ सो लेती हैं आदिवासिनें। कोई खराब नहीं मानता इसे। बेचूतिवारी या साहू के साथ कहीं खेत-खलिहान में सो लेना तो बहादुरी मानी जाती है, पर कोई-जोर-जबर से किसी को पटककर चढ बैठे तो?... किसी आदिवासिन के मन के खिलाफ कोई उसकी जाँघ उधार दे?''[22]

उपन्यासकार के शब्दों में ''भारतीय बुद्धिजीवी समाज के जिन लेखकों ने आदिवासी जनजीवन पर लिखा है उनमें से अधिकांश ने हर एक गैर आदिवासी को खलनायक के रूप में ही चित्रित करने की रुढि का अनुगमन किया है। इस रुढिवादी लेखन ने आदिवासी क्षेत्रों के बाहर हर गैर-आदिवासी को 'दीकू' (डाकू/दिक्कत करनेवाला बाहरी घुसपैठिया) के रूप में स्थापित कर एकरस, एकतरफा और एकांगी सोच को विकसित किया है। जबकि नये परिप्रेक्ष्य में इस सम्बन्ध को पुनः परिभाषित करने तथा आदिवासी, गैर-आदिवासी के बीच की आदिम खाई को पाटने की फौरी आवश्यकता है। प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से मैंने एक प्रयास किया है।''[23] इस प्रकार लेखक ने आदिवासी जीवन पर औपन्यासिक लेखन का सार्थक प्रयास किया है।

2.2.44 हस्तक्षेप

'हस्तक्षेप' (2003) श्रवणकुमार गोस्वामी का आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यास है। इसमें सतपुडा, बुन्देलखंड, बघेलखंड और महादेव की पहाडियों में बसनेवाले आदिवासी जीवन का प्राकृतिक परिवेश मिलता है। ''स्वतंत्रता, प्राप्ति के बाद आदिवासियों की समस्याओं को लेकर लिखे जानेवाले उपन्यासों की

श्रृंखला में यह महत्वपूर्ण उपन्यास है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में विकास केलिए जो योजनाएँ बनीं, उनमें वनवासी क्षेत्र पर विशेष ध्यान दिया गया, पर विडंबना यह हुई कि विकास के नाम पर केवल आर्थिक लूट मची। श्रवण कुमार गोस्वामी ने वनवासी परिवेश का गहराई से अध्ययन किया है, झारखण्ड का परिवेश गोस्वामी जी की आत्मा में रचा बसा है। इसलिए उस परिवेश के सच को वे पूरी प्रखरता के साथ व्यक्त करने में सफल रहे हैं। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में एक धारा ऐसे उपन्यासों की रही है, जिनमें अँचल विशेष की संस्कृति, रीति-रिवाज़, जीवन-पद्धति को उसकी समग्रता में मूर्त करने का प्रयास किया गया है।''[24]

2.2.45 जहाँ खिले हैं रक्तपलाश

'जहाँ खिले हैं रक्तपलाश' (2003) उपन्यासकार राकेश कुमार सिंह का महत्वपूर्ण उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास झारखण्ड का उपेक्षित अंचल पलामू पर आधारित है। सूरज पालीवाल के शब्दों में- ''रक्तपलाश जहाँ खिलते हैं वहाँ मानव जीवन नहीं खिलता बल्कि खिलने के विरुद्ध षडयंत्र किए जा रहे हैं, जिसमें पूरा प्रशासन और पुलिस शामिल है।''[25] आज़ादी के इतने साल बाद भी पलामू में न बिजली है और न सड़क। विकास की धारा से कोसों दूर है।

2.2.46 उत्तर बाँया है

'उत्तर बाँया है' (2003) विद्यासागर नौटियाल का आदिवासी केन्द्रित उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में दो चार पात्रों के अतिरिक्त पूरा का पूरा

आदिवासी समाज अपनी तमाम समस्याओं और कमज़ोरियों को उपस्थित किया है। उपन्यास की खासियत पूरे एक समाज को चरित्र के रूप में बदल देने में है।

2.2.47 छैला सन्दु

मंगल सिंह मुण्डा का 'छैला सन्दु' (2004) उपन्यास आदिवासी मिथक को केन्द्र में रखकर लिखी गयी रचना है। 'सन्दु' इस उपन्यास का मुख्य पात्र है। लेखक सन्दु के माध्यम से वर्तमान आदिवासी समाज की प्रासंगिकता को उकेरने का प्रयास किया है। उपन्यास की कथा पौराणिक है। इसलिए कृष्ण की बाल लीलाओं जैसा वर्णन ही छैला सन्दु का किया है। लेखक प्रस्तुत उपन्यास को तीन भागों में विभाजित किया है- बाल लीला, प्रेम लीला तथा मृत्यु लीला।

सन्दु और बुन्दी की अमर प्रेम कहानी के ज़रिए कथाभूमि आगे बढती है। सन्दु मुण्डा जनजाति का एक लड़का है और बुन्दी उच्चवर्ग की लडकी। इसके फलस्वरुप दोनों समाजों में आपसी टकराव पैदा होती है। एक दिन ऐसी खबर फैलती है कि बुन्दी सन्दु के साथ भाग गयी है। इसका परिणाम उच्चवर्ग के लोग जनजातियों के बस्तियों को उजाड दिया गया। आगे की ज़िन्दगी और पूरे आदिवासी समाज केलिए सन्दु अपना प्यार कुरबान करता है। वह कहता है- ''प्रिये! हम एक दूसरे को चिरकाल तक पाने केलिए एक दूसरे को चिरकाल तक खोना ही उत्तम मार्ग है।''[26] मुण्डा आदिवासी समाज की आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करने के साथ मानवता का संदेश भी देना चाहते हैं।

2.2.48 जो इतिहास में नहीं है

'जो इतिहास में नहीं है' (2005) सुप्रसिद्ध लेखक राकेशकुमार सिंह की रचना है। इसमें झारखण्ड के संथाल-उराँव आदिवासियों के जीवन को लिया गया है। विषय वस्तु को लेकर स्वयं लेखक लिखते हैं- "ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शोषण और दमन से त्रस्त झारखण्ड के आदिवासी सन्ताल बहादुरों के मुक्ति-संग्राम की सशक्त महागाथा है।"[27]

2.2.49 पाँव तले की दूब

'पाँव तले की दूब' (2005) संजीव का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास झारखण्ड के आदिवासी जनजीवन पर आधारित है। केन्द्र में पंचपहाड क्षेत्र है, जहाँ झारखण्ड आन्दोलन हुआ था। उपन्यास का नायक सुदीप्त या सुदामा प्रसाद है। जिसके दौरान कहानी आगे बढती है। सुदीप्त आदर्शवादी व्यक्ति है। इसलिए ताप विद्युत संस्थान में अधिकारी होते हुए भी उसका ध्यान आदिवासी मुक्ति आन्दोलन में रहा।

सुदीप्त का हर कार्य अधूरा रह जाता है। पहले वह राजनीति में भाग लेता, बाद में साहित्यकार बनना चाहता। उसका उपन्यास, नाटक, कहानी सब अधूरा रह जाता है। बालविवाहिता पत्नी को मुक्त कर देता है। नर्स शिला केरकेट्टा के प्रति उसके मन में आकर्षण पैदा होता है। लेकिन मन की बात नहीं कहता।

झारखण्ड के आदिवासियों का यथार्थ चित्र को प्रकाश में डालते हुए सुदीप्त बताता है- “उन्हें ज़मीन से बेदखल किया जा रहा है, मुआवज़ा भी अफसरों के पेट में।”[28] औद्योगीकरण के फलस्वरूप आदिवासियों का विकास तो दूर बल्कि उनका शोषण बढता गया है। अतः औद्योगीकरण के कारण किस प्रकार झारखण्ड के आदिवासी शोषण एवं विस्थापन का शिकार बनते गए इसका यथार्थ चित्र लेखक ने प्रस्तुत किया है।

2.2.50 रूपतिल्ली की कथा

‘रूपतिल्ली की कथा’ (2006) श्रीप्रकाश मिश्र का उपन्यास है। यह मेघालय में बसनेवाली खासी जनजाति के सांस्कृतिक जीवन पर आधारित है। लेखक ने गारो-खासी जनजातियों में फैले अंधविश्वास, जडता और उनके पिछडे रहने के कारणों को बारीक से समझाने का प्रयास किया है। साथ ही ईसाई मिशनरियों के आगमन से आदिवासी समाज में छायी धर्मान्तरण की समस्या को भी प्रस्तुत किया है।

2.2.51 रेत

भगवानदास मोरवाल का ‘रेत’ उपन्यास में आदिवासी जनजीवन को प्रकाश में लाने का महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। इस उपन्यास का प्रकाशन काल सन् 2008 है। प्रस्तुत उपन्यास बंजारा जनजाति के कंजर समाज पर केन्द्रित है। उपन्यास की सम्पूर्ण कथा ‘गाजुकी’ नामक गाँव में स्थित कमल सदन के आस-पास से होकर गुज़रती है। कमला बुआ इस उपन्यास की केन्द्रीय पात्र है। उसके

इर्द-गिर्द में सुशीला, माया, रुक्मिणी, पिंकी, वंदना और पूनम आदि पात्र आते हैं। उपन्यास का आरम्भ धूल भरे रास्ते की रेत से गुज़रकर गाजुकी नामक गाँव जा पहुँचने से होता है। 'रेत' को एक प्रतीकात्मक उपन्यास की नज़र से देख सकते हैं। नायिका रुक्मिणी की बातें इसके लिए उदाहरण है-''वैद्यजी यह रुक्मिणी तो ऐसी रेत है जिसे जैसी चाहे हवा अपना साथ उड़ा ले जाए, जैसा चाहे पानी बहा ले जाए और तो और जिसके जी में आए अपनी मुट्ठी में कैद कर ले जाए क्या है इसका अपना, कुछ भी तो नहीं भला रेत का भी अपना कोई वजूद होता है। परन्तु सच्चाई यह भी है कि मरजी से तो वैद्यजी इसी रुक्मिणी को मर्द तो क्या जिनावर भी रौंद जाय पर बिना मरजी के आँख उठा जाए कोई माना गुरु की सौ वैद्य जी खले से आँख निकाल के हाथ पर रख दूँगी। अखिर इस कंजरी की बी अपनी कोई आबरु है।''[29] उपन्यासकार कंजर नामक उपेक्षित जनजाति के बहाने आदिवासी समाज में व्याप्त विषमता तथा राजनीतिक अनीतियों एवं अत्याचारों का पर्दाफाश किया है।

2.2.52 धूणी तपे तीर

आदिवासी साहित्यकारों में हरिराम मीणा का नाम उल्लेखनीय है। उनकी रचना 'धूणी तपे तीर' (2008) उपन्यास साहित्य केलिए महत्वपूर्ण देन है। प्रस्तुत उपन्यास ब्रिटिश कालीन आदिवासी विद्रोह एवं बलिदान पर आधारित है। इसमें लेखक ने आदिवासी जलियाँवाला बाग काण्ड मानगढ हत्यकांड के नरसंहार को प्रस्तुत किया है। साथ ही राजस्थान तथा गुजरात में बसनेवाले भील व मीणा आदिवासियों की सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता को परखा है।

गुलामी आदिवासियों की सबसे बडी समस्या है। इसी सन्दर्भ को लेकर लेखक लिखते हैं-“इक-दूजे के काम में हाथ बँटने केलिए मेहनत करने में कोई हर्ज नहीं है। मेहनताना के बदले काम करना बुरा नहीं। यह तो हमें करना ही होता है। बिना कुछ लिये-दिये बेगार करना तो एक तरह से गुलामी है।”[30] आदिवासी कर्ज में जन्म लेता है और उसी के साथ उसका जीना, मरना होता है। लेखक ने यूं व्यक्त किया है कि-“साहूकारी से हमें अनेक कारज के लिये करजा लेना पड़ जाता है। कौन-सा-हिसाब-किताब है कि कई बार चुकाने के बाद भी करजा माथे पर चढ़ा रहता है। बनिये की बेईमानी हमारी समझ में नहीं आती।”[31] यहाँ पर लेखक एक अछूते क्षेत्र को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं।

2.2.53 ग्लोबल गाँव के देवता

रणेन्द्र द्वारा रचित ‘ग्लोबल गाँव के देवता’ (2009) हिन्दी आदिवासी साहित्य जगत केलिए एक महत्वपूर्ण देन है। अतीत की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर वर्तमान में आदिवासियों को जिन-जिन समस्याओं को झेलना पडता है इसका मार्मिक अंकन ग्लोबल गाँव के देवता में रेखांकित किया गया है। उपन्यास का पात्र रुमझुम कहता है-“हम वैदिक काल के सप्तसिंधु के इलाके से लगातार पीछे हटते हुए आजमगढ, शाहाबाद, आरा, गया, राजगीर से होते इस वन-प्रांतर कीकट, पौंड्रिक, कोकराह या चुटिया नागपुर पहुँचे। हज़ार सालों में कितने इन्द्रों, कितने पाण्डवों, कितने सिंगबोंगा ने कितनी-कितनी बार हमारा विनाश किया, कितने गढ़ ध्वस्त किए, उसकी कोई गणना किसी इतिहास में दर्ज

नहीं है। केवल लोककथाओं और मिथकों में हम ज़िन्दा है।''[32] भारतीय संस्कृति ने असुर जनजाति को मिथ बनाकर रख दिया है। अतः 'ग्लोबल गाँव के देवता' हाशिए पर धकेल दिए जानेवाली जनजातियों की ऐतिहासिक परिदृश्य को सामने लाता है।

2.2.54 पिछले पन्ने की औरतें

'पिछले पन्ने की औरतें' (2009) युवा लेखिका डॉ. शरद सिंह की महत्वपूर्ण रचना है। उपन्यास के केन्द्र में मध्यप्रदेश के सागर जिले में बसे पथरिया गाँव का बेडिया आदिवासी समाज है। प्रस्तुत उपन्यास नायिका विहीन है। लेखिका श्यामा, फुलवा, रसुबाई, चंदा, नचनारी, बालाबाई आदि स्त्री पात्रों के ज़रिए विवश बेडनियों की कथा बताती हैं।

स्त्री का महत्व बेडिया समाज में परिवार पालक के रूप में है। पुरुष वर्ग प्रायः चोर, निकम्मे और आलसी होते हैं। औरतें नाच-गाकर और सामान बेचकर तथा चोरी करके अपनी आर्थिक समस्या दूर करती हैं। दरअसल वेश्यावृत्ति इनकी विवशता है। ''किंवदन्तियों के अनुसार ये लोग स्वयं को पृथ्वीराज चौहान और मोहम्मद गौरी के बीच युद्ध के दौरान मारे गए सैनिकों की विधवाओं ने अपनी व अपने बच्चों की आर्थिक सुरक्षा केलिए विभिन्न धनिकों का सहारा लिया। ये औरतें उनकी जाति में तो शामिल न हो सकीं लेकिन व उनकी दैहिक तुष्टि का साधन अवश्य बन गईं।''[33]

विवश बेडनियों के माध्यम से लेखिका ने आदिवासी समाज में व्याप्त स्त्री शोषण को हमारे सम्मुख रखने का प्रयास किया है। लेखिका उम्मीद करती है कि आनेवाले समय में उनकी स्थिति में परिवर्तन आएगा।

2.2.55 लौटते हुए

'लौटते हुए' आदिवासी साहित्यकार वाल्टर भेंगरा तरुण की सशक्त रचना है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने झारखण्ड अंचल में बसनेवाले आदिवासी महिलाओं के दुःख-दर्द को अभिव्यक्त किया है। रोज़गार की तलाश में आदिवासियों को महानगरों एवं अन्य स्थानों में पलायन करना पडता है। पुरुष वर्ग भी पलायन करते हैं लेकिन स्त्रियों पर होनेवाला शोषण उपन्यास का केन्द्र विषय है। खासकर आदिवासी स्त्रियों पर होनेवाला दैहिक शोषण के सम्बन्ध में विचार विमर्श हुआ है।

2.2.56 पलाश के फूल

झारखण्ड के आदिवासियों को केन्द्र में रखकर लिखा गया 'पलाश के फूल' पीटर पाल एक्का की सशक्त रचना है। इसमें जल, जंगल, जमीन से विस्थापित झारखण्ड के आदिवासियों के जीवन का बयान है। लेखक लिखते हैं-"शहरी परिवेश का निर्मोही माहौल बदसूरती का आलम लिये मनोरम घाटियों में हर कहीं बिखर जायेगा। यह सब क्या उन भोले-भाले आदिवासियों के भले केलिए हो रहा है या एक अंतहीन भटकाव की शुरुआत है।"[34] उपन्यास का आरम्भ ही श्रम के संगीत के स्वरों से होता है। इस सन्दर्भ में अनुज लुगुन

का कहना है-“यह श्रम की लय है, आदिवासियों के जीवन की लय है, इसे वही व्यक्त कर सकता है जिसने इस जीवन को जिया है और यह लेखक के पास है। कहते हैं कि आदिवासियों का सम्पूर्ण जीवन ही एक लय है और चलना ही नृत्य। उन्होंने ऋतुओं के समान जीवन जिया है कभी शरद, कभी ग्रीष्म, कभी बसंत इन ऋतुओं के समान गद्यात्मकता उनके जीवन में भी आती है। इस उपन्यास में जहाँ एक ओर आदिवासी जीवन की सादगी है तो वहीं दूसरी ओर बाहर के लोगों के आगमन से उनके विस्थापन की समस्या भी है। इस विस्थापन ने उनके जीवनचर्या को ही बदल दिया है। अपनी धरती से चिपके रहनेवाले लोग बड़ी आसानी से अपनी धरती से विस्थापित हो अच्छी जीविका की तलाश में जल, जंगल, ज़मीन से दूर गुमनामी का जीव जीने केलिए बाध्य हैं।”[35] विकास योजनाओं के कारण आदिवासी लोग अपने ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विरासत को खो रहे हैं।

2.2.57 जंगल के गीत

पीटर पॉल एक्का का एक ओर महत्वपूर्ण उपन्यास है ‘जंगल के गीत’ उपन्यास की कथा युगल नामक आदिवासी प्रेमी के इर्द-गिर्द से होकर गुज़रती है।

2.2.58 डंक

‘डंक’ (2011) रुप नारायण सोनकर का महत्वपूर्ण उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास मध्यप्रदेश के आदिवासी जीवन पर केन्दित है। टिनहरिया गाँव इसका

आधार है। इस उपन्यास क ज़रिए लेखक ने आदिवासी जीवन के अभाव को व्यक्त किया है-"मध्यप्रदेश में एक आदिवासी दलित गाँव है, जहाँ दो औरतों के बीच मात्र एक साडी है, जब बहु घर से बाहर जाती है, तब सास घर में नंगी रहती है, ऐ! मेरे देश के महान कर्णधारो, इन अभागी माताओं- बहिनों पर तरस खाओ..."[36] गरीबी एवं अभाव में जीते आदिवासियों की समस्याएँ अनगिनत हैं।

2.2.59 मरंगगोडा नीलकंठ हुआ

'मरंगगोडा नीलकंठ हुआ' आधुनिक समस्याओं के साथ उजागर करनेवाला महुआ मांजी की सशक्त रचना है। प्रस्तुत रचना का प्रकाशन काल सन् 2012 है। उपन्यास के केन्द्र में झारखण्ड का मरंगगोडा इलाका है। वहाँ के संथाल तथा हो जनजातियों के परस्पर तालमेल, भाषा, संस्कार तथा जीवनयापन करने की आवश्यक ज़रूरतों से उपन्यास की शुरुआत होती है। उपन्यासकार ने सगेन और उसके दादाजी के जीवन-यात्रा के माध्यम से विकिरण की समस्या से जूझनेवाले आदिवासियों की दारुण स्थिति को हमारे सम्मुख रखा है। विनय मोहन सिंह के अनुसार- "प्रकृति से अभिन्न जंगल जीवन जीनेवाले आदिवासियों की इतनी अंतरंग तथा प्रामाणिक कथा अत्यन्त सूक्ष्म तथा विविधवर्णी ब्योरों के साथ इसमें वर्णित की गई है कि लेखिका की इस जीवन पर पकड तथा पैठ पर विस्मित होना पड़ता है। यह उपन्यास भारत के सिंहभूम के आदिवासियों तक सीमित नहीं है बल्कि इसकी व्याप्ति जापान, अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा विभिन्न द्वीपों पर रहनेवाले आदिवासियों के जीवन तक है।"[37]

विकास से उत्पन्न विस्थापन, प्रदूषण जैसी अनेक समस्याओं को वैश्विक परिदृश्य में लाना लेखिका का मूल उद्देश्य है। विकिरण की समस्या से जूझनेवाले मरंगगोड़ा के आदिवासी कहते हैं-‘‘जंगल के बिना हम जिएंगे कैसे? हमारी झोंपडी, खटिया बनाने की लकडी और रस्सी जंगल से आती है साल पते में हम और हमारे बोंगा, हमारे देसाउलि डियंग पीते हैं, खाना खाते हैं जब अनाज नहीं होता तब जंगली फल, मूल, कंद आदि खाकर ही तो हम पेट भरते हैं। उनके साथ-साथ लाह, तसर, गुटि, करंज के बीज, दोना पत्तल आदि बेचकर चावल, नमक आदि खरीद लाते हैं? साल की लकडी और पत्तों के बिना शादी विवाह से लेकर जन्म-मृत्यु तक का कोई भी संस्कार संभव है क्या?’’[38] विकास के नाम पर अपनी जगह से विस्थापित आदिवासी अपने जीवन को लेकर चिंतित है।

2.2.60 मौसी

रमणिका गुप्ता द्वारा लिखित ‘मौसी’ (2012) उपन्यास हिन्दी आदिवासी साहित्य केलिए एक महत्वपूर्ण देन है। प्रस्तुत उपन्यास का केन्द्र पात्र बिंदु है। बिन्दु नाम का उल्लेख मात्र हुआ है- पूरे उपन्यास में वे मौसी नाम से जानी जाती है। इस उपन्यास में लेखिका आदिवासी स्त्रियों की अनेक समस्याओं पर विचार किया है। आधुनिक सन्दर्भ में आदिवासियों की समस्या आर्थिक स्तर पर है। दिन भर दमतोड काम करने के बावजूद भी वे कल केलिए कुछ भी इकट्ठा नहीं कर पाते।

उपन्यास की पूरी-कथा मौसी के जीवन पर आधारित है। मौसी पहले-पहल जंगल से लकडी तोडकर और उसे बेचकर अपना जीवनयापन करती है। हर लडकी की तरह मौसी भी दुल्हन बनना और माँ बनने का सपना देखती है। लेकिन आर्थिक समस्या और सामाजिक प्रतिबन्धों ने उसके सारे सपनों को तोड देता है। मौसी सलीम से प्यार करती है लेकिन मौसी की शादी सलीम के बूढे बाप से हो जाती है। और सलीम के छोटे भाई को पालना पडता है। मौसी वृद्ध पति की कामपूर्ती का उपकरण बन जाती है। सलीम के साथ भी उसका शारीरिक सम्बन्ध होता है। वृद्ध पति के मौत के बाद सलीम दूसरी शादी करता है तथा मौसी फिर से अनाथ हो जाती है। इसके बाद मौसी के जीवन में अनेक पुरुष आते हैं। लेकिन मुश्किल मोड पर कोई उसका साथ नहीं दिया।

मौसी के माध्यम से लेखिका आदिवासी स्त्रियों की विभिन्न हालातों के साथ उनकी विशेषताओं को भी व्यक्त करना चाहती हैं। आदिवासी स्त्रियाँ कभी घर बैठकर समय नष्ट करना नहीं चाहतीं। उसी प्रकार किसी के गुलाम बनकर और बोझ बनकर ज़िन्दगी जीना नहीं चाहतीं।

2.2.61 डांग

'डांग' (2019) हिन्दी के आदिवासी लेखक हरिराम मीणा का दूसरा उपन्यास है। राजस्थान, मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश की सीमा पर एक बीहड क्षेत्र है जो 'डांग' नाम से जाना जाता है। इस डांग क्षेत्र में बसनेवाले डाकू आदिवासियों को केन्द्र विषय बनाकर रचनाकार ने प्रस्तुत उपन्यास रचा है।

आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यासों का प्रवाह अधिक समृद्ध होता जा रहा है। प्रस्तुत उपन्यासों के अलावा श्रवणकुमार का 'चक्रव्यूह', चंद्रमोहन प्रधान कृत 'एकलव्य', रामदीन पाण्डेय का 'इसी तरह चलता पिटारा', भालचंद्र ओझा कृत 'साँवला पानी', किशोर कुमार सिन्हा कृत 'गाथा भोगनपुरी', जयप्रकाश भारती कृत 'कोहरे में खोये चाँदी के पहाड', कृष्णचंद्र शर्मा भिक्खु कृत 'रक्तयात्रा' आदि का नाम उल्लेखनीय हैं। अनेक नए पुराने हस्ताक्षर आदिवासी जीवन संबन्धी उपन्यास सृजन करने में क्रियाशील रहे हैं।

2.3 कहानी

हिन्दी कहानी के आरंभिक समय में आदिवासी जीवन पर आधारित कहानियों का अभाव मिलता है। किन्तु सबसे पहले प्रेमचन्द की कहानियों में शोषित एवं उपेक्षित जन समाज का प्रामाणिक तस्वीर प्रस्तुत हुई है। बाद में कुछ छुट-पुट आदिवासी प्रधान कहानियाँ लिखी जाने लगीं।

हिन्दी में छठे दशक के साथ आंचलिक कथा साहित्य के आगमन और विकास के अंतराल में आदिवासी अंचल और उनकी संस्कृति दिखाई देने लगती है। हिन्दी की आदिवासी कहानी का देश तथा भूगोल ज़्यादातर मध्य भारत के आदिवासियों पर केन्द्रित रहा है। इसी क्षेत्र में सर्वाधिक आदिवासी कहानीकारों को पनपने दिया। हिन्दी आदिवासी कहानी के प्रारम्भिक हस्ताक्षरों में योगेन्द्रनाथ सिन्हा, राधा कृष्णा, केदार प्रसाद मीणा, संजीव आदि का नाम उल्लेखनीय हैं। और समकालीन समय में हरिराम मीणा, भगवान गव्हाडे, विनोद कुमार, राकेश कुमार सिंह आदि कईयों का नाम आता है। अतः

आदिवासी एवं गैर-आदिवासी साहित्यकार जमकर हिन्दी आदिवासी कहानी की विकास परंपरा को आगे बढाने का अपना-अपना योगदान दिखा रहे हैं। आगे हिन्दी आदिवासी कहानी संग्रहों का परिचय प्रस्तुत है।

2.3.1 जंगल की ललकार

'जंगल की ललकार' (1989) प्रमुख आदिवासी रचनाकार वाल्टर भेंगरा तरुण का कहानी संग्रह हैं। इसके पूर्व उनके दो कहानी संग्रह संकलित हो चुके हैं। 'लौटती रेखाएँ' (1980), 'और देने का सुख' (1983)। लेकिन इन दो कहानी संकलनों की कहानियों में आदिवासी समाज और संस्कृति का स्वर नहीं मिलता।

'जंगल की ललकार' आदिवासी समाज की चुनौतियों से साक्षात्कार करानेवाली कृति है। प्रस्तुत संग्रह की प्रस्तावना में लेखक का कथन है-''जंगल की ललकार और अन्य कहानियाँ छोटा नागपुर वनांचल में अत्यंत वन कुसुम है। यहाँ के भू पुत्र एवं पुत्रियों की जीवन गाथा को उजागर करने का यह महज एक संवेदनशील प्रयास है।''[39]

2.3.2 आखिर कब तक

'आखिर कब तक' (1992) शंकर लाल मीणा का कहानी संग्रह है। इसमें 'कुज्जीव' नाम से एक कहानी मिलती है। ''इस कहानी का प्रमुख पात्र एक ऐसा युवा है जो अनाथ है लेकिन अपने स्वभाव व व्यवहार से पूरी बस्ती के लोगों का चहेता बन जाता है। व जिस घर जाता है वहाँ उसे खाने को कुछ ना

कुछ दिया जाता है, लेकिन उसका अपना कहीं कुछ नहीं है। एक प्रसंग है जब वह हाथ में लेकर रोटी खा रहा होता है। उधर एक कौआ की कुदृष्टि उसकी रोटी पर है, यह बात युवक कुज्जीव भली भांति जान लेता है। वह अति का एक कदम उठाता है और लकडी काटने के औजार वसूला से अपनी छोटी अंगुली का हिस्सा काटकर कौवे की ओर फेंक देता है, यह कहते हुए कि 'अंगुली खा ले पर तुझे रोटी का टुकडा नहीं दूंगा।"[41]

शंकर लाल मीणा की एक अन्य कहानी है 'बूढी शाखों का वार्तालाप'। इसमें दो वृद्ध औरतों का वार्तालाप है। उनके बातचीत में पूरा का पूरा अतीत का कथानक मिल जाता है। उनकी एक और कहानी है 'कॉमरेड मीणा' इसमें एक युवक दूर-दराज इलाकों में जाकर अन्त में नक्सलवादी बन जाता है।

2.3.3 सम्बन्धों की एवज में

लक्ष्मी नारायण पयोधि का कहानी संग्रह 'सम्बन्धों की एवज में' सन् 1992 में प्रकाशित हुआ था। आदिवासी जीवन के विविध पक्षों को प्रस्तुत संकलन की कहानियों में देखा-परखा जा सकता है। 'साहूकार' इस संकलन की एक महत्वपूर्ण कहानी है। इस कहानी का मुख्य पात्र साहूकार से ऋण लेता है। ऋण न चुका पाया तो साहूकार ज़मीन बेचने की बात करता है। लेकिन ज़मीन की बजाय वह अपनी बेटी को साहूकार के पास गिरवी रखने को तैयार हो जाता है। अक्सर आदिवासी समाज में स्त्रियाँ धन सम्बन्धी समस्याएँ हल करने की वस्तु समझी जाती है।

2.3.4 मोहभंग

'मोहभंग' (1997) बस्तर के आदिवासी जीवन पर आधारित हरिहर वैष्णव का कहानी संग्रह हैं। प्रस्तुत संकलन की कहानियों में आदिवासियों के जीवन के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट किया है। हरिहर वैष्णव खुद बस्तर के निवासी होने के नाते उनकी कहानियों में आदिवासियों के जीवनानुभूतियों को नस-नस से उतारने का प्रयास किया है। 'सोनसाय का गुस्सा' इस संकलन की महत्वपूर्ण कहानी है। यह आदिवासियों के शोषण की कहानी है। अपने ज़मीन से बेदखल होने का दर्द बताया गया है। 'मोहभंग' कहानी में एक आदिवासी युवक की जीवन गाथा है। जो बडे संघर्षों से शिक्षा प्राप्त कर तहसीलदार तथा अनेक उच्च पदों को प्राप्त कर राजनेता बनता है। लेकिन आदिवासियों के अभावात्मक जीवन को देखकर राजनीति से भी उसे मोहभंग हो जाता है। 'तगादा' एक और कहानी है। आदिवासियों का शोषण इनकी कहानियों का मूल विषय रहा।

2.3.5 जोडा हारिल की रूप कथा

आदिवासी कहानिकारों में राकेश कुमार सिंह का नाम भी जोडा जाता है। उनका 'जोडा हारिल की रुप कथा' (2006) झारखण्ड के आदिवासी जीवन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं को समेटा है। उनका 'जोड़ा हारिल की रुप कथा' नामक कहानी प्रमुख रुप से विस्थापन की समस्या को लेकर रची गयी है। इस संकलन की एक और कहानी है 'जीवारम'। प्रस्तुत कहानी में एक ही झोंपडी में ज़िन्दगी बिताने की दास्तान को व्यक्त किया है। कहानी से- ''आदमी

की ज़िन्दगी भी एक दम धूप छांही चीज़ है। देखते-देखते कैसे बीत जाता है जीवन का फागुन। पलक झपकते ही लोप हो जाता है देहराग। कसक ही रह जाती है कि जी भर कर के स्वाद भी न ले सके जिनगानी का।''[42] इस संकलन की एक और कहानी है 'एक और मगदलेना'। प्रस्तुत कहानी में आदिवासी समाज का लैंगिक भेदभाव, यौन शुचिता आदि को केन्द्र में रखा है। 'सुसारी' इस कहानी की स्त्री पात्र है। सुसारी का मानना है- ''जीवन में अगर संगी-साथी न हो न, तो ये लंबी ज़िन्दगी कटेगी नहीं।''[43]

2.3.6 मेरी बस्तर की कहानियाँ

'मेरी बस्तर की कहानियाँ' (2006) हिन्दी की मशहूर लेखिका मेहरुन्निसा परवेज़ का कहानी संकलन हैं। मेहरुन्निसा परवेज़ आदिवासी बहुल क्षेत्र बस्तर में पली-पढी है। इसलिए उनकी कहानियों में जनजातियों का आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रियाकलापों का जीवंत चित्रण देखा जा सकता है। 'कानीबाट', 'टोना', 'ओढना', 'जंगली हिरणी' आदि इस संकलन में संकलित आदिवासी केन्द्रित प्रमुख कहानियाँ हैं।

जंगली हिरणी कहानी में एक शहरी युवक आदिवासियों के अनपढ बच्चों को शिक्षित करने का कार्य करता है। लेकिन आदिवासी समाज मास्टर को उनका धर्म बिगाडनेवाला समझ बैठते हैं-''यही तो स्कूल खोलने यहाँ आया है। न जाने कौन-सी भाषा सिखायेगा और धर्म बिगाडेगा।''[44] शिक्षा को लेकर आदिवासियों की बीच की गलतफहमी को हमारे सामने लाने का प्रयास हुआ है। आधुनिकता का अभाव के कारण आदिवासी समाज परंपरा और रुढियों में बंधे

हुए हैं। इसलिए उनमें पिछडापन अधिक दिखाई देता है। आदिवासी समाज का आधुनिकता की चकाचौंध से कोसों दूर होने का एहसास ‘जंगली हिरणी’, ‘नंगी आंखों वाला रेगिस्तान’ आदि कहानियों में पाया जाता है।

आदिवासियों में भूत-प्रेत, जादू-टोना आदि परंपराएँ प्रचलित हैं। ‘टोना’ कहानी में इसका यथार्थ चित्र मिलता है। कहानी का उद्धरण देखिए- ‘‘बडी के सिर में बाल नहीं है, उसका समाज राज जब खुला तो वह काँप सी गयी, बडी पंगनीन (टोन्ही) थी। वह रात को घर से चली जाती और पौं फटने के पहले आदमी का खून पीकर लौटती थी। काकी कहती थी, पंगनीन छत पर से डोरी डालकर सोए आदमी का खून नहीं मिलता तो जानवरों का खून पीती है। पटेल बता रहा था कि पूरे गाँव में तीन-चार पंगनीन है, यह लोग अपना काम निपटाकर खुले मैदान में मस्त होकर खेलती है। इनके मुँह से लार टपकती रहती है। सुनकर रोंगटे खडे हो गए।’’[45]

आदिवासियों में अनेक प्रकार के त्यौहार और पूजा-पाठ की परंपराएँ प्रचलित है। ‘तारा’, ‘दियारी’ जैसे उनके त्यौहार अत्यंत लोकप्रिय हैं। ‘मेहरुन्निसा परवेज़’ ने इन त्यौहारों का सूक्ष्म अध्ययन देहरी की ख़ातिर तथा जंगली हिरनी कहानियों में किया है।

आदिवासी सामाजिक जीवन में मनोरंजन का महत्वपूर्ण स्थान है। और उनका मनोरंजन का मुख्य साधन खेल है। ‘कानीबाट’ कहानी में मुँदरी खेल का वर्णन खूब मिलता है। लेखिका लिखती हैं- ‘‘ज्यों ज्यों रात में गाढापन आता गया त्यों-त्यों यौवन और रूप के रिश्ते और करीब हो गए रात भर नाच और

मुँदरी खेल चलता रहा। मुंदरी खेल जो अक्सर चाँदनी रातों में खेला जाता है। वह आज खेला गया। सब घुटनों पर हाथ रखकर बैठ जाते हैं। कोई एक अंगूठी छिपा लेता है और लडकी चोर बनी आँखों से टटोलकर ढूँढती है कि मुँदरी किसके पास है।''[46] उपर्युक्त कहानियों से स्पष्ट होता है कि मेहरुन्निसा परवेज़ ने अपनी कहानियों में बस्तर क्षेत्र में बसनेवाले आदिवासी जीवन को समग्र रूप से प्रस्तुत किया है।

2.3.7 महुआ मांदल और अंधेरा

'महुआ मांदल और अंधेरा' (2007) राकेश कुमार सिंह का एक और कहानी संग्रह है। प्रस्तुत संकलन की कहानियाँ झारखण्ड के पलामू क्षेत्र को केन्द्र में रखकर रची गयी हैं। बंधुआ मज़दूरी, शिक्षा में भ्रष्टाचार, वनसंपदा का दोहन आदि कहानियों का केन्द्र विषय है। राकेश कुमार सिंह लिखते हैं- ''रेल यहाँ आदमियों केलिए नहीं चलती। चलती हैं झारखण्ड को दुहने केलिए। सारा समय माल गाडियाँ धड़धडाती रहती है पटरियों पर।''[47]

2.3.8 पेनाल्टी कार्नर

'पेनाल्टी कार्नर' (2009) अश्विनी कुमार पंकज का कहानी संग्रह हैं। वे झारखण्ड के ज़मीन से जुडे, लेखक, साहित्यकार, एवं कहानीकार हैं। प्रस्तुत संकलन की कहानियाँ झारखण्ड के औपनिवेशिक दमन शोषण से उत्पन्न सामाजिक, सांस्कृतिक समस्याओं को बारीकी से देखा है। बिसेश्वर प्रसाद केसरी का मानना है कि-''पेनाल्टी कॉर्नर की कहानियों का फलक बहुत विस्तृत

है। इसमें एक ओर गिरिडीह-धनबाद की परित्यक्त कोयला खदान है तो दूसरी ओर जादू-गोडा का विकलांग-बाँझ कर देनेवाला प्रदूषित परिवेश। एक तरफ सिमडेगा, जलडेगा, बानो, मनोहरपुर के घाट-पहाड बाज़ार-हाट हैं तो दूसरी तरफ राँची टाटा के चमचमाते फाइव-स्टार होटल। गरीबी और अमीरी का असह्य कंट्रास्ट। भाषा का रेंज भी उतना ही विस्तृत है, जितना इसका फलक। ठेठ-गाँव घर की हिन्दी-नागपुरी से लेकर लेटेस्ट अंग्रेज़ी तक-चेंज योर माइंड इन राइट डायरेकशन। अतिरिक्त प्रयास के बिना कथ्य के साथ सादा-सा शिल्प सहज रूप से कहानियों में आया है। एक नैसर्गिक आदिवासी परिवेश का प्रस्तुतीकरण सादगी, मौलिकता, सहजता के साथ।''[48] 'इसी सदी के असुर', 'सालो' आदि अन्य कहानी संकलन हैं।

2.3.9 बहू-जुठाई

'बहू-जुठाई' (2010) मशहूर लेखिका एवं साहित्यकार रमणिका गुप्ता का कहानी संग्रह हैं। प्रस्तुत संग्रह की कहानियाँ झारखण्ड को केन्द्र में रखकर लिखी गयी हैं। इस संकलन में ग्यारह कहानियाँ संकलित हैं। 'बहु-जुठाई', 'चिडिया', 'चमेली', 'परबतिया', 'वह जिएगी अभी' आदि प्रमुख हैं। इन सब कहानियों के केन्द्र में नायिकाएँ हैं, जो जीवन की विपरीत स्थितियों और बर्बरताओं को झेलती हैं और जूझती भी हैं। पर कभी थकती नहीं। लेखिका का मानना है ऐसी कई जनजातियाँ भारत के हर कोने में बिखरे पडे हैं, जिन्हें शायद कोई देखता ही नहीं है या अनदेखा करता है।

2.3.10 रात बाकी एवं अन्य कहानियाँ

उपन्यासकार एवं कहानीकार रणेन्द्र का आदिवासी सम्बन्धित कई रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उनका कहानी संग्रह का नाम 'रात बाकी एवं अन्य कहानियाँ' (2010) हैं। प्रस्तुत संकलन में सात कहानियाँ संकलित हैं। 'रात बाकी', 'वह बस धूल थी', 'बारिश में भीगती गौरेया' आदि उनमें प्रमुख हैं। रणेन्द्र की कहानियाँ ऐसे इलाके से साक्षात्कार कराती हैं जहाँ, अशिक्षा, गरीबी और बदहाली के कारण व्यवस्था का शिकार बन बैठते हैं। वह है आदिवासी समाज।

'रात बाकी' कहानी में आदिवासियों की विस्थापन की समस्या को रेखांकित किया है। और 'चम्पा गाछ अजगर तालियाँ' नामक कहानी में पुलिस द्वारा आदिवासियों पर हो रहे शोषण पर विचार विमर्श हुआ है। पुलिस की उत्पीडन से भयभीत आदिवासी समाज अपनी ज़मीन छोडकर भाग जाते हैं। पुलिस बूढे तथा बच्चों पर नक्सलवाद का इल्ज़ाम लगा दिया जाता है। उसी प्रकार 'वह बस धूल थी' कहानी में उराँव जनजाति का संघर्ष हैं। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि रणेन्द्र की कहानियाँ आदिवासी जीवन की वास्तविकता का सही चित्रण है।

2.3.11 पगहा जोरी-जोरी रे घाटो

'पगहा जोरी-जोरी रे घाटो' (2011) हिन्दी की आदिवासी कथाकार रोज़ केरकेट्टा का कहानी संग्रह हैं। आदिवासियों के भाव संसार से बुना यह संकलन

2012 में अयोध्या प्रसाद खत्री स्मृति सम्मान से पुरस्कृत हुआ। इसमें सोलह कहानियाँ संकलित हैं। 'भंवर', 'मैना', 'कोंपलों को रहने दो', 'छोटी बहु', 'भाग्य', 'पगहा जोरी-जोरी रे घाटो' आदि उनमें प्रमुख हैं।

प्रस्तुत संकलन में संकलित कहानी 'पगहा जोरी-जोरी रे घाटो' में एकलव्य की मिथकीय गाथा को लेकर आदिवासी लडकी दया का शिक्षा प्राप्त करने हेतु, उसका संघर्ष और समर्पण की भावना को देखा गया है।

संपादक एवं समीक्षक किशन कालजयी के अनुसार-''रोज़ केरकेट्टा की कहानियाँ प्रतिरोध की कहानियाँ हैं और उनका यह कहानी संग्रह हिन्दी के एक नये इलाके का द्वार खोलता है।''[49] इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ आदिवासी महिलाओं पर आधारित है। अतः आदिवासी सामाज और उनका जीवन संघर्ष ही इसमें मुखरित होता है। आलोचक वीरेन नंदा के अनुसार ''पगहा जोरी-जोरी रे घाटो झारखण्डी जनमानस खासकर नारी संवेदना की अभिव्यक्ति का अनूठा दस्तवेज है और इसमें आदिवासी समाज का प्रामाणिक एवं मर्मस्पर्शी चित्रण है। वह आदिवासी इलाकों में जाकर लिखनेवालों में से नहीं हैं, बल्कि इसी समाज में पली बढी होने के कारण आदिवासी समाज की अंतरात्मा और भावना की समझ रखती है।''[49] निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि रोज़ केरकेट्टा का साहित्य नितांत भिन्न भाव भूमि और सौन्दर्यबोध वाला है।

2.3.12 साक्षी है पीपल

'साक्षी है पीपल' (2012) पूर्वोत्तर की हिन्दी लेखिका, कहानीकार प्रो. जोराम यालाम नाबाम का कहानी संग्रह हैं। प्रस्तुत संकलन की कहानियाँ अरुणाचल प्रदेश की न्यीशी जनजाति के विविध पक्षों को लेकर रची हैं। इसमें आठ कहानियाँ संकलित हैं। लेखिका का जन्म न्यीशी जनजाति में हुआ था। इसलिए वे अपने जनजातीय परिवेश को इन कहानियों के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से चित्रित करती हैं। यह आंचलिक परिवेश में जीवनयापन कर रहे अशिक्षित और अर्धशिक्षित लोगों की जीवन गाथा है। इसमें रुढ़ियों से ग्रस्त विसंगतियाँ, शोषण और संघर्ष का यथार्थ चित्र मिलता है। इस संकलन की कहानियाँ मूलतः स्त्री केन्द्रित हैं। इसलिए जनजाति स्त्री विमर्श को एक नया आयाम मिलता है।

'साक्षी है पीपल' इस संकलन की प्रतिनिधि कहानी है। उनकी कहानियाँ प्राकृतिक परिवेश की पृष्ठभूमि से विकसित होती है। 'साक्षी है पीपल' कहानी में प्राकृतिक परिवेश की पृष्ठभूमि इस प्रकार देखा जा सकता है- ''यहाँ की हवा में चुभन सी क्यों है? क्यों पेडों की छायाएँ विचित्र तरीके से नाचती है? ये पीपल का पेड जैसे कुछ सुन रहा है। जिसके कान है, वे सुन ले। इस वादी ने उन्हें देखा था और समझा था। क्यों न हों, वे इसके अपने थे, बेहद अपने। यहाँ के पेड़ों की शाखाओं पर आज बंदर इंतज़ार करते है कि कब कोई मकई की खेती करे और नन्हे-नन्हे कई पैर उनका पीछा करे और जीभ दिखाकर भाग जाएँ।''[50] 'ताजुम' इस कहानी का पुरुष पात्र है। जो दो-तीन महीने के अन्तराल

में पाँच पत्नियों से पाँच पुत्रों का पिता बनता। वे अनेक माओं और एक पुरुष की संतान होने पर भी मिल-जुलकर रहते थे। यालाम के कहानियों में पुरुष पात्र विलासी और कमज़ोर नज़र आते हैं। लेकिन पत्नियों को छूरी से धमकाना अवश्य आता है।

इस संकलन की एक ओर कहानी हैं 'क्या सच में वे कभी मिले थे'। इस कहानी के माध्यम से न्यीशी जन-जाति का विवाह परंपरा का ज्ञान होता है। खासकर बाल विवाह की ओर इशारा किया है। 'उसका नाम यापी था' कहानी में 'यापी' नामक ग्रामीण लड़की का प्रेम जाल में फँसना और छली जाने का चित्र है। अंतिम कहानी है 'चुनौती' जो प्रतीकात्मक एवं व्यंग्यात्मक ढंग में प्रस्तुत है। 'साक्षी है पीपल' की कहानियाँ कला और शिल्प के धरातल पर पाठकों केलिए एक नवीन अनुभव प्रदान करती हैं।

2.3.13 अपना अपना युद्ध

'अपना अपना युद्ध' (2014) आदिवासी रचनाकार वाल्टर भेंगरा तरुण का एक कहानी संग्रह हैं। प्रस्तुत कहानी संकलन की कहानियों में आदिवासियों का शहरीय जीवन की कुछ समस्याएँ, बेरोज़गारी, घरेलु हिंसा, आदिवासी स्त्री स्वर आदि को केन्द्र में रखा है। 'खखरा', 'करमी' आदि इस संकलन की चरित्र प्रधान कहानियाँ हैं। 'लडाई जारी है', 'एक और मगदलेना' आदि अन्य कहानियाँ हैं।

'खखरा' इस संकलन की एक महत्वपूर्ण कहानी है। खखरा याने जतरा बाबु इस कहानी का नायक है जो पढाई-लिखाई के बाद भी अपनी ज़मीन और समाज को नहीं भूलता और अपने बचपन की प्रेमिका अनपढ 'एतबा' से शादी कर लेता और विकास के सब प्रलोभन छोडकर अपने गाँव और समाज के विकास केलिए गाँव लौट आता है। वापस गाँव लौटने का उद्देश्य गाँव की उन्नति कराना था। वह किसान का बेटा होने के नाते कृषि की उन्नति में अपना योगदान देना चाहता था। इस विषय पर जतरा के प्रोफेसर ने एक बार सवाल किया था-"तुम गाँव की उसी कीचड में वापस जाना क्यों चाहते हो?"[51] और खखरा का जवाब इस प्रकार था-"सर, क्योंकि उस कीचड में शहर की कीचड की तरह बदबू नहीं खुशबू होती है। महानगर की कीचड में भयकर कीडे पैदा होते हैं। मगर गाँव की कीचड में धान की खेती होती है। अनेक तरह की फसलें उपजती हैं। कमल के फूल खिलते हैं।"[52]

2.3.14 विकल्प

हिन्दी में लिखनेवाले आदिवासी लेखकों में वाल्टर भेंगरा तरुण प्रमुख हस्ताक्षर हैं। 'विकल्प' उनका 2020 में प्रकाशित कहानी संकलन है। इसमें झारखण्ड के आदिवासी समाज की विभिन्न समस्याओं को दर्शाने का प्रयास हुआ है। 'विकल्प', 'संशय', 'सूखा डंटल', 'डायन', 'कालापानी', 'परिधि के घेरे में' आदि इस संकलन की प्रमुख कहानियाँ हैं।

'विकल्प' कहानी मध्यवर्गीय शहरी नागर सभ्यता में पढे-लिखे आदिवासियों से होकर गुज़रती है। नगरीय सभ्यता के कारण आदिवासी जीवन

में आती नई चुनौतियों और उन चुनौतियों से जूझने की जद्दोजहद को सामने रखा है। 'विकल्प' का आदिवासी गाँव ईसाई धर्म में धर्मांतरित आदिवासियों का है। प्रस्तुत कहानी का मुख्य पात्र किशोर नौकरी पाकर शहर जा बसता है। पत्नी और बच्चों के साथ शहर में जीवन व्यतीत करने लगता है। किन्तु ग्रामीण जीवन की आदी रही उसकी बूढी माँ शहर की भागदौड भरी यांत्रिक ज़िन्दगी से तालमेल नहीं रख पाती। चाहकर भी अपनी माँ को साथ नहीं रख पाता। और आर्थिक मदद भेजता रहता है। किन्तु बूढी माँ कहती है-"रुपया ही सब कुछ नहीं होता है, शोभा बेटी। बुढापे में आदमी को और भी सहारा चाहिए।"[53] नौकरी के कारण गाँव छोडने की मजबूरी पारिवारिक बिखराव का कारण बन जाती है।

प्रस्तुत संकलन की 'डायन' कहानी अन्धविश्वास की बुराइयों की ओर इंगित करती है तो, 'कालापानी' और 'परिधि के घेरे में' आदि कहानियों में रोज़ी रोटी की तलाश में अण्डमान निकोबार द्वीप समूह में मजबूरन जीवन व्यतीत करते आदिवासियों का जीवंत चित्रण है। इस प्रकार लेखक ने 'विकल्प' संग्रह के कहानियों के माध्यम से आदिवासियों की जीवन की एक नयी दिशा तलाशने का प्रयास किया है। इनके अलावा हरिराम मीणा कृत 'अमली', भगवान गव्हाडे का 'गोल्डन सिटी', शिशिर टुडू का 'दिल्ली रिटर्न', मंजु ज्योत्सना का 'प्रायश्चित', कोमल कृत 'साहूकार की मछली' और 'पहचान', रूप लाल बेदिया का 'जूठे प्लेट' आदि कहानियाँ आदिवासी कहानियों में बहुचर्चित हैं। लेकिन अभी उनका लेखन जारी है। इसलिए कहानियों का संकलन नहीं

निकला है। कई सम्पादित पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कहानियाँ छप रही हैं।

रमणिका गुप्ता के संपादन में आयी किताब 'आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी', डॉ.एम फीरोज़ खान के संपादन में आयी किताब 'आदिवासी चर्चित कहानियाँ', और वंदना टेटे के 'संपादन में आयी किताब', 'लोकप्रिय आदिवासी कहानियाँ' आदि संपादित पुस्तकें आदिवासी कहानी लेखन को समृद्ध बनाया है। आदिवासी कहानी लेखन में आदिवासी एवं गैर-आदिवासी साहित्यकार एक साथ शामिल हैं। प्रस्तुत कहानियों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि आदिवासी एवं गैर आदिवासी साहित्यकार एक साथ मिलकर हिन्दी कहानी विधा को समृद्ध बना रहे हैं।

2.4 कविता

हिन्दी आदिवासी कविता समकालीन साहित्य में एक आन्दोलन के रुप में या धारा के रुप में विकसित होने लगी है। किन्तु आदिवासी साहित्य में कविता की परंपरा बहुत पुरानी है। ''प्राचीन भारत के आरम्भ में विभिन्न ग्रन्थों में 'आर्य' और 'अनार्य' दो समुदाय बताए गए। ऋग्वैदिक काल में वैदिक व्यवस्था 'कबायिली' प्रकार की थी, जिसका मुखिया 'राजा' होता था। राजा का प्रमुख कार्य 'दस्यु' या 'दास' के विरुद्ध लड़ना था। ये 'दस्यु' संभवतः अनार्य थे। ये जातियाँ थी जो नगरीय सभ्यता से दूर ग्रामों व पहाडों में रही हैं। अपनी संस्कृति को लेकर फिर धीरे-धीरे समग्र में समाहित हुई होगी। भारतीय वैदिक संस्कृति की यह विशेषता रही है कि यह सदैव 'व्यक्तिगत हित' को त्याग कर

जरूरतमन्दों, गरीबों एवं अभावग्रस्तों की सहायता करने की प्रेरणा देती है। इसके अतिरिक्त यह सदा सामूहिक प्रयास करने को प्रेरित करती रही है।''[54] उदाहरणार्थ, ऋग्वेद (मंडल 5, सूक्त 60, मंत्र 5) में कहा गया है-

''अज्ये ठासो अकनि ठास एते।

सं भ्रातरो वावृधु : सौ भगाय।।''[55]

इसका अर्थ है-''कोई श्रेष्ठ या निम्न नहीं है। सभी बंधु हैं, सभी लोग सभी के हितों केलिए प्रयत्न करें तथा सभी सामूहिक रुप से प्रगति करें। इस प्रकार सभी मनुष्यों को समान एवं भ्रातृत्व तुल्य माना गया है।''[56]

इसके अलावा ''अथर्ववेद (समाज़ान सूक्त) में समानता अपनाकर दूसरों की मदद करने का वर्णन मिलता है-

''समानो प्रपा सह वोत्रभागः।

समानो योक्त्रे सह वो युनज्मि।

आराः नाभिमिवाभितः ।।''[57]

अर्थात ''भोजन एवं जल में सभी को समान अधिकार है। सभी मनुष्यों को सामंजस्यपूर्ण ढंग से एक-दूसरे की मदद करनी चाहिए।''[58]

महाभारत महाकाव्य में- ''न हि मनुषात्परतर किंचिरदस्ति अर्थात मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। इसके अतिरिक्त सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे भवन्तु निरामयाः इस श्लोक में सबके सुखी, निरोगी, शुभ और दुखरहित होने की कामना की गई है।''[59]

उसी प्रकार इस काल में वीर एकलव्य के धनुर्विधा केलिए किये गये प्रस्ताव को गुरु द्रौणाचार्य का ठुकराना और दक्षिणा के रूप में 'अँगूठा' माँग लेना उस समय आदिवासियों के साथ हो रहे अन्याय एवं अत्याचार केलिए उदाहरण है।

वाल्मीकी रामायण में रामायणकाल में आदिवासी जीवन का वर्णन मिलता है। और तुलसीदास कृत रामचरितमानस में भी आदिवासियों का विस्तृत वर्णन मिलता है। 'अयोध्याकाण्ड' में भील शासक 'निषादराज' और उनके प्रियजन श्रीराम के वनवास को लेकर भारी विषाद में डूब जाते हैं। इस ग्रन्थ की पंक्तियाँ देखिए –

"यह सुधि गुंह निषाद जब पाई
मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई
और नाथ कुसल पद पंकज देखें
भयउँ भाग भाजन जन लेखें
देव धरती धनु धामु तुम्हारा
मैं जनु नीयु सहित परिवारा।"[60]

इस प्रसंग में तत्कालीन समाज तथा राजनीतिक सत्ता के प्रति आदिवासी समुदाय के सम्बन्धों को गहराई से परखा है। उसी प्रकार,

"सोवत प्रभुहि निहारी निषादु
भयउ प्रेम बस हृदयँ विषादु

तथा तनु पुलकित जलु लोचन बहई।''[61]

इस विवरण में राज्य एवं राज्य व्यवस्था के प्रति आदिवासियों का विश्वास और श्रद्धा को व्यक्त किया है।

आगे चलकर स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविताओं में आदिवासी जीवन प्रतिबिम्बित होता है। आज़ादी के बाद भारत सरकार जनजातियों केलिए नयी नीतियाँ अपनाने लगी। इसके पश्चात साठोत्तरी आधुनिक हिन्दी कविता में आदिवासियों के विमर्श को प्रचुर मात्रा में वाणी प्रदान की जाने लगी।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कवियों में भवानी प्रसाद मिश्र का नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी अधिकांश कविताएँ जनजातीय अंचल से जुडी हैं। जनजातीय गाँव का यथार्थ चित्रण करते हुए वे लिखते हैं-

''गाँव इसमें झोंपडी है, घर नहीं है
झोंपडियों के फटकियाँ हैं, दर नहीं है
धूल उडती है धुएँ से दम घुटा है
मानवों के हाथ से मानव लुटा है।''[62]

उसी प्रकार 'नागार्जुन' ने 'माडिया' जनजातियों के विषय में लिखा है-

''अपन इसके साथ दो रोज़ रह पाते।
काश! झोंपडियों वाली इसकी बस्ती तक
पहूँच पाते अपन।''[63]

मध्यप्रदेश, पूर्वी भारत तथा दक्षिण भारत के कुछ क्षेत्रों में स्थिर एवं स्थायी जनजातियाँ पायी जाती हैं। कवि का मानना है अगर जनजातियों के विषय में जानकारी प्राप्त करना हो तो उनके पास उनके बीच जाना होगा।

प्रकृति जनजातियों का अभिन्न अंग है। उनके जीवन में नदी, पर्वत, वन, जंगली जानवर आदि का बहुत अधिक महत्व है। वास्तव में जनजातीय संस्कृति नदियों की संस्कृति है। नदी के किनारे बसे आदिवासियों की संस्कृति को देखकर कवि नागार्जुन लिखते है-

''क्या नहीं है वह?
माँ भी है, बेटी भी है, बहन भी है,
बहु भी है।
सहेली भी है, प्रेयसी भी है।
सायिन है सुख-दुख की सब कुछ है।''[64]

श्री अंगद सिंह बिसेन ने अपनी कविताओं में आदिवासी जीवन का पूरा इतिहास प्रस्तुत किया है। ये लोग अक्सर जादू टोना, डायन आदि के प्रकोप से डरते हैं। इसी ओर कवि की दृष्टि जाती है-

''जाति पक्ष के हित में, नियम
पाल करते हम जादू, टोना,
डायन प्रकोप से सदैव डरते हम।।''[65]

विश्वास एवं अंन्धविश्वास के प्रति आदिवासियों की आस्था काफी ज़्यादा नज़र आती है।

डॉ. इन्द्र बहादूर सिंह जनवादी विचारधारा के प्रतिबद्ध कवि है। जनकवि होने के साथ-साथ स्त्री विमर्श, दलित विमर्श एवं आदिवासी विमर्श से भी जुडे व्यक्ति हैं। जनजातियों पर किये गये, अन्याय, अत्याचार, शोषण एवं उत्पीडन के प्रति इनके भावों व विचारों को 'आदिवासी' नामक कविता में देख्रा जा सकता है-

> ''एक दिन जिसे मैंने
> मार भगाया था-
> दूर सुदूर जंगलों-पहाडों में
> कुचल दिया था, जिसे साँप के
> फन जैसे।''[66]

इन्द्र बहादूर सिंह ने आदिवासी जीवन के दुःख्र-दर्द, उसके संघर्ष तथा जिजीविषा और मुक्ति का गहन चिंतन किया है।

समकालीन लेख्रन में भी आदिवासी कविता की परंपरा काफी समृद्ध है। हिन्दी की पहली आदिवासी कवयित्री सुशीला सामद है। उनकी 'प्रलाप' नामक काव्य संकलन सन् 1935 में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद सन् 1966 में दुलायचंद्र मुंडा का 'नव पल्लव' नामक काव्य संकलन प्रकाशित हुआ। 90 के दशक से लेकर रामदयाल मुंडा और बलदेव मुंडा का नाम इस क्षेत्र में जुड गया। रामदयाल मुंडा का 'वापसी, 'पुनर्मिलन तथा अन्य गीत', 'नदी और

उसके सबन्धी तथा अन्य गीत’ आदि महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। कुमार अम्बुज और लीलाधर मंडलोई का नाम भी इसमें महत्वपूर्ण हैं। कुमार अम्बुज का अतिक्रमण (2002) नामक काव्य संकलन में संकलित कविता है ‘सताए हुए लोग’ (आदिवासी मुक्ति संगठन केलिए समर्पित)। प्रस्तुत कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

> ‘‘इस पृथ्वी पर संभव है संपन्न
> लोगों का जीवन
> कि सताए
> हुए लोग चले आ रहे हैं जीवित
> असंख्य और असमाप्त।’’[67]

सदियों से वंचित आदिवासी आज भी वंचित हैं। लेकिन हिम्मत न हार कर अपने हक केलिए लडाई लड रहे हैं।

लीलाधर मंडलोई का ‘काल बाँका तिरछा’ (2004) नामक काव्य संकलन की कई कविताएँ आदिवासी जीवन केन्द्रित हैं। प्रस्तुत संकलन की एक कविता है ‘खखरे का टोप’। इस कविता की पंक्तियाँ देखिए-

> ‘‘देखता हूँ लौट के पीछे तो दूर खेतों में
> दिख जाते हैं खखरे के बडे पत्तों का
> हरा टोप पहने चोखे, कक्का, कत्वारु, मौसा।’’[68]

लीलाधर मंडलोई का एक ओर काव्य संकलन है 'काला पानी'। इसमें अंडमान निकोबार द्वीप समूहों में बसनेवाले आदिवासियों के जीवन को आधार बनाया है।

चन्द्रकांत देवताले की कविताओं में शोषित, पीडित एवं उपेक्षित आदिवासियों के विभिन्न रुप पाये जाते हैं। 'लकड़बग्घा हँस रहा है', चन्द्रकान्त देवताले की महत्वपूर्ण काव्य संकलन हैं। इस संकलन में इसी नाम से एक कविता मिलती है। कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

> ''अफीम के खेतों के इलाके में
> बाँछेड औरतें
> अपने बोदे पतियों की मौजूदगी में
> लाचार और विवश हैं।''[69]

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने मध्यप्रदेश के आदिवासियों के दैनिक जीवन संघर्ष को व्यक्त किया है। आदिवासियों के साथ आदिवासी स्त्री जीवन पर भी उनकी आवाज़ बुलन्द है।

समकालीन कविता के प्रमुख हस्ताक्षर अरुण कमल और राजेश जोशी की कविताओं में आदिवासी स्वर बुलन्द है। राजेश जोशी की 'धूप घडी' (2002) नामक काव्य संकलन में 'एक आदिवासी लडकी की इच्छा' नामक कविता छपकर आयी थी। कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

> ''लडकी की इच्छा है

छोटी-सी इच्छा

हाट इमलिया जाने की।"[70]

प्रस्तुत कविता की पंक्तियाँ अभाव एवं गरीबी में जीते आदिवासी लडकियों के स्वप्न और आकांक्षाओं को व्यक्त करती हैं।

अरुण कमल की कविता 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' मध्यप्रदेश के आदिवासी जीवन पर आधारित हैं। 'अरुण कमल' लिखते हैं-

"एक अंधेरा जो सब अंधेरे

से बडा और घना है

जहाँ रात ही रात है हज़ारों सालों से।"[71]

आदिवासियों का जीवन युगों से अन्याय के चंगुल में फंसा है। आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी आज़ादी की किरणें आदिवासियों की झोंपडी तक नहीं पहुँची हैं। अरुण कमल और राजेश जोशी के साथ ज्ञानेन्द्रपति का नाम भी जोडा जाता है। ज्ञानेन्द्रपति की 'संशयात्मा' (2004) नामक काव्य संकलन में 'एक आदिवासी गाँव से गुज़रती सडक' नामक कविता मिलती है-

"बडे-बडे रोड रोलर आए थे

लुटेरे वाहनों के आने से पहले।"[72]

'झारखण्ड के पहाडों का अरण्यरोदन', 'गाँव के सिवान पर वनस्पतित भट्ठा' आदि उनके आदिवासी केन्द्रित अन्य कविताएँ हैं।

विनोद कुमार शुक्ल का नाम भी इस क्षेत्र में काफी चर्चित है। उनका काव्य संकलन 'कभी के बाद अभी' की अधिकांश कविताएँ आदिवासी जीवन पर आधारित हैं।

2.4.1 नगाडे की तरह बजते शब्द

'नगाडे की तरह बजते शब्द' (2004) निर्मला पुतुल का पहला काव्य संकलन है। हिन्दी काव्य साहित्य में आदिवासी कविताओं की नींव डालने में यह संकलन अहम भूमिका निभाता है। निर्मला पुतुल एक आदिवासी स्त्री है। आदिवासी होने के नाते जनजातीय स्त्री स्वर उनकी कविताओं में बुलन्द है। प्रस्तुत संकलन की एक महत्वपूर्ण कविता है 'बूढी पृथ्वी का दुःख'। प्रस्तुत कविता की पंक्तियाँ हैं-

> ''कभी शिकायत न करने वाली
> गुमसुम बूढ़ी पृथ्वी से उसका दुःख।
> अगर नहीं तो क्षमा करना
> मुझे तुम्हारे आदमी होने पर संदेह हैं।''[73]

कवयित्री ने अपने समग्र जीवन के अनुभवों को काव्य भाषा के माध्यम से उतारने की कोशिश की है।

2.4.2 पहाड हिलने लगा है

'पहाड हिलने लगा है' (2006) वाहरु सोनवणे का कविता संग्रह हैं। वे लेखक, कवि व सामाजिक कार्यकर्ता के रुप में सक्रिय है। 'स्टेज' उनकी एक महत्वपूर्ण कविता है। प्रस्तुत कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

> ''हम स्टेज पर गए ही नहीं
> और हमें बुलाया भी नहीं।"[74]

आदिवासी समाज के प्रति सभ्य समाज का हार्शियेकृत नज़रिया को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

2.4.3 सुबह के इन्तज़ार में

'सुबह के इन्तज़ार में' (2008) हरिराम मीणा का काव्य संकलन है। प्रस्तुत संकलन दो भागों विभाजित है- 'आदिवासी' और 'आसपास'। 'सरदार सरोवर में डूबा आदिवासी भविष्य', 'आदिवासी लडकी', 'खत्म होती हुई एक नस्ल', 'राजस्थान में भीषण अकाल' आदि इस संकलन की महत्वपूर्ण कविताएँ हैं। बिरसा मुंडा की याद में कविता लिखकर जनता की चेतना को अग्रसर करते हैं-

> ''खेलने-कूदने की उम्र में
> लोगों का आबा बन गया था वह
> दिकुओं के खिलाफ।''[75]

प्रस्तुत संकलन के माध्यम से लेखक ने आदिवासियों की संस्कृति, अन्याय, अकाल, अस्तित्व की पहचान और उनकी समस्याओं को समाज के सामने रखा है।

2.4.4 बेघर सपने

'बेघर सपने' (2014) निर्मला पुतुल का काव्य संकलन है। इसमें संकलित कविताएँ आदिवासी केन्द्रित होते हुए भी अधिकांश कविताओं में जनजातीय औरतों का जीवन संघर्ष मिलता है। 'औरत', 'माँ', 'मिटापाओगे सब कुछ', 'वेश्या', 'सबसे डरावनी रात', 'तुम्हारे एहसान लेने से पहले सोचना पडेगा हमें', 'जब टेबुल पर गुलदस्ते की जगह बेसलरी की बोतलें सजती है' आदि इस संकलन की महत्वपूर्ण कविताएँ हैं। विकास एवं परियोजनाओं के नाम पर आदिवासी लोगों का शोषण ज़ोर से चल रहा है। निर्मला पुतुल की कविता 'तुम्हारे एहसान लेने से पहले सोचना पडेगा हमें' नामक कविता की पंक्तियाँ देखिए-

> "अगर हमारे विकास का मतलब
> हमारी बस्तियों को उजाड़कर
> कल कारखाने बनाना है।"[76]

प्रस्तुत संकलन के माध्यम से कवयित्री सदियों से दबे-कुचले आदिवासियों की छटपटाहट को सामने लाकर उनके न्याय केलिए लडना चाहती हैं।

2.4.5 आदिवासी मोर्चा

हिन्दी आदिवासी साहित्य जगत में भगवान गव्हाडे का नाम उल्लेखनीय हैं। उनकी 'आदिवासी मोर्चा' (2014) नामक काव्य संकलन बहुचर्चित है। इस संकलन में कुल 52 कविताएँ संकलित है। 'उलगुलान', 'वैश्वीकरण की असली शक्ल', 'आदिवासी संस्कृति', 'आदिवासी मोर्चा', 'आदिवासी महामानव', 'अपने जंगल की तलाश' आदि महत्वपूर्ण कविताएँ हैं। उनकी रचनाएँ भूमंडलीय अर्थव्यवस्था की कड़वी सच्चाइयों को आदिवासी समाज के सन्दर्भ में सामने लाने का प्रयास है। 'पहाड' नामक कविता में इसका यथार्थ अंकन मिलता है-

> ''रो रहा है पहाड आज आँसू भी
> सूख रहे हैं
> अपने तन-बदन को
> निर्वस्त्र होते देख रहा है।''[77]

गव्हाडे की कविताएँ आदिवासी त्रासदपुर्ण जीवन के आक्रोश को व्यापक जन आन्दोलन का रूप प्रदान करती हैं। साथ में कविता को नयी परिभाषा देकर समसामयिक सन्दर्भों से सीधा प्रहार भी करती हैं।

2.4.6 कोनजोगा

'कोनजोगा' (2015) हिन्दी की मशहूर आदिवासी लेखिका वंदना टेट का काव्य संकलन है। अभी तक हिन्दी और खडिया दोनों भाषाओं में उनके अनेक

लेख, कविताएँ एवं कहानियाँ छप चुकी हैं। पिछले तीन दशकों से झारखण्ड के साहित्यिक सांस्कृतिक मोर्चे पर सक्रिय वंदना टेटे' आदिवासी अस्मिता केलिए आवाज़ उठा रही है।

'कोनजोगा' वंदना टेटे की महत्वपूर्ण रचना है। इसमें 53 कविताएँ संकलित हैं। कुछ कविताएँ खडिया भाषा से हिन्दी में अनूदित हैं। 'कोनजोगा' इस संकलन की महत्वपूर्ण कविता है। प्रस्तुत कविता की पंक्तियाँ देखिए-

> ''हम नहीं लड रहे
> अपने लिए
> कोनजोगा को
> तोड रहे हैं लोग।''[78]

वंदना टेटे का लेखन दबे कुचले जा रहे और हाशिए पर डाले संस्कृतियों की आहट है और इतिहास की मुख्य धारा की शक्तियों के खिलाफ आक्रोश का स्वर है।

2.4.7 बाघ और सुगना मुण्डा की बेटी

युवा साहित्यकारों में अनुज लुगुन का महत्वपूर्ण स्थान है। 'बाघ और सुगना मुण्डा की बेटी' (2017) अनुज लुगुन का महत्वपूर्ण काव्य संकलन है। यह उनकी लम्बी कविता है। इसको तीन खण्डों में विभक्त किया है। 'बाघ' पहला खण्ड है जो तीन पृष्ठों में मिलता है। 'सुगना मुण्डा' खण्ड नौ पृष्ठों का है और 'सुगना मुण्डा की बेटी' वाला खण्ड सबसे बड़ा है जो पैसंठ पृष्ठों का है और

चार भागों में विभक्त है। एक गहरे विचार-चिन्तन से रची यह लम्बी कविता हिन्दी की लम्बी कविताओं में अपना विशेष स्थान रखती है। 'सुगना मुण्डा' खण्ड में प्रयुक्त प्रमुख पंक्तियाँ हैं-

"सदियों से बाघ
हमें अपने खूनी पंजों में
जकडने की कोशिश करता रहा है।"[79]

विस्थापन, शहरीकरण व औद्योगीकरण के कारण नष्ट होती आदिवासी सभ्यता और समाज उनकी कविताओं का मुख्य विषय रहा है।

'अघोषित उलगुलान' उनका अप्रकाशित काव्य संकलन है। लेकिन प्रस्तुत कविता केलिए अनुज लुगुन को भारतभूषण अग्रवाल सम्मान दिया गया है। इस कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"कोई नहीं बोलता जंगलों
के कटने पर
पहाडों के टूटने पर
नदियों के सूखने पर।"[80]

2.4.8 जंगल पहाड के पाठ

'जंगल पहाड के पाठ' (2017) हिन्दी के मशहूर आदिवासी कवि महादेव टोप्पो का महत्वपूर्ण काव्य संकलन है। प्रस्तुत काव्य संकलन में 44 कविताएँ संकलित हैं। उनमें 'मैं खुश था', 'कब तक? रचने होंगे ग्रन्थ', 'प्रजातंत्र में',

‘पहाड की नज़रों से’, ‘बाज़ार का झारखण्ड’, ‘मैं पूछता हूँ’, ‘पहाड के पाठ’ आदि प्रमुख्र हैं।

यह कविता संग्रह आदिवासी दुनिया के संघर्ष, आक्रोश एवं पीडा के साथ उनकी आशाओं, सपनों और आकांक्षाओं से परिचित कराता है। प्रस्तुत संकलन की एक महत्वपूर्ण कविता है ‘जंगल का कवि’। इसकी पंक्तियाँ देखिए-

“जब जंगल की
सारी विद्रोही आवाज़ों को जंगल
के पेडों के हरेपन को
हरे-भरे सीना तान
पहाडों पर, घाटियों में।”[81]

इस संकलन की अधिकांश कविताएँ विकास, पूँजीवाद, वैश्वीकरण, नक्सलवाद आदि को झेलते आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं भाषिक समस्याओं को परख्रने का प्रयास है।

2.4.9 चाँद से पानी

‘चाँद से पानी’ (2018) शिरोमणि महतो का काव्य संग्रह है। शिरोमणि महतो अपने ख्रास मिजाज और नज़रिए के कारण आदिवासी साहित्य जगत में एक अलग स्थान बना रख्रा है। क्योंकि उनकी कविताएँ कहन और भाषा की पृथकता के कारण अलग सी पहचानी जाती है। प्रस्तुत संकलन में 52 कविताएँ संकलित हैं। उनमें ‘चाँद का कटोरा’, ‘धरती के इन्द्रधनुष’, ‘नानी’, ‘चौबीस

घंटे', 'दरिन्दे', 'गिलास', 'दरिद्र', 'पानी' आदि प्रमुख हैं। कविता कहने का उनका अलग अंदाज़ उन्हें अपने समय के दूसरे कवियों से अलग पहचान देता है- उनकी 'चाँद का कटोरा' कविता की पंक्तियाँ देखिए-

"तब कटोरे के पानी में
चाँद को देखता था
अब चाँद के कटोरा में
पानी देखना चाहता हूँ!"[82]

2.4.10 आदिवासी की मौत

'आदिवासी की मौत' (2019) डॉ. खन्ना प्रसाद अमीन का काव्य संकल्प है। इसमें 50 कविताएँ संकलित हैं। उनमें 'बिखर गए', 'सभ्यता और संस्कृति', 'व्यवस्था का विनाश', 'धर्म और संविधान', 'जंगलों का विनाश', 'विस्थापन का दर्द', 'ज़मीन हमारी', 'आदिवासी की मौत', 'गायब होता जंगल' आदि प्रमुख हैं। रमणिका गुप्ता के अनुसार- "'आदिवासी की मौत' कविता संग्रह आदिवासियों के विस्थापन की पीडा और हकीकत को उकेरता है। सरकार की विकास की नीतियों के कारण हो रहे विध्वंस की तस्वीर इन कविताओं में कवि ने उतारने की सफल कोशिश की है। 'आदिवासी मौन क्यों है' इस पर भी कवि प्रश्न उठाते हैं और दूसरी कविताओं में उत्तर भी देते हैं। आदिवासी संस्कृति, उनकी जीवन शैली को किस कदर पर प्रभावित किया है बाहर से आने वाले घुसपैठियों ने, इसका भी चित्रण कहीं कहीं मिल जाता है। आदिवासी कब मरता है- जब उसका जंगल नष्ट हो जाता है- क्योंकि जल-जंगल-ज़मीन के बिना

आदिवासी का अस्तित्व ही सम्भव नहीं है। आदिवासी विस्थापन होता है तो उसकी सारी संस्कृति विस्थापित हो जाती है, उसकी भाषा भी खत्म हो जाती है। आदिवासी की मौत कविता में कवि ने बखूबी इसका चित्रण किया है। खन्ना प्रसाद अमीन जी का यह काव्य संग्रह पाठकों को नयी दृष्टि देगा और आदिवासियों के आक्रोश की हकीकत से भी उन्हें परिचित कराएगा।''[83]

''तुम्हारी ही ज़मीन पर
वे बनाते हैं-
परमाणु रिएक्टर प्लांट
बाँध परियोजना
जिसके करण तुम्हें
सहना पडता है
बार-बार विस्थापन का दर्द।''[84]

प्रस्तुत पंक्तियाँ 'विस्थापन का दर्द' नामक कविता की हैं। आदिवासी समाज लम्बे समय से त्रासदियाँ झेल रहा है। उनके जीवन की विभिन्न समस्याओं को रेखांकित करना ही लेखक का मूल उद्देश्य है। विस्थापन आज आदिवासियों केलिए सबसे बड़ी खतरनाक समस्या बन गई है।

2.4.11 आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएँ

हरिराम मीणा आदिवासी समाज के वरिष्ठ कवि, चिंतक एवं विचारक हैं। 'आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएँ' (2019) उनकी एक महत्वपूर्ण रचना

है। इसमें कवि की 23 कविताएँ और 99 नन्हीं कविताएँ शामिल हैं। 'आदिवासी', 'भूखी आँतें', 'आक्रोश', 'बस इतना ही', 'एकलव्य पुनर्पाठ', 'आदिवासी और यह दौर', 'आदिवासी जलियाँवाला : मानगढ' आदि कविताएँ प्रमुख हैं।

> ''नुकीले तीर चलाती सर्द रातें
> और थप्पड पर थप्पड मारते दिन
> लोग परेशान है।''[85]

प्रस्तुत पंक्तियाँ 'बस इतना ही' नामक कविता से ली गयी है।

हरिराम मीणा ने इस संकलन में आदिवासियों का इतिहास और अदम्य साहस को मूल रुप से व्यक्त किया है।

2.4.12 एक और जनी शिकार

'एक और जनी शिकार' (2020) ग्रेस कुजूर का काव्य संग्रह है। इस संकलन में कुल मिलाकर 70 कविताएँ संकलित हैं। 'धार के विपरीत', 'बौन संसार', 'कलम मौसम बदलेगी', 'अमन की संजीवनी', 'पानी ढोती औरत', 'मशाल', 'एक और जनी शिकार', 'है समय के पहरेदारो', 'ग्लोबल चारागाह', 'नियति', 'अब हम गीत नहीं गाएँगी', 'स्मार्ट सिटी', 'कलम को तीर होने दो', 'गाँव की मिट्टी' आदि उनमें प्रमुख हैं।

हिन्दी आदिवासी साहित्य में ग्रेस कुजूर महत्वपूर्ण कवयित्री हैं। वे अपने विषय विविधता के कारण साहित्य जगत में अलग स्थान बना रखती हैं। प्रस्तुत

संकलन के अधिकांश कविताओं का केन्द्र विषय मध्य भारत के आदिवासियों का जीवन यथार्थ है। लेकिन उनकी कविताओं का फलक व्यापक है।

> ‘‘कहाँ है वह फुटकल का गाछ
> जहाँ चढती थी मैं
> साग तोडने
> और गाती थी तुम्हारे लिए।’’[86]

प्रस्तुत पंक्तियाँ ‘एक और जनी शिकार’ नामक कविता से ली गयी हैं। यह कविता हमें नष्ट होती आदिवासी संस्कृति और सभ्यता की ओर ले चलती है।

2.4.13 नये हस्ताक्षर

‘नये हस्ताक्षर’ (2020) आलोका कुजूर का काव्य संकलन है। प्रस्तुत संकलन में आदिवासी जीवन की संस्कृति के साथ जल-जंगल-ज़मीन के ज्वलन्त समस्याएँ एवं उनका संघर्ष भरा सफर समाहित हुआ है। ‘साजिश’ इस संकलन की एक महत्वपूर्ण कविता है। कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

> ‘‘योजनाबध जुल्म हादसे बनते गए
> संगिन साये में हम जीते रहे
> काली रात हँस कर चली गई
> पगडंडी में बूटों की आवाज़
> वक्त के साथ गुज़र गई।’’[87]

आलोका कुजूर ने अपने जीवनानुभवों से जनजातियों के जीवन के विभिन्न उतार चढ़ावों को देखा-समझा और उन्हें कविताओं में उकेरने का प्रयास किया।

2.4.14 अंगोर

'अंगोर' (2020) मशहूर आदिवासी कवयित्री जसिन्ता केरकेट्टा का काव्य संकलन है। इस संकलन की कविताएँ अंग्रेज़ी और हिन्दी दोनों भाषाओं में लिखी गयी हैं। इसमें लगभग 41 कविताएँ संकलित हैं। 'अंगोर' नामक कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

> "शहर का अंगार
> जलता है जलाता है
> फिर राख हो जाता है।"[88]

अंग्रेज़ी में,

> "In cities, a piece of cool
> Burns, burns….
> And then is reduced to ash and cinders."[89]

समय के साथ गुज़रती उनकी कविताएँ आदिवासी जीवन के विभिन्न पहलुओं को गहराई से छूने का प्रयास करती हैं।

इनके अलावा सरिता सिंह बडाईक, शंकर लाल मीणा, वंदना टेटे, प्यारी टूटी, फ्रांसिस्का कुजूर, लक्ष्मण सिंह कावडे, हज़ारी लाल मीणा राही, सहदेव सोरी, भुवनलाल सोरी, मोती लाल, मीरा रामनिवास, ग्लैडसन डुंगडुंग आदि

अनेक आदिवासी साहित्यकार आदिवासी कविता को समृद्ध बना रहे हैं। लेकिन अभी उनका लेखन जारी है। इसलिए कविताओं का संकलन रूप नहीं निकाला है। कई संपादित पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कविताएँ छप रही हैं।

रमणिका गुप्ता के संपादन में आयी दोनों किताबें 'आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी' और 'कलम को तीर होने दो' में आदिवासी कविताएँ संकलित हैं।

रमणिका गुप्ता की कई कविताएँ आदिवासी जीवन केन्द्रित हैं। संपादक मदन कश्यप ने 'प्रतिनिधि कविताएँ रमणिका गुप्ता' नाम से रमणिका गुप्ता की कविताओं को संकलित किया है।

'वे बोलते नहीं थे' रमणिका गुप्ता की मशहूर कविता है। प्रस्तुत कविता की पंक्तियाँ हैं -

"वे बोलते नहीं थे
बिन बोले खाते
बिन बोले पीते
हंसते गाते रोते
पर वे बोलते नहीं थे।"[90]

उसी प्रकार ग्लैडसन डुंगडुंग बताते हैं-

"हमें नहीं चाहिए तुम्हारी
विकास नीति
जो दूसरों का

हक छीनबे का।”[91]

उसी प्रकार वंदना टेटे के संपादन में आयी किताब ‘कवि मन जनी मन’ आदिवासी कविताओं केलिए महत्वपूर्ण रही है।

निश्चय ही यह बात स्पष्ट है कि हिन्दी आदिवासी कविता अपनी विकास यात्रा में अग्रसर होती जा रही है।

2.5 नाटक

नाटक साहित्य की महत्वपूर्ण विधाओं में से एक है। प्रारम्भिक काल में विदेशी सत्ता और देश के आर्थिक पतन को लेकर कई नाटक रचे जाने लगे। बाद में भारत के अतीत एवं स्वाभिमान को पुनर्जीवित और ललकारने की घोषणाएँ होती रहीं। आज़ादी के बाद नाट्य साहित्य में महानगरीय जीवन और मध्यवर्गीय स्त्री पुरुष के सम्बन्धों को केन्द्र में रखा गया।

साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक में आदिवासी केन्द्रित रचनाएँ कम मिलती हैं। फिर भी सन् 1980 के दशक से हिन्दी नाट्य साहित्य में आदिवासियों के सामाजिक इतिहास एवं आन्दोलनों की अनुगुंज सुन सकते हैं। आदिवासी केन्द्रित नाटक निम्नलिखित हैं :-

2.5.1 हिरमा की अमर कहानी

हबीब तनवीर द्वारा कृत ‘हिरमा की अमर कहानी’ (1985) को आदिवासी जीवन पर आधारित प्रारंभिक नाटक के रूप में माना जाता है।

प्रस्तुत नाटक का विषयवस्तु इस प्रकार है- “यह कहानी आदिवासी रियासत तितुरबसना की है। तितुरबसना के शासक महाराज हिरमादेव सिंह गंगावंशी के गद्दी पर बैठने के कुछ ही महीने बाद, रियासत तितुरबसना भी दूसरी रियासतों की तरह हिन्दुस्तानी शासन में शामिल कर ली गई... एक सबसे बड़ा सवाल यह था कि सामन्तवाद को खत्म करके लोकतंत्र किस तरह स्थापित किया जाय? आज भी मेरे सामने यही सवाल है। सच तो यह है कि तितुरबसना रियासत की पूरी आबादी आदिवासी है, उसका जीवन आदिवासी जीवन है और आदिवासी जीवन को सामंतवादी जीवन नहीं कहा जा सकता।”[92] आदिवासी जीवन यथार्थ के साथ उनके दुःख, गरीबी, भोलापन एवं सरलता को व्यक्त करने में लेखक सक्षम रहे हैं। जंगल, ज़मीन एवं प्रकृति के प्रति उनके लगाव के माध्यम से इस सच्चाई को दिखाया है।

2.5.2 एक बार फिर

‘एक बार फिर’ नाटक डॉ. सुनील कुमार सुमन द्वारा लिखा गया है। इस नाटक का प्रकाशन रमणिका गुप्ता के संपादन में आयी किताब ‘आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी’ में 2002 को हुआ। नाटक केवल 14 पृष्ठों का है। इसमें समसामयिक भारतीय सामाजिक संदर्भ के माध्यम से दलितों एवं आदिवासियों की प्रगति को बाबाओं, और राजनेताओं द्वारा खोज खबर किया है। लोगों की दृष्टि में आदिवासियों को केवल वनवासी दिखाते हैं। जैसे-

“बरगदलाल... हमारी यह भरपूर कोशिश है कि आदिवासियों को ‘परंपरा और संस्कृति’ के नाम पर दलितों से एकदम अलग-थलग कर दिया

जाए। चूरनमल... जी गुरुदेव, इसके लिए हमने आदिवासियों को वनवासी नाम दिया है ताकि ये खुद को दलितों से अलग समझें। इसका सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि दलित अल्पसंख्यक हो जाएँगे और उनकी मूवमेंट कमज़ोर हो जायगी।''[93]

इस नाटक का मुख्य पात्र चिरकुटनाथ जी चिरकुण्डा बाबा है जो हिन्दुत्व के प्रचार प्रसार का बढावा देते हैं और आदिवासी एवं दलितों की एकता को तोडने का प्रयास करते हैं।

2.5.3 मोर्चा मानगढ

'मोर्चा मानगढ' (2009) घनश्याम सिंह भाटी प्यासा का ऐतिहासिक नाटक है। गोविंद गुरु इस नाटक का मुख्य पात्र है जो बंजारा समाज से है। गोविन्द गुरु राजस्थान, गुजरात आदि के सीमा पर रहनेवाले भीलों की जन जागृति के लिए कई कार्य करते हैं। उनकी बेकारी, गुलामी, नशापन इत्यादि से मुक्ति पाने केलिए उनमें नवीन चेतना का प्रसार करते हैं। इसके दौरान मानगढ स्थान पर अंग्रेज़ी सरकार एवं भीलों के बीच हमला चलता है। इस घटना में कई आदिवासी महिलाएँ, बच्चे और पुरुष मारे गए। आदिवासियों के न्याय के लिए लडनेवाले गोविन्द गुरु पर झूठा इल्ज़ाम लगाकर फाँसी की सज़ा दी जाती है। उदाहरण देखिए-

''गोविन्द गुरु : (बीच में) उफ! इतना बडा झूठ। कहाँ नशा मुक्ति कहाँ अहिंसा का पाठ? कहाँ हत्या का आरोप? ......

सरकारी वकील: तुम चुप रहो। जब तुम्हें पूछा जाय, तभी बोलना।''[94]

यहाँ अन्याय को न्याय बतानेवाली सरकारी वकालतों की सच्चाई को हमारे सम्मुख रखने का प्रयास हुआ है।

2.5.4 धरती आबा

'धरती आबा' (2010) हृषिकेश सुलभ का ऐतिहासिक नाटक है। प्रस्तुत नाटक बिरसा मुंडा के जीवन पर आधारित है। आदिवासी समुदाय हमेशा से भूख, गरीबी, अभाव एवं स्वास्थ्य सुविधाओं से वंचित रहा है। इस प्रकार बिरसा ने अंग्रेज़ी शासन एवं शासक के खिलाफ आन्दोलन छेडा था। जैसे-

''बिरसा : उलगुलन खत्म नहीं होगा। आदिम खून है हमारा... काले लोगों का खून है यह। भूख... लांछन... अपमान.... दुःख.....पीडा ने मिल-जुलकर बनाया है इस खून को। इसी खून से जली है उलगुलान की आग। यह आग कभी नहीं बुझेगी... कभी नहीं... जल्दी ही लौटकर आऊँगा मैं।''[95]

हर मनुष्य की तरह अधिकारों की अपेक्षा आदिवासी जन समुदाय भी करता है।

2.5.5 पोस्टर

'पोस्टर' शंकर शेष की महत्वपूर्ण कृति है। इसमें आदिवासी स्त्री जागरण को व्यक्त किया है। 'चैती' आदिवासी मज़दूर नारी है और कल्लू की पत्नी। ये दोनों आदिवासी मज़दूरों में परिवर्तन लाना चाहते हैं। इसके फलस्वरुप एक पोस्टर गोदाम में चिपकाते हैं। लेकिन ज़मीन्दार पटेल चैती को हवेली में काम करने केलिए मजबूर करता। चैती निरक्षर होते हुए भी समझ जाती है कि हवेली में जाना रंडी बनना है। ज़मीन्दारी व्यवस्था का शोषण के शिकार आदिवासी स्त्रियों को कुछ ज़्यादा भुगतना पड़ता है। चैती इसके खिलाफ आवाज़ उठाती पर कल्लु को पटेल का शिकार बनना पड़ता। इस वातावरण को नाटक में इस प्रकार चित्रित किया है- "(कोडा उठाकर कल्लु को मारता है... कल्लू कराहता है... एक दो कोडे पटेल और मारता है... कल्लु कराहता हुआ झुकता है।)... (कल्लु कराहता हुआ ज़मीन पर! चैती उठती है... घृणा से आकर सीधे पटेल पर थूकती है।)"[96] लेकिन अंत में चैती पटेल के हवेली में पहुँच जाती है। डॉ.प्रकाश जाधव के अनुसार- " 'पोस्टर' में आदिवासी मज़दूर जाग उठा है। आदिवासी नारी जाग उठी है। आदिवासियों की आत्मा जाग उठी है। पोस्टर के कर्त्तव्य शील अपने अधिकार माँगते हैं, जो कई वर्षों से उनसे छिन गये हैं। कर्त्तव्यशील नारी अपनी इज़्जत और प्रेम माँगती है। कर्त्तव्यशील आत्मा सबका सुख माँगती है।"[97]

नाटक साहित्य में आदिवासी रचनाएँ कम ही सही लेकिन वे अपने आप में आधुनिक होते हुए विवादास्पद रही हैं।

2.6 आलोचना

हिन्दी साहित्य में आदिवासियों को केन्द्र में रखकर कई आलोचनात्मक किताबें प्रकाशित हो रही हैं। प्रमुख आलोचनात्मक पुस्तकें निम्नांकित हैं-

'आदिवासी स्वर वाचिक परम्परा व साहित्य'- सं. वी.एस.चाटर्जी एवं जयशंकर उपाध्याय, 'आदिवासी स्वर संस्कार व प्रथाएँ'- सं. हरिनारायण दत्त और श्रीमती जसप्रीत बाजवा, 'आदिवासी स्वर सामाजिक आर्थिक जीवन'- सं.कुमार चौहान और श्रीमती रेनु चौहान, 'झारखण्ड एन्साइक्लोपीडिया हुलगुलानों की प्रतिध्वनियाँ खण्ड-१'- सं. रणेन्द्र और सुधीर पाल, 'झारखण्ड एन्साइक्लोपीडिया मांदर की धमक और गुलईची की खशबु'- सं.रणेन्द्र, 'माओवाद, हिंसा और आदिवासी'- सं.राजकिशोर, 'आदिवासी विकास से विस्थापन'- सं.रमणिका गुप्ता, 'आदिवासी साहित्य यात्रा'- सं.रमणिका गुप्ता, 'आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह'- सं.रमणिका गुप्ता, 'आदिवासी कौन'-सं.रमणिका गुप्ता, 'आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना'- सं. मणिका गुप्ता, 'आदिवासी और गाँधी'- अश्विनी कुमार पंकज, 'आदिवासी साहित्य परंपरा और प्रयोजन'- वंदना टेटे, 'आदिवासी अस्तित्व और झारखण्डी अस्मिता के सवाल'- डॉ.रामदयाल मुण्डा, 'आदिवासी दर्शन और साहित्य'-सं.वंदना टेटे, 'वाचिकता आदिवासी दर्शन साहित्य और सौन्दर्यबोध'-वंदना टेटे, 'आदिवासी और उनका निसर्ग धर्म'- प्र.डॉ.विनायक तुमराम, 'आदिवासी समाज हक और हकीकत'- सं.रविकुमार गोंड; लक्ष्मी शर्मा; निकिता कुमार, 'आदिवासी विमर्श इतिहास और संस्कृति (संघर्ष एवं नए जीवन के सपने)'- डॉ.विनोद विश्वकर्मा, 'हिन्दी

साहित्य में आदिवासी हस्तक्षेप'- गौतम भाईदास कुंवर, 'हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श'- डॉ.पंडित बन्ने, 'आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य'- सं.डॉ.ऊषा कीर्ति राणावत; डॉ.सतीश पाण्डेय; डॉ. शीतला प्रसाद दूबे, 'आदिवासी एवं उपेक्षित जन मूल'- 'डॉ.भीमराव पिंगले'; अनु.'ए.एच.जमादार', 'आदिवासी समाज एवं संस्कृति'- डॉ.शैला चव्हाण, 'समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श'-सं.डॉ.शिवाजी देवरे; डॉ.मधु खराटे, 'आदिवासी साहित्य विविध आयाम'-सं.डॉ.रमेश सम्भाजी कुरे, डॉ. मालती धोंडोपत शिदे, 'हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन'- डॉ.ईश्वरीसिंह राठवा, 'हिन्दी साहित्य में आदिवासी एवं स्त्री विमर्श'- डॉ.सविता चौधरी, 'वर्तमान समय में आदिवासी समाज'-सं.डॉ.गीता वर्मा; रवि कुमार गोंड, 'आदिवासी साहित्य दशा एवं दिशा'- सं.डॉ.एम.फीरोज़ खान; डॉ.शगुफता नियाज़, 'वैश्वीकरण और आदिवासी समाज समस्या एवं समाधान'- आज़ाद प्रताप सिंह, 'आदिवासी दमन शोषण और यथार्थ', डॉ. जालिंदर इंगले, 'आदिवासी अस्मिता प्रभुत्व और प्रतिरोध'-सं.अनुज लुगुन, 'समकालीन साहित्य आदिवासी विमर्श'- सं.हमीमा ओ.पी, 'मध्य भारत के आदिवासी और स्वतन्त्रता आन्दोलन'- अंजनी कुमार झा', 'विश्व की आदिवासी जनजातियाँ'- संजीव तंवर, 'आदिवासी विकास उपलब्धियाँ एवं चुनौतियाँ'- सं.एस.एन.चौधरी; मनीष मिश्रा, 'आदिवासी अस्मिता वाया कथा साहित्य'- सं.रसाल सिंह; बन्ना रामा मीणा, 'आदिवासी बस्तर का बृहद इतिहास'- हीरा लाल शुक्ल, 'सभ्यों के बीच आदिवासी'-महादेव टोप्पो।

2.7 संस्मरण

साहित्य की विभिन्न विधाओं में संस्मरण महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत का पहला आदिवासी संस्मरण ‘जंगल से आगे’ इरुला आदिवासी सीता रत्नमाला द्वारा अंग्रेज़ी में लिखा हुआ था। इसका प्रकाशन सन् 1968 में लंदन में हुआ। 50 साल के बाद यह फिर से हिन्दी में प्रकाशित हुआ है। संपादक अश्विनी कुमार पंकज है। आदिवासी जीवन केन्द्रित संस्मरण आज हिन्दी साहित्य में उपलब्ध है। महत्वपूर्ण आदिवासी संस्मरण निम्न लिखित हैं-

‘मिज़ोराम में वे कुछ दिन’- श्रीप्रकाश मिश्र, ‘दहकते बुलबुले’- सुरेन्द्र नायक, ‘मेरे लडकपन के अविस्मरणीय नायक’- भागीरथ, ‘सावधान नीचे आग है’- केदार प्रसाद मीणा, ‘आदिवासियों की गोत्रभूमि’- मिनीप्रिया.आर।

इन सभी संस्मरणों में आदिवासियों से संबन्धित विभिन्न रीति-रिवाज़ों एवं परंपराओं का विचारात्मक विश्लेषण हुआ है।

उसी प्रकार ‘लो आज गुल्लक तोडता हूँ’- राकेश कुमार सिंह, ‘अंडमानी की यात्रा १ व २’- नवजोत भनोत; बजरंग बिहारी तिवारी, ‘मेरा सिंहभूमि का भ्रमण’- विभूति भूषण महोपाध्याय, ‘कितनी दूर है अभी रोशनी’-स्वधीन, ‘अपातानियों के बीच एक शाम’- राघवेन्द्र।

इन सभी संस्मरणों में रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में आनेवाले विभिन्न समस्याओं को उजागर किया है।

‘ऐसे थे स्व भैरोलाल काला बादल’- ख्यालीराम मीणा, ‘ज़मीनी जंग के सहरिया’- डॉ.रमेश चंद्र मीणा, ‘प्रभाष जोशी एवं जनसत्ता का तीसरा पाठक’- महादेव टोप्पो, ‘उनसे मिला अपनापन’- अखिलेश शुक्ल, ‘काजू बादाम खाने वाली गाँधी जी की बकरी’- लक्ष्णगायक कवाड, ‘बस्तर में कुछ दिन’-चन्द्रकान्त देवताले।

प्रस्तुत संस्मरणों में आदिवासियों की निजी ज़िन्दगी में झांककर उनके संस्कारों से परिचित कराने का प्रयास हुआ है।

2.8 यात्रा वृत्तान्त

यात्रा वृत्तान्त साहित्य की महत्वपूर्ण विधाओं में से एक हैं। मशहूर लेखक हरिराम मीणा लिखते हैं- “यात्रा वृत्तान्त निश्चित रुप से साहित्य की एक सशक्त विधा है अतीत में इस विधा के माध्यम से इतिहास लिखे गए हैं जैसे-मेगस्थनीस, फाहयन, हवेनसांग से लेकर कर्नल हॉड तक हमारे सामने हैं।”[98] किन्तु इस विधा में आदिवासी केन्द्रित रचनाएँ बहुत कम मिलती हैं-

2.8.1 साईबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक

‘साईबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक’ हरिराम मीणा द्धारा कृत यात्रा वृत्तान्त है। इसमें हैदराबाद से लेकर नंगे आदिवासियों तक का चित्रण किया है। लेखक यात्रा के बीच हैदराबाद में कई मुस्लिम शिल्प कलाओं को देखते हैं। और इस प्रकार इस महानगर के पीछे की कहानी को खोज निकालते हैं। लेखक की यात्रा हैदराबाद से आरम्भ होकर पूर्वी घाट के विभिन्न अचल जैसे

तिरुपति, विशाखपटनम् आदि से होकर गुज़रती है। और अन्त में अण्डमान के आदिवासियों तक जा पहूँचते हैं। वहाँ बसने वाले ग्रेट अण्डमानी, जारवा, ओंग आदि आदिवासी समुदायों की जानकारी इसमें उपलब्ध है।

2.8.2 जंगल जंगल जलियांवाला

'जंगल जंगल जलियांवाला' हरिराम मीणा का एक और यात्रा वृत्तान्त है। इसमें मानगढ़, भूला-बिलेरिया एवं पालचित्तरिया इन तीनों घटनाओं का वर्णन मिलता है। ब्रिटीश कालीन इन तीनों आदिवासी संघर्षों का कालखण्ड सन् 1913 से 1922 है। इन संघर्षों में कुल मिलाकर साढे तीन हज़ार आदिवासी अंग्रेज़ी फौजों से लडते हुए शहीद हुए थे।

यात्रा साहित्य में आदिवासी केन्द्रित रचनाएँ कम ही नज़र आती हैं। लेकिन वे चर्चा के केन्द्र में रही हैं।

2.9 व्यंग्य

व्यंग्यात्मक निबन्ध साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। आजकल आदिवासियों को केन्द्र विषय बनाकर कई व्यंग्यात्मक निबन्ध रचे जा रहे हैं। उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं-

2.9.1 ईमानदारी से आखिरी मुलाकात

'ईमानदारी से आखिरी मुलाकात' आदिवासी लेखक शंकर लाल मीणा का व्यंग्यात्मक निबन्ध है। प्रस्तुत निबन्ध रमणिका गुप्ता के संपादन में आयी

किताब 'आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी' (2002) में छपकर आया है। स्वार्थ के पीछे भागती इस दुनिया में ईमान्दारी का स्थान मिटता जा रहा है। लेखक ने यहाँ ईमानदारी के माध्यम से व्यंग्यात्मक ढंग में आदिवासी जीवन के अन्दरूनियों को पकडने का प्रयास किया है।

2.9.2 गप्प करने की कला

'गप्प करने की कला' आदिवासी लेखिका डॉ.मंजु ज्योत्सना का व्यंग्यात्मक निबन्ध है। प्रस्तुत निबन्ध रमणिका गुप्ता के संपादन में आयी किताब 'आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी' में छपकर आया है। प्रस्तुत निबंध में आदिवासी जीवन को व्यंग्यात्मक ढंग से गहन पडताल करने की कोशिश की है।

2.10 पत्र-पत्रिकाएँ

आदिवासी साहित्य को अपने मंजिल तक पहुँचाने में पत्र-पत्रिकाएँ अहम भूमिका निभाती हैं। आदिवासी लेखन को सक्रिय बनानेवाले कुछ प्रमुख पत्रिकाओं से परिचित होना आवश्यक है।

2.10.1 अरावली उद्घोष

'अरावली उद्घोष' (1984) आदिवासी मुद्दों पर निकलनेवाले सबसे पुरानी पत्रिकाओं में से एक हैं। अरावली उद्घोष (उदयपुर, राजस्थान) के संस्थापक-संपादक बी.पी वर्मा पथिक रहे हैं। आज वंदना टेटे के संपादन में निकल रही है।

2.10.2 युद्धरत आम आदमी

'युद्धरत आम आदमी' आदिवासी साहित्य को केन्द्र में रखकर निकलने वाली पत्रिका है। प्रस्तुत पत्रिका हिन्दी की चर्चित लेखिका एवं कवयित्री रमणिका गुप्ता के संपादन में सन् 1986 से त्रैमासिक पत्रिका के रूप में निकलने लगी। बाद में 2013 से मासिक पत्रिका के रूप में परिणत कर दिया गया।

2.10.3 आदिवासी सत्ता

बीहड जंगलों में बसनेवाले, रोशनी में भी अन्धकार के एहसास में जीते हुए समाज की अनसुनी आवाज़ को नई पहचान देने वाली हिन्दी की मासिक पत्रिका 'आदिवासी सत्ता' का प्रकाशन 2007 में प्रारम्भ हुआ। संपादक श्री के आर शाह रहे। रायपुर, छत्तीसगढ से प्रस्तुत पत्रिका निकल रही है।

2.10.4 आदिवासी साहित्य

'आदिवासी साहित्य' दिल्ली से प्रकाशित होनेवाली पत्रिका है। इसका संपादक गंगा सहाय मीणा है। यह पत्रिका जनवरी 2015 से प्रकाशित होने लगी। संपादकीय टीम में वाहरु सोनवणे, वंदना टेटे, अनुज लुगुन आदि सक्रिय हैं।

2.10.5 झारखण्डी भाषा साहित्य, संस्कृति अखड़ा

'झारखण्डी भाषा साहित्य, संस्कृति अखड़ा' राँची से निकलनेवाली आदिवासी पत्रिका है। प्रस्तुत पत्रिका वंदना टेटे के संपादन में निकल रही है।

आदिवासी विमर्श संबन्धी रचनाओं को पत्र-पत्रिकाओं के सहारे बढावा दिया जा रहा है। पुष्पा टेटे का 'तरंग भारती', सुनील मिंज का 'देशज स्वर' आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अलावा 'मानगढ सन्देश' (बासवाडा, राजस्थान), 'आदिवासी विषय' (रांची, झारखण्ड), 'गोंडवाणा संदेश' (नागपुर, महाराष्ट्रा) आदि पत्रिकाएँ आदिवासी साहित्य और संस्कृति से जुडे मुद्दों को उजागर कर रही हैं।

मुख्यधारा की पत्रिकाएँ आदिवासी विशेषांक निकालकर आदिवासी साहित्य को ऊँचाई की ओर पहुँचा रही हैं। 'समकालीन जनमत' (2003), 'दस्तक' (2004), 'कथाक्रम' (2012), 'इस्पातिक' (2012), 'वाङ्मय' (2013), 'समवेत' (2014) आदि उनमें प्रमुख हैं।

2.11 निष्कर्ष

आदिवासी केन्द्रित रचनाएँ हिन्दी साहित्य में अभी शुरुआती दौर में हैं। उपन्यास, कहानी, कविता जैसी विधाओं में आदिवासी रचनाएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। किन्तु साहित्य की सभी विधाओं में इसका परिपूर्ण विकास नहीं हुआ है। आदिवासी और गैर-आदिवासी साहित्यकार अपने अनुभव एवं जीवनानुभव से आदिवासियों के दुःख दर्द और वास्तविकता को व्यक्त कर रहे हैं। उनके लोक जीवन से लेकर वर्तमान जीवन तक के सभी पक्षों को उजागर करने का सक्रिय कार्य कर रहे हैं। आज आदिवासी साहित्य हिन्दी साहित्य का एक प्रमुख अंग बन गया है। निश्चय ही ऐसे साहित्य का हिन्दी साहित्य में अधिक समृद्ध होना अनिवार्य है।

संदर्भ-सूची

1. सं. डॉ.एम. फीरोज़ खान - आदिवासी साहित्य दशा एवं दिशा, पृ.सं.12-13
2. डॉ. ईश्वरसिंह राठवा - हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन, पृ.सं.47
3. वही, पृ.सं.54
4. डॉ. शिवाजी देवरे - समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श, पृ.सं.180
5. वही, पृ.सं.181
6. सं. डॉ. एम. फीरोज़ खान - आदिवासी साहित्य दशा एवं दिशा, पृ.सं.62
7. डॉ. शिवाजी देवरे - समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श, पृ.सं.149
8. वही, पृ.सं.149
9. वही, पृ.सं.313
10. वही, पृ.सं.313
11. डॉ. शिवाजी देवरे - समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श, पृ.सं.133
12. वही, पृ.सं.133
13. डॉ. ईश्वरसिंह राठवा - हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन, पृ.सं.132

14. सं. डॉ. एम. फीरोज़ खान- आदिवासी साहित्य दशा एवं दिशा, पृ.सं.177
15. वही, पृ.सं.178
16. सं. डॉ.ऊषा कीर्ति राणावत - आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य, पृ.सं.79
17. डॉ. शिवाजी देवरे - समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श, पृ.सं.194
18. वही, पृ.सं.234
19. वही, पृ.सं.238
20. https://www.pustak.org.
21. सं. डॉ.ऊषा कीर्ति राणावत - आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य, पृ.सं.134
22. हमिमा. ओ.पी-समकालीन साहित्य आदिवासी विमर्श, पृ.सं.119
23. सं. डॉ.ऊषा कीर्ति राणावत - आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य, पृ.सं.94-95
24. वही, पृ.सं.91
25. वही, पृ.सं.93
26. डॉ. शिवाजी देवरे - समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श, पृ.सं.214-215
27. डॉ. ईश्वरसिंह राठवा - हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन, पृ.सं.202

28. डॉ. शिवाजी देवरे - समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श, पृ.सं.133

29. वही, पृ.सं.174

30. डॉ. ईश्वरसिंह राठवा - हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन, पृ.सं.255

31. वही, पृ.सं.255

32. डॉ. शिवाजी देवरे - समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श, पृ.सं.261

33. सं. डॉ.ऊषा कीर्ति राणावत - आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य, पृ.सं.84

34. सं. हमीमा ओ.पी - समकालीन साहित्य आदिवासी विमर्श, पृ.सं.21

35. वही, पृ.सं.21-22

36. रूपनारायण सोनकर- डंक, पृ.सं.9

37. सं. डॉ.ऊषा कीर्ति राणावत - आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य, पृ.सं.122-123

38. वही, पृ.सं.126

39. https://www.setumag.com

40. सं. डॉ.ऊषा कीर्ति राणावत - आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य, पृ.सं.221

41. सं. हमीमा ओ.पी - समकालीन साहित्य आदिवासी विमर्श, पृ.सं.31

42. सं. हमीमा ओ.पी - समकालीन साहित्य आदिवासी विमर्श, पृ.सं.31

43. सं. डॉ.ऊषा कीर्ति राणावत - आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य, पृ.सं.166

44. वही, पृ.सं.167

45. वही, पृ.सं.172

46. सं. हमीमा ओ.पी - समकालीन साहित्य आदिवासी विमर्श, पृ.सं.31

47. https://www.pustak.org.

48. https://www.hi.m.wikipedia.org

49. वही

50. https://www.sahityakunj.net

51. सं. रमणिका गुप्ता - आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, पृ.सं.153

52. वही, पृ.सं.153

53. सं. डॉ. एम. फीरोज़ खान - आदिवासी चर्चित कहानियाँ, पृ.सं.37

54. प्र. सं. प्रो. माधव हाडा- आदिवासी समाज, संस्कृति और साहित्य (समकालीन आदिवासी विमर्श सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी के आलेख), पृ.सं.86

55. वही, पृ.सं.86

56. वही, पृ.सं.86

57. वही, पृ.सं.86

58. प्र. सं. प्रो. माधव हाडा- आदिवासी समाज, संस्कृति और साहित्य (समकालीन आदिवासी विमर्श सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी के आलेख), पृ.सं.86

59. वही, पृ.सं.86

60. वही, पृ.सं.85

61. वही, पृ.सं.85

62. डॉ. विनय कुमार पाठक- अम्बेडकरवादी सौन्दर्य-शास्त्र और दलित आदिवासी-जनजातीय-विमर्श, पृ.सं.617

63. वही, पृ.सं.619

64. वही, पृ.सं.622

65. वही, पृ.सं.621

66. वही, पृ.सं.703

67. कुमार अम्बुज- अतिक्रमण, पृ.सं.106

68. लीलाधर मंडलोई- काल बाँका तिरछा, पृ.सं.9

69. चन्द्रकान्त देवताले- लकडबग्घा हँस रहा है, पृ.सं.67

70. राजेश जोशी- धूप घड़ी, पृ.सं.38

71. अरुण कमल- अपनी केवल धार, पृ.सं.25

72. ज्ञानेन्द्रपति- संशयात्मा, पृ.सं.20

73. निर्मला पुतुल- नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.32

74. सं. डॉ.ऊषा कीर्ति राणावत - आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य, पृ.सं.259

75. हरिराम मीणा- सुबह के इन्तज़ार में, पृ.सं.10

76. निर्मला पुतुल- बेघर सपने, पृ.सं.40

77. भगवान गव्हाडे- आदिवासी मोर्चा, पृ.सं.11

78. सं. वंदना टेटे- कवि मन जनी मन, पृ.सं.246

79. अनुज लुगुन- बाघ और सुगना मुण्डा की बेटी, पृ.सं.43

80. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.65

81. महादेव टोप्पो- जंगल पहाड के पाठ, पृ.सं.89

82. शिरोमणी महतो- चाँद से पानी, पृ.सं.11

83. डॉ. खन्ना प्रसाद अमीन- आदिवासी की मौत, पृ.सं.3

84. वही, पृ.सं.82

85. हरिराम मीणा- आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएँ, पृ.सं.42

86. ग्रेस कुजूर- एक और जनी शिकार, पृ.सं.106

87. आलोका कुजूर- नये हस्ताक्षर, पृ.सं.16

88. जसिन्ता केरकेट्टा- अंगोर, पृ.सं.148

89. वही, पृ.सं.149

90. सं. मदन कश्यप- प्रतिनिधि कविताएँ रमणिका गुप्ता, पृ.सं.19

91. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.261

92. सं. डॉ.ऊषा कीर्ति राणावत- आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य, पृ.सं.202-203

93. वही, पृ.सं.204

94. वही, पृ.सं.205

95. वही, पृ.सं.205

96. सं. हमीमा ओ.पी- समकालीन साहित्य में आदिवासी विमर्श, पृ.सं.62

97. वही, पृ.सं.62

98. सं. डॉ.ऊषा कीर्ति राणावत- आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य, पृ.सं.231

तीसरा अध्याय

समकालीन हिन्दी कविता में आदिवासी विमर्श

3.1 विषय प्रवेश

दुनिया भर में ज्वलंत समस्याओं का संकट मंडरा रहा है। वैश्वीकरण से उत्पन्न उपभोक्तावादी संस्कृति ने समाज के गरीब, पिछडे एवं आम जनता पर काफी चोट पहुँचायी है। साहित्यकार समाज के इन पीडित एवं शोषित जनता के प्रति आवाज़ उठा रहे हैं और उनके मूलभूत अधिकारों के प्रति जागरूक हैं। इस प्रकार इक्कीसवीं सदी के हिन्दी साहित्य का परिप्रेक्ष्य बहु-आयामी बन गया है। साहित्य में उन विषयों को लेकर चर्चा चल रही है जिनका ज़िक्र किसी ने अभी तक न किया हो। आज स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, किन्नर विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि साहित्य की मुख्य चर्चा के विषय हैं। इस दृष्टि से समकालीन हिन्दी कविता की भूमि काफी विस्तृत हो चुकी है।

इन दिनों समकालीन हिन्दी कविता में आदिवासी की बहस ज़ोरों पर है। सम्पूर्ण मानव जाति का एक बहुत बडा हिस्सा उन लोगों का है जो प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता को कायम रखते हुए जंगलों में वास करते हैं। वह है आदिवासी समाज। इस समुदाय का शोषण बरसों पहले शुरु हुआ है और आज भी वे अनेकानेक जुल्म सह रहे हैं। आज़ादी के धोखे और सभ्य समाज का धक्के ने आदिवासियों को मर-मरकर जीने को विवश कर दिया है। आज अस्मिता एवं अस्तित्व की तलाश साहित्य के ज़रिए हो रही है ताकि आदिवासी अपने जीवन यथार्थ को समझकर बुराई के विरुद्ध लडें और जीवन में स्वतंत्र निर्णय ले सकें।

भारतीय साहित्यकार आदिवासी जीवन के दबे कुचले यथार्थ को प्रखर रूप से उभार रहे हैं। सुशीला सामद, राम दयाल मुण्डा, हरिराम मीणा, निर्मला पुतुल, अनुज लुगुन, वन्दना टेटे, ग्रेस कुजूर, मुन्ना साह, विनोद कुमार शुक्ल, रमणिका गुप्ता जैसे आदिवासी एवं गैर आदिवासी साहित्यकार आदिवासी जीवन की ज्वलंत समस्याओं को साहित्य की महत्वपूर्ण एवं सशक्त विधा कविता के माध्यम से समाज के सामने लाये हैं। वास्तव में निर्मला पुतुल का हिन्दी साहित्य में प्रवेश आदिवासी साहित्य केलिए एक धमाका है। विस्थापन, बेदखल, भूमि अधिग्रहण, निर्जनीकरण, पुनर्वास, बेरोज़गारी, संस्कारों पर अतिक्रमण जैसे अनगिनत समस्याएँ आदिवासियों केलिए वैश्वीकरण की देन हैं। ऐसे माहौल में आदिवासी जीवन दूभर हो गया है और लेखक साहित्य रुपी हथियार से अपने जीवन का सीधा खुलासा कर रहे हैं।

आदिवासी जीवन अजूबा एवं जिज्ञासा से भरा हुआ है। विचित्र वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान आदि से जंगली होने का किरदार निभा रहे इन आदिम वंशजों का यथार्थ अंकन विस्तार एवं व्यापक परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए। सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संघर्षों के साथ जोडकर वैश्विक विचारों एवं परिवर्तनों की प्रक्रिया से भी जोडकर देखने की आवश्यकता है। आगे समकालीन हिन्दी कविता के माध्यम से आदिवासी समुदाय की ज्वलंत समस्याओं को विभिन्न पहलुओं को देखने का प्रयास है।

3.2 भूख

भूख एक महत्वपूर्ण समस्या है। आदिवासी समस्याओं में सबसे भयानक। देश की आर्थिक नीतियों के सामने सम्पन्नता जितनी बडी चुनौती है, भूख उससे कई गुना बडी चुनौती है। भूख हमारे शरीर की एक ऐसी ज़रूरत है जिसकी पूर्ति तुरन्त करने की आवश्यकता होती है। भूख मिटाने केलिए आदिमकालीन मानव को प्रकृति में उपलब्ध सामग्रियों के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं था। लेकिन कृषि की खोज के बाद उनके खाद्य पदार्थों में धीरे-धीरे बदलाव आने लगा। लेकिन वर्तमान सामाजिक दौर में आये बदलाव के कारण जल-जंगल-ज़मीन के नायक एवं प्रकृति के आश्रयदाता आदिवासी आज भूख के कगार पर खडे हैं।

भूख शब्द का सीधा सम्बन्ध गरीबी से है। गरीबी के कारण आज आदिवासी समाज में भूखमरी की स्थिति पैदा हो चुकी है। कहने को हमारे देश में खाद्यान्नों का भरपूर पैदावर हो रही है। किन्तु समुचित वितरण का अभाव और बढती महंगाई के कारण कुछ आदिवासी भूखे मर रहे हैं। भूख और भूखमरी की स्थिति को दूर करने हेतु सरकार प्रयास कर रही है। किन्तु विकास नीति से एक वर्ग चमकता है तो अधिकांश लोगों को अभावों में जीना पड़ता है। आदिवासी अभावों से भी बदत्तर ज़िन्दगी जीने को मजबूर है। अपने उदर निर्वाह केलिए छोटे-बडे काम करने केलिए जनजातियाँ मजबूर हो जाती हैं। खेतीबाडी में काम करना, पर्वत पहाडों पर वनस्पतियाँ एवं औषधियाँ खोज निकालना आदि उनकी दैनंदिनी है। पर आज प्राकृतिक संपदाओं से संपन्न

आदिवासी इलाके सूख रहे हैं। जल प्रदूषित एवं विलुप्त हो रहा है। ऐसे में भूख उनकी अभिन्न समस्या बन गई है।

रमणिका गुप्ता, विनोदकुमार शुक्ल, निर्मला पुतुल, हरिराम मीणा, ग्रेस कुजूर, सरिता सिंह बडाईक जैसे अनेक साहित्यकारों ने आदिवासियों की भूख की समस्या के अनेक कारणों एवं उससे उत्पन्न उनके जीवन की विभिन्न घटनाओं को अपनी कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। सरिता सिंह बडाईक की महत्वपूर्ण कविता है 'फगनी'। कवयित्री के शब्दों में -

> "चावल को सिझा कर
> बनाती है शराब
> अपनों की भूख मिटाने
> परायों की प्यास बुझाने।"[1]

जल-जंगल-ज़मीन से बेदखल होकर आदिवासी लोग आज अपनी आजीविका खो चुका है। शराब बेचना आदिवासियों केलिए आज मजबूरी बन गई है। कवयित्री ने यहाँ पर अभाव एवं गरीबी में जीते आदिवासियों के भोलेपन और सादगी को व्यक्त किया है। एक वक्त की रोटी केलिए उनकी चुप्पी उनकी विवशता बन गई है। आदिवासी समुदाय के बीच भूख एक ऐसी परिस्थिति बन गई है कि पुरुष अपराध कर्म करने और स्त्रियाँ देह व्यापार केलिए विवश हो गई हैं। हरिराम मीणा अपनी 'नन्ही कविताएँ (99)' नामक शीर्षक की एक कविता में बताते हैं -

"दुनिया का भला आदमी
रोटी के लिए लडता-लडता
बन गया सबसे बुरा।"[2]

भारत देश स्टार्ट अप इंडिया, डिजिटल इंडिया एवं स्किल इंडिया बनाने के चक्कर में आदिवासियों को उनके पैतृक क्षेत्रों से बेदखल कर रहा है। बाज़ार और विकास के गठजोड में उनके जंगलों को उजाडकर, पहाडों को तोडकर ज़मीनों को समतल बना रहे हैं और करोडों दाम में बेचकर उनकी ज़मीनों को महंगी ज़मीन बना रहे हैं। इसी बीच बेचारा आदिवासी बिखरते और गायब होते जा रहे हैं। अपनी ज़मीनों से बिखरता आदिवासी महानगरों की ओर पलायन कर रहे हैं। यहाँ वे सभ्य समाज के सौदेबाजी और धोखाधडी में फंस जाते हैं। शहरों में आकर उच्चवर्गों के यहाँ वेश्यागिरी करना, बडे-बडे फाक्टरियाँ, कालनियाँ एवं अपार्टमेंटों के निर्माण में मज़दूरी करना, अखबार बेचना, जूते पॉलिश करना आदि उनकी मजबूरी बन गई है। लेकिन दिन भर कमर तोड काम करने से भी उन्हें भर पेट अन्न नसीब नहीं है। बाज़ारीकृत समाज के क्रूरतम खेल का शिकार बनते आदिवासी जीवन में भूख का भयानक रूप लेना ठीक नहीं है।

भूख मनुष्य की प्राथमिक ज़रूरत है। लेकिन आदिवासियों के जीवन में भूख एक विकट समस्या बन गई है। इस विकट समस्या को लेकर हरिराम मीणा, सरिता सिंह बडाईक जैसे साहित्यकार काफी चिन्तित हैं। समकालीन अन्य रचनाकार जैसे रमणिका गुप्ता, विनोदकुमार शुक्ल, निर्मला पुतुल, ग्रेस कुजूर

आदि की कविताओं में आदिवासियों की अनेक समस्याओं को जोडने के साथ उनकी भूख की समस्या का विकृत रुप भी पाया जाता है। फिर भी हरिराम मीणा और सरिता सिंह बडाईक की कविताओं में आदिवासियों की भूख को राक्षस बनने से रोकने का संकेत ज़्यादा उभर आया है। सरकार को मनुष्यता के समग्र पहलुओं को ध्यान में रखकर अर्थ तंत्र की प्राथमिकताओं को बदलना होगा। भूख को राक्षस बनने से रोकना समाज और अर्थ व्यवस्था केलिए अनिवार्य है।

3.3 गरीबी

गरीबी से तात्पर्य किसी भी व्यक्ति या इनसान की अत्यधिक निर्धन अवस्था से है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति को रोटी, कपडा, मकान जैसे जीवन को जारी रखने की महत्वपूर्ण चीज़ों की कमी महसूस होने लगती है। आजकल दवाइयाँ भी मानवीय जीवन की मूलभूत आवश्यक वस्तु बन गयी है। अतः गरीबी संपूर्ण देश के जन जीवन की एक प्रमुख समस्या है। ऐसी विकट समस्या को दूर करने केलिए विश्व भर में कई प्रयास किए जा रहे हैं। फिर भी यह भयावह समस्या खत्म होते नज़र नहीं आ रहा है।

गरीबी मानवीय जीवन के आर्थिक तथा सामाजिक दोनों ही रूप से प्रभावित करनेवाली एक समस्या है। लेकिन जिस गरीबी से हम परिचित हैं उससे कहीं अधिक निम्नकोटि का जीवन स्तर असंख्य आदिवासियों का सामान्य जीवन है। अतः गरीबी जनजातीय जीवन की प्रमुख समस्याओं में से एक है। मनुष्य की मूलभूत आवश्यक वस्तुएँ रोटी, कपडा और मकान हैं। लेकिन

आदिवासी अपने जीवन की इन मूलभूत आवश्यकताओं से सदियों से वंचित रहे हैं।

आदिवासी जीवन दरिद्रता से संत्रस्त है। वर्तमान भारत में स्वाधीनता के बाद विरासत में मिली एक समस्या गरीबी है। गरीबी भारतीय अर्थ व्यवस्था के लिए एक गंभीर और चुनौती पूर्ण समस्या है। वैश्वीकरण की चकाचौंध में देश का एक वर्ग अगर चमकता है तो अधिकांश लोगों केलिए रोज़ी रोटी सपना है। भूमण्डलीकरण के बाद अमीर और अमीर बनते गये और गरीब दाने केलिए तरसता है।

आजकल गरीब आदिवासियों की भावनाओं के साथ खेलना आम बात हो गई है। सभ्य लोगों ने गरीबी में जीता आदिवासी को खिलौना समझ बैठा है। आदिवासियों की गरीबी का फायदा उठाकर पूँजीपति लोग उनके रहन-सहन, वेश-भूषा और रीति-रिवाज़ को नुमाइश की तरह पेश करते हैं। आदिवासियों को कुछ रुपये के दैनिक भत्ते पर उनकी पारम्परिक वेश-भूषा पहनाकर विदेशी पर्यटकों के सामने प्रदर्शित करते हैं। इसमें मासूम बच्चे और वृद्ध महिलाओं को शामिल किया जाता है। ऐसा घिनौना खेल घटित करने में हमारी शासन व्यवस्था साथ देती हैं। वर्तमान में सब कुछ बाज़ार केन्द्रित है। आदिवासियों की गरीबी को भी बाज़ार केन्द्रित बना दिया है।

अमीरों की नज़र में गरीब आदमी हमेशा गंदा आदमी होते हैं। अमीर लोग कभी-भी गरीबों को अपनाने की कोशिश नहीं करते। उनसे सहानुभूति नहीं दिखाते। हमेशा हेय भावना रखते हैं। इसलिए निर्धनता एक ऐसी

परिस्थिति है कि जिसका कोई भी अनुभव नहीं करना चाहेगा। गरीबी वास्तव में जीवन की बेडियाँ हैं। अपनी इच्छानुसार कुछ नहीं कर सकते। गरीबी के कई चेहरे होते हैं, जो व्यक्ति, स्थान और समय के अनुसार बदलते रहते हैं। आदिवासी समाज में व्याप्त गरीबी के बदलते चेहरों को समकालीन आदिवासी युवा साहित्यकारों ने बडे ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। ग्रेस कुजूर, शिरोमणि महतो जैसे रचनाकारों की कविताएँ उनमें प्रमुख हैं।

ग्रेस कुजूर की कविता 'नाल' आदिवासी जीवन की गरीबी के यथार्थ को उकेरनेवाली है। प्रस्तुत कविता के ज़रिए कवयित्री ने गरीबों में भी सबसे निचले होने का आदिवासी जीवन की त्रासदी को दर्शाया है। कवयित्री बताती हैं -

"गरीबी रेखा के नीचे का हूँ
ग्रास रूट का हूँ
या कि अन्तिम आदमी हूँ।"[3]

आदिवासियों की खासियत यह है कि वे किसी पर भी विश्वास आसानी से रख लेते हैं और उस पर पूरा भरोसा करते हैं। छल-कपट करना वे नहीं जानते। इसी कारण वे बाह्य शक्तियों के छल-कपट में आसानी से फंस जाते हैं। ग्रेस कुजूर के समान युवा कवि 'शिरोमणि महतो' की कविता 'दरिद्र' में जीवन निर्वाह के साधनों से वंचित आदिवासियों की गरीबी का नग्नरुप देखने को मिलता है -

"भला मैं तुम्हें क्या दे सकता

मैं दरिद्र कुछ भी तो नहीं मेरे पास
हाथ बिल्कुल खाली कुछ दोषयुक्त रेखाएँ
जो भविष्य की भी आस बंधाता।"[4]

यहाँ पर गरीबी एवं अभावग्रस्त जीवन बितानेवाला आदिवासी की ज़िन्दगी के कटु यथार्थ का जीवन्त चित्रण हुआ है। ग्रेस कुजूर की कविता 'नाल' में पूरे समाज में दरिद्रता को झेलते आदिवासी की सही तस्वीर उपलब्ध हुई है तो शिरोमणि महतो की कविता 'दरिद्र' में परिवार में दरिद्रता और दरिन्दगी को सहते आदिवासी जीवन को उकेरा है। यहाँ पर दोनों रचनाकारों ने एक ही विषय को अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत किया है। किन्तु उनका मूल उद्देश्य एक है और समकालीन अन्य रचनाकारों की अपेक्षा ग्रेस कुजूर और शिरोमणि महतो की कविताओं में आदिवासियों में छायी गरीबी की तीव्रता का स्वर उपलब्ध होता है।

आदिवासी जीवन सदियों से गरीबी में डूबा है। किन्तु वर्तमान में औद्योगिक विकास, वैश्वीकरण, मीडिया एवं सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार एवं विस्फोट से उनमें गरीबी का अतिसंकट रुप घेरा हुआ है। गरीबी एक ऐसी परिस्थिति है जो मात्र आदिवासी जीवन को ही नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवीय जीवन में दुःख दर्द तथा निराशा जैसी विभिन्न समस्याओं को जन्म देती है। पूरे जीवन को प्रभावित करनेवाली इस परिस्थिति का निवारण अत्यंत ज़रुरी है। गरीबी को मिटाने से ही सामाजिक समानता संभव हो सकती है।

3.4 गुलामी

देश का एक हिस्सा आज भी गुलामी के बन्धनों से मुक्त नहीं हुआ है। वह है भारत का आदिवासी समुदाय जो सभ्य समाज द्वारा आज़ादी के पचहत्तर साल बाद भी गुलामी की बेडियों में बन्द है। हमारा देश अंग्रेज़ों की राजनीतिक दासता से तो मुक्त हो गया, पर जीवन शैली, भाषा, रहन-सहन आदि की दृष्टि से आज भी उनका गुलाम है। इसी कारण सभ्य समाज की साजिशों में आदिवासी समुदाय और सिकुडता गया। सदियों से आदिवासी स्थानीय राजाओं, ज़मीन्दारों, अंग्रेज़ों तो कभी राजनीतिक कुचक्रों के शिकार में फंसते गये। भूपतियों तथा सम्पन्न लोगों का विरोध करना आदिवासियों की बस की बात नहीं है। उनके अनुकूल न चलने पर शारीरिक तथा मानसिक रूप में सताया भी गया। आज भी उनके प्रति यह शोषण जारी है।

जल-जंगल-ज़मीन के हकदार पहले से ही अपने मूलभूत अधिकारों से वंचित थे। आज उनसे उनके जल, जंगल, ज़मीनों को छीनकर उन्हें बेदखल कर दिया जाता। अपनी ज़मीनों से बेदखल होना, महानगरों में भटकना, पूँजीपतियों का शिकार बनना आखिर उनकी गुलामी का नवीन नतीजा है। वैश्वीकरण, उदारीकरण एवं निजीकरण की घिनौनी हरकतों के बीच पिसता आदिवासी आज गुलामी के चक्रव्यूह में फँसता जा रहा है। उनकी सभ्यता एवं संस्कारों को कुचलकर महानगरीय सभ्यता नवीन राहें खोज रही है। पहाड, पर्वत एवं गुफाओं को तोड-फोडकर महानगरों की ओर बननेवाले महामार्गों के बीच आदिवासी बिखरते और गायब होते जा रहे हैं। अमानवीय व्यवहारों की

क्रूर राहों से गुज़रकर आदिवासी आज बेरोज़गारों और भिखमंगों की ज़िन्दगी बिता रहे हैं। परिस्थितियाँ बदले, प्रश्न बदले, किन्तु उनकी गुलामी की बेडियाँ कमज़ोर होने के बजाय और सख्त होती गयीं। वक्त कभी-भी करवट लेता है। लेकिन वक्त का करवट बदलना आदिवासियों को सबसे ज़्यादा चोट पहुँचाया है। पीढी-दर-पीढी गुलामी की जंजीरों में लिपटे जाने के कारण आज उनमें होश जागा है। आज वे अपनी सदियों की गुलामी से छुटकारा पाना चाहते हैं। अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व की खातिर आदिवासी साहित्यकार साहित्य को हथियार बनाकर गुलामी के विरुद्ध लड रहे हैं। भगवान गव्हाडे, राम दयाल मुण्डा जैसे समकालीन साहित्यकारों की कविताओं में गुलामी की जंजीरों को तोडने की आवाज़ बुलन्द है। रामदयाल मुण्डा की कविता 'गुलामी' में बियाबान जंगलों में जीवनयापन करते आदिवासियों की सदियों की गुलामी का जीवन्त चित्र है। प्रस्तुत कविता में कवि इस प्रकार संकेत देते हैं -

> "गुलामी
> चोलियाँ बदलती हैं
> उसका अन्त नहीं होता
> विदेशी को भगाया हमने
> खुद के गुलाम बन बैठे"[5]

आदिवासियों की गुलामी का मूल कारण उपनिवेशों की घुसपैठ से शुरु हुआ था। बाद में वे और गुलाम बनते गये। अशिक्षा के तालाओं में बन्द करके सभ्य समाज ने आज तक उन्हें आज़ादी का मतलब तक जानने नहीं

दिया। सुविधाओं से दूर रहकर अनपढ गंवार एवं लाचार बनाकर आदिवासियों की ज़िन्दगी की सदियाँ बीत गईं। ज़िन्दगी के आदिकाल से वर्तमान दौर तक के जीवन की अनेक विसंगतियों से उलझते आदिवासियों के दिल और दिमाग की गजब ताकत को अनदेखा नहीं किया जा सकता। भगवान गाव्हाडे की कविता 'लक्ष्मण रेखा' में आधुनिक सभ्य मानव द्वारा आदिवासियों पर पडनेवाले अत्याचारों एवं गुलामी का मार्मिक वर्णन है-

"कहा गया है हमें।
पैर उतने ही पसारो
जितना तुम्हारा बिछौना।"[6]

आदिवासी समाज निर्धन है। उनके सामने जीवनयापन की गंभीर समस्या होती है। लेकिन अपने पेट की खातिर और जान की खातिर सभ्य समाज के विरुद्ध वे निश्शब्द है। विकास रुपी महाविस्फोट में आदिवासियों का सब कुछ नष्ट हो गया है। सभ्य समाज उनके साथ खिलवाड कर रहा है। उन्हीं की ज़मीनों को छीनकर उन्हीं की ज़मीनों में खडे होकर उनका शोषण कर रहे हैं।

यहाँ पर रामदयाल मुण्डा और भगवान गव्हाडे ने मिलकर सदियों से चले आ रहे आदिवासी शोषण एवं उनकी गुलामी का मूल कारण बताया है। दोनों कवियों में विषय की विविधता पायी जाती है। किन्तु उद्देश्य एक है। रामदयाल मुण्डा और भगवान गव्हाडे के अलावा, लक्ष्मण सिंह कावडे, हज़ारी लाल मीणा राही, जसिन्ता केरकेट्टा जैसे अनेक युवा आदिवासी साहित्यकारों

की कविताओं में आदिवासियों की गुलामी के कारण मिलते हैं। लेकिन रामदयाल मुण्डा और भगवान गव्हाडे की कविताओं में आदिवासी जीवन में छायी सदियों की गुलामी की बेडियों की आहट ज़्यादा सुनाई देती है।

3.5 हाशियेकरण

भारत आज़ाद होकर पचहत्तर साल हो गये। पिछले वर्षों में भारत तकनीकी, विज्ञान, औद्योगिकी आदि कई क्षेत्रों में सफलता प्राप्त कर चुका है। विकास की दिशा में अग्रसर होते हमारे देश में एक ऐसा समाज है जो अभी तक विकास की धारा में पूरी तरह जुड नहीं पाया है। वह है आदिवासी, जिनका जीवन अधिक पिछडा एवं दयनीय है। देश के अनेक हिस्सों में रहनेवाले आदिवासियों के पास उपर्युक्त विकास का एक प्रतिशत हिस्सा भी पहुँच नहीं पाया है। विकास की ऊँचाई से कोसों दूर उनका जीवन पूर्णतः जल-जंगल-ज़मीन पर बीतता है। आज भी वे मूलभूत सुविधाओं से दूर हैं। अधिकारों से वंचित हैं। भूख, गरीबी बेरोज़गारी आदि कई कारणों से पिछडे हैं। सभ्य समाज ने इन्हें हाशियेकृत कहा है। लेकिन सभ्य समाज ने ही इन्हे हाशियेकृत बनाया है। हमारे देश में विशेषकर शहरी और महानगरीय क्षेत्रों में निवास करनेवाले गैर आदिवासी लोगों में आदिवासी तथा उनके समाज को लेकर अनेक गलत और भ्रामक धारणाएँ हैं। पौराणिक भारतीय साहित्य में आदिवासियों का ज़िक्र बंदर, भालु, असुर, राक्षस आदि के रूप में मिलता है। सभी विकृतियों, दुर्गुणों से युक्त बदसूरती के प्रतीक। इस प्रकार शहरी सभ्य लोगों की निगाह में

आदिवासी असभ्य, बर्बर, जंगली एवं ऋषि मुनियों को हैरान-परेशान करनेवाले विकृत राक्षसों की तस्वीर बन गये।

समकालीन आदिवासी युवा रचनाकार अपने समाज के हाशियेकरण एवं पिछडेपन को लेकर काफी चिन्तित हैं। सहदेव सोरी युवा साहित्यकारों में प्रमुख हैं। उनकी बहुचर्चित कविता है 'वह आदमी'। प्रस्तुत कविता में कवि कहते हैं -

> "अशिक्षा
> भूख
> बेकारी की दलदल में
> बने हुए किंवदन्ती-सा
> आधुनिकता के दौर में भी
> पिछडता गया।"[7]

आदिवासी बियाबान जंगलों एवं पहाडों की तराइयों में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। वास्तव में वे ऐसे जीवन जीने को मजबूर हैं। आखिर युग-युगान्तरों तक हाशिए में धकेल दिए जाने पर इनसान अपनी अस्मिता, अस्तित्व और स्वाभिमान के बारे में सोचने लगेगा। कवि ने 'वह आदमी' कविता के माध्यम से हाशिए पर संघर्षरत-उत्पीडित समाज की संवेदना को व्यक्त करने का प्रयास किया है।

भारत के सामाजिक संदर्भ में यह शतप्रतिशत सही है कि आदिवासियों का जीवन उपेक्षित है और हाशिये पर भी। सभ्य समाज की करतूतों से आदिवासी समाज सबसे अधिक शोषित, पीडित एवं वंचित है। सभ्य समाज के लोग आदिवासियों को उस नज़रिये से देखा करते हैं मानो आदिवासी समाज और संस्कृति में सब कुछ व्यर्थ तथा हेय है। गैर आदिवासी उन्हें हिकारत भरी या नफरत भरी नज़र से देखते हैं। उनके मन में आदिवासी आलसी, मूर्ख, गंवार, जंगली, असभ्य आदि के प्रतिरूप हैं। आदिवासी साहित्यकार ग्लैडसन डुंगडुंग अपनी कविता 'इतना मजबूर क्यों हो मंगरा?' में इसी सच्चाई से साक्षात्कार कराते हैं। कवि आदिवासियों से सवाल करते हैं-

"तुम्हें बुलाकर तुम्हारे ही मंच से
गाली दे रहे हैं तुम्हें वे
वनवासी, जंगली और असुर कह कर
बेइज़्ज़त कर रहे हैं तुम्हें वे
और तुम उफ तक नहीं करते।"[8]

आदिवासी समुदाय सदियों से निर्जन क्षेत्रों में निवास कर रहे हैं। लेकिन हम यह निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते हैं कि आदिवासी अन्य समुदायों के साथ सहयोगिता एवं सहचयता का जीवन व्यतीत नहीं कर सकते। उनमें अपने जीवन स्तर को उन्नत करने की अभिलाषा का नितांत अभाव है। इस अभाव को दूर करना ज़रूरी है।

यहाँ पर सहदेव सोरी और ग्लैडसन डुंगडुंग ने आदिवासी समस्या हाशियेकरण को लेकर काफी बेचैन नज़र आते हैं और आक्रोश हो उठते हैं। दोनों कवियों के प्रस्तुतीकरण में असमानता है, किन्तु उद्देश्य एक है। समकालीन अन्य आदिवासी केन्द्रित रचनाकार जैसे वन्दना टेटे, फ्रांसिस्का कुजूर आदि की कविताओं में आदिवासी समस्याओं को अभिव्यक्त करने के साथ-साथ हाशियेकरण पर भी विचार-विमर्श किया है। किन्तु सहदेव सोरी और ग्लैडसन डुंग़डुंग की कविताएँ ज़्यादा प्रेरणादायक हैं। वे दोनों आदिवासी समाज को हाशियेकरण से बाहर निकालने को कटिबद्ध हुए हैं।

3.6 अन्धविश्वास

अन्धविश्वास का बोलबाला आदिवासियों के बीच थोडा ज़्यादा ही नज़र आता है। लेकिन इसका आशय यह बिलकुल भी नहीं है कि गैर-आदिवासी समुदायों की अदृश्य शक्तियों में अनास्था है। गैर-आदिवासियों के मुकाबले में आदिवासी समुदाय के सदस्य अधिक विश्वासी होते हैं। भूत-प्रेत अथवा पूर्वजों के चंगुल से वे अभी भी बाहर नहीं निकल पाए हैं।

आज के युवा आदिवासी पीढी आदिवासी समाज में व्याप्त अन्धविश्वासों के प्रति कलम को हथियार बनाकर लड रहे हैं। ज्योति लकडा, आलोका कुजूर जैसी कई आदिवासी साहित्यकार अपनी कविताओं में अन्धविश्वास के प्रति आवाज़ें उठा रही हैं। आदिवासी स्त्री अन्धविश्वासों के कारण ज़्यादा पीडित हैं। इसलिए वे अपने अधिकार मांगने की लडाई लड रहे हैं। आदिवासी युवा कवयित्रियों में ज्योति लकडा काफी चर्चित हैं। उनकी 'टोहनी' कविता में

अन्धविश्वासों के चलते पीडित होती आदिवासी स्त्री की दारुण स्थिति को व्यक्त किया है -

> "खिलाया जाता है उसे
> कच्चा कलेजा
> मुंडवा कर केश
> घुमायी जाती है वह पूरे गाँव में।"[9]

आदिवासी समाज में स्त्री को मनुष्य खा जानेवाली डायन कहकर दबाया जाता है। आश्चर्य की बात यह है कि आज के 21 वीं सदी के समय में भी भारतीय आदिवासी समाज में 'डायन प्रथा' जारी है। ग्रेस कुजूर की कविता 'गाँव निकाला' में भी इसी यथार्थ का चित्रण हुआ है।

डायन प्रथा एक विकट समस्या है। इस अन्धविश्वास के कारण आदिवासी स्त्री ज़्यादा पीड़ित होती है। डायन से तात्पर्य यह है कि कोई महिला तन्त्र विद्या सीखकर शक्ति अर्जित करती है। ऐसी शक्ति से किसी को भी कष्ट दे सकती है और मार भी सकती है। अगर आदिवासी गाँव में हैजा, चेचक जैसे बीमारियाँ फैलती हैं तो इसके पीछे किसी डायन का हाथ है, ऐसा मानकर लोग उसे प्रताडित करते हैं और उसकी हत्या भी करते हैं। ऐसे अन्धविश्वासों के चलते आदिवासी स्त्री कभी शोषण से मुक्त नहीं हो सकती। वर्तमान वैज्ञानिक युग में भी आदिवासी समाज अपनी प्राकृत एवं परम्परागत अवस्था में जीवनयापन करते हैं। बीमारियों का इलाज प्राकृतिक औषधियों से करते हैं। जंगलों में तांत्रिक, ओझा आदि आसानी से मिल जाते हैं। लेकिन अस्पताल जाना और खोजना

उनके लिए मुश्किल कार्य है। अगर अस्पताल गये तो उन्हें आदिवासी एवं गरीब कहकर ढकेल दिया जाता है। सभ्य समाज की करतूतों से आदिवासी समाज अन्धविश्वास के जकड में ज़्यादा फँसता जा रहा है।

आदिवासी समुदाय अपनी समस्याओं को देवी-देवताओं के माध्यम से सुलझाना चाहते हैं। वह शुभ एवं अशुभ कार्यों के पहले देवी देवताओं एवं पूजनीय लोगों का स्मरण करते हैं। आलोका कुजूर की कविता मारंग बुरु इसके लिए उदाहरण है-

> ''पपडी पड गए खेतों में
> पानी दोगे ना मारंग बुरु।''[10]

आदिवासी अपने समस्याओं के समाधान के रूप में अन्धविश्वास में आस्था रखते हैं। आदिवासी ज़्यादातर अशिक्षित हैं। इसलिए उनमें अन्धविश्वास का जकडन अधिक है। अदृश्य ताकतों में उनकी आस्था और श्रद्धा इतना है कि कभी-कभार पूजा आराधना में बलि (पशु, मनुष्य) भी चढाते हैं। आदिवासी समुदाय में ऐसी मान्यता प्रचलित है कि जिनके पास अधिक धन और धान है, वे आदमी की बलि देते हैं। बलि करनेवाला आदमी 'ओटंगा' माना जाता था।

अन्धविश्वास के अनेक कारण हैं। व्यक्ति अपने जीवन में किसी-न-किसी समस्या को लेकर घिरा हुआ रहता है। ऐसे में जब भी परेशान लोगों को कोई उपाय का लालच देता है तो लोग ऐसे लोगों के चक्कर में आसानी से आ जाते हैं। अशिक्षा, अज्ञान, पिछडापन आदि कई कारणों से आदिवासी जीवन में

विकास नहीं हो पा रहा है। साथ में अन्धविश्वासों की पैठ गहरी होती जा रही है। यहाँ पर दोनों कवयित्रियों ने आदिवासी समुदाय में व्याप्त अन्धविश्वासों के अलग-अलग चेहरों को हमारे सम्मुख रखने का प्रयास किया है। वे अन्धविश्वास से उत्पन्न विकृतियों से आदिवासियों को बचाने की कोशिश करती हैं। आदिवासियों की आस्था एवं विश्वास उनकी परंम्परा एवं संस्कृति से जुडी हैं। लेकिन उनमें अन्धविश्वास ज़्यादा पनप रही है। जब तक शोषण और शिकार के कारण बननेवाले अन्धविश्वासों को दूर या निष्कासन नहीं किया जाएगा तब तक आदिवासी समाज विकास के पथ की ओर अग्रसर नहीं होगा। अपने को प्रोग्रसीव कहनेवाले सभ्य समाज भी अन्धविश्वास के अधीन है। इसलिए अन्धविश्वास से मुक्ति पाने केलिए केवल आदिवासी को नहीं बल्कि देश के सभी नागरिकों को आगे आना चाहिए।

3.7 बेरोज़गारी

बेरोज़गारी आदिवासियों की ही नहीं, बल्कि संपूर्ण भारत देश की बढती हुई समस्याओं में से एक है। जिस प्रकार भारत की जनसंख्या में तेज़ी से वृद्धि हो रही है उसी प्रकार बेरोज़गारी की समस्या भी निरंतर बढती जा रही है। अब आदिवासियों के बीच बेरोज़गारी एक गंभीर समस्या बन गई है और आदिवासियों में बेरोज़गारी का प्रमुख कारण सभ्य समाज का हस्तक्षेप है। उनका गुज़र बसर कृषि एवं स्थानीय उद्योग धन्धों पर चलता था और पारम्परिक अर्थव्यवस्था वनों पर केन्द्रित थी, जो अब नष्ट होने लगे हैं। आधुनिक समय में विकास एवं आर्थिक नीतियों के कारण पूँजीवादी सभ्यता को पनपने का

महत्वपूर्ण अवसर प्रदान कर रहे हैं। पूँजीवादी सभ्यता कृषि एवं स्थानीय उद्योग धंन्धों का ह्रास कर दक्षता एवं शिक्षित व्यक्तियों को महत्व दे रही है। साथ में प्राकृतिक संपदाओं का लूट मार कर रही है। आदिवासी इलाकों का तहस-नहस होना आदिवासियों को बेरोज़गार की कतार में खडे होने को मजबूर कर दिया है। रोज़गार की कमी से आदिवासी शहरों की ओर पलायन हो रहे हैं। शहरों का रास्ता चुनने से उन्हें तमाम बुराइयाँ झेलनी पडती हैं।

आदिवासी इलाकों में व्याप्त बेरोज़गारी के हल स्वरुप योजित की गयी सरकारी योजना है- 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारण्डी योजना' जिससे एक हद तक आदिवासियों की रोज़गार की समस्या पर सुधार हुआ है। परन्तु आदिवासियों की जीवन-शैली, रहन-सहन सब प्रकृति पर आधारित है। प्रकृति का विनाश उन्हें काफी ज़्यादा तनाव में डालता है। समकालीन परिप्रेक्ष्य में वैश्विक महासत्ता आदिवासी इलाकों को धीरे-धीरे घुन की तरह खाकर खोखला कर रहा है। आदिवासी न चाहते हुए भी सभ्य समाज का गला मरोड देनेवाली करतूतों का शिकार वे बनते जा रहे हैं। बुनियादी ज़रूरतें एवं सुख-सुविधाओं से वंचित आदिवासी सभ्य समाज की गद्दारी हरकतों से ठगे जा रहे हैं। आज उनका जीवन शोषण से राख बन रहा है। आखिर विज्ञान एवं यंत्रयुग के क्रूर परिवेश में अनपढ, गंवार एवं लाचार बनकर जीने की उनकी अद्भुत क्षमता का तारीफ करना अनिवार्य है।

रोज़गार की कमी से आदिवासी गरीबी, बीमारी, भूखमरी आदि के मार को झेलते छिन्न-भिन्न होने लगे हैं। समकालीन आदिवासी युवा साहित्यकार

आदिवासियों की बेरोज़गारी की वजह ढूँढ रहे हैं। खन्ना प्रसाद अमीन, शिवलाल किस्कू जैसे साहित्यकार उनमें प्रमुख हैं। खन्ना प्रसाद अमीन की 'काम की तलाश में' नामक कविता में रोज़गार केलिए तरसता आदिवासी नज़र आता है। कवि के शब्दों में -

"काम की तलाश में
चलते थे- एक दूसरे के
आगे-पीछे कतारबद्ध
बढ रहे थे आगे
शहर की बाज़ारवादी सभ्यता की ओर।"[11]

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरुप आदिवासी इलाके छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। प्राकृतिक संपदाओं का विनाश आदिवासियों को शहरों की ओर पलायन होने को मजबूर कर दिया है। जहाँ पर वे दोयम दर्जे के नागरिक हैं। शहरों की बज़ारवादी सोच ने आदिवासियों को खुद उनके ही पहाडों एवं ज़मीनों को तोड-फोड करने का रास्ता खोल रखा है। जहाँ पर वे दिन भर काम करने पर भी भर पेट अन्न नसीब नहीं होता। साथ में लम्बे अरसे से काम करने पर उन्हें चन्द पैसों का इन्तज़ाम और कई तरह की बीमारियाँ आसानी से घेर लेती हैं। टूटते पहाडों एवं पर्वतों के बीच टूटती आदिवासी ज़िन्दगियाँ अनगिनत हैं। अस्थाई खेतों का अभाव, भूमिहीनता, सिंचाई स्रोतों का प्रभाव, ऋणग्रस्तता, स्थानीय श्रम का अनुपलब्धता आदि कई कारणों से आदिवासी समाज आज बेरोज़गारी के कगार पर खडे हैं। समकालीन युवा आदिवासी साहित्यकार

शिवलाल किस्कू ने 'आश्वासन' कविता में इसी कडवी सच्चाई का अंकन किया है। कवि बताते हैं -

"हारकर बैठ गया था
इसलिए कि
न कहीं कोई काम है
न पहले का दाम है।"[12]

काम की तलाश में शहरों में जा बसनेवाले आदिवासियों के साथ सभ्य समाज अमानुषीय शोषण का प्रहार कर रहे हैं। उनका खून चूस कर उन्हें बीच रास्ते छोडे जा रहे हैं। रोज़गार की तलाश में भटकते-भटकते आदिवासियों को सबसे पहले उनकी पहचान स्थापित करना पडता है। आदिवासी समुदायों में धर्म की कोई प्रमुखता नहीं है। वे सिर्फ अपने को आदिम मानव मानते हैं। यही उनकी पहचान है। किन्तु सभ्य समाज के सामने यह बात स्वीकार्य नहीं है। अभावों में जी कर आदिवासी समुदाय पढ-लिखकर आगे बढ रहा है। लेकिन उनकी पहचान उन्हें बेरोज़गारी की कतार में खडी कर देती है। यह दोयम दर्जे का नागरिक अनपढ हो या शिक्षित उनके साथ होनेवाला सभ्य समाज का हाशियेकृत भाव उन्हें काम और दाम में पीछा कर रहा है।

यहाँ पर दोनों कवियों ने आदिवासी समाज में व्याप्त समस्या बेरोज़गारी को विभिन्न पहलुओं के साथ कई कारणों के मद्दे नज़र परखने का प्रयास किया है। खन्ना प्रसाद अमीन और शिवलाल किस्कू के अलावा जसिंता केरकेट्टा, शिशिर टुडू जैसे कई समकालीन युवा आदिवासी साहित्यकार आदिवासियों की

रोज़गार को लेकर सजग हो उठे हैं। किन्तु खन्ना प्रसाद अमीन और शिवलाल किस्कू ने आदिवासियों की प्रस्तुत समस्या पर विशेष ध्यान दिया है। उनकी कविताएँ मात्र आदिवासी बेरोज़गारों पर निर्भर न होकर संपूर्ण बेरोज़गारों के लिए प्रेरणादायक हैं।

3.8 निरक्षरता

निरक्षरता भारतीय आदिवासियों में छाया हुआ एक चिन्ता जनक विषय है। शिक्षा का मानवीय जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा पृथ्वी के अन्य जीवित प्राणियों से अलग करने का एक माध्यम है। सन् 1950 के पहले आदिवासी शिक्षा को लेकर कोई निश्चित योजना नहीं बनी। बाद में स्वयंसेवी संगठन, शासन के कई प्रयासों आदि से उनमें शिक्षा के महत्व को बढाने के कार्यक्रम होने लगे। स्वतन्त्रता के बाद जब उनका नाम भारतीय संविधान में जोडा गया तब से उनकी शिक्षा के स्तर पर वृद्धि होने लगी। केन्द्र तथा राज्य सरकारों के उत्तरदायित्व पर आदिवासी इलाकों पर अधिक स्कूल खोले गये। फिर भी उनमें शिक्षा के प्रति उदासीनता छायी रही। आदिवासी समाज की विचित्र भौगोलिक परिस्थिति इसका मूल कारण है। वे अपने अन्धविश्वासों तथा पूर्वाग्रहों के साथ संस्कृति एवं सभ्यता को कायम रखना चाहते हैं। लेकिन आधुनिकीकरण के इस माहौल में आदिवासियों ने खुद खतरा मोल लिया है। अपनी अज्ञानता एवं अशिक्षा के कारण छले जाना या ठगे जाना उनकी नियति बन गई है। लेकिन किस्मत के खेल पर वे खुद ज़िम्मेदार हैं इस बात से वे बिलकुल अनजान हैं।

आलोका कुजूर, महादेव टोप्पो, भागवान गव्हाडे, खन्ना प्रसाद अमीन, रामदयाल मुण्डा जैसे कई समकालीन साहित्यकार आदिवासी शिक्षा को लेकर काफी बेचैन हैं। आदिवासी जीवन के अनेक समस्याओं को अपनी कविताओं में प्रस्तुत करने के साथ आदिवासी शिक्षा को लेकर उन्होंने विचार-विमर्श किया है। रामदयाल मुण्डा की कविता ने 'तुमने स्कूल बनाया' में आदिवासी इलाकों में खोले गये स्कूलों की ज़रूरतों पर संकेत दिया है। कवि के शब्दों में -

> "तुमने स्कूल बनाया
> गाँव वालों की शिक्षा के लिए
> पढने वाले बैठे हैं
> (किन्तु) मास्टर नहीं है, हे राजा।"[13]

उपयुक्त शिक्षकों की कमी आदिवासियों की निरक्षरता के प्रमुख कारणों में से है। आदिवासी इलाकों में शिक्षक बनकर जाते हैं वे अधिकांश गैर-जनजातीय शिक्षक हैं और वे आदिवासियों को हेय दृष्टि से देखते हैं। असभ्य तथा जंगली समझते हैं। आदिवासी समुदाय में व्याप्त पाठशालाओं की कमी और शिक्षकों में पायी जानेवाली कर्मनिष्ठता, प्रामाणिकता और इच्छा शक्ति का अभाव आदिवासी निरक्षरता केलिए ज़िम्मेदार है। साथ ही जनजातीय भाषाएँ मौखिक हैं। जिनकी कोई लिपि नहीं है। उनके तमाम गीतकारों, कवियों, लोकगीतों एवं संस्कृति का इतिहास सब श्रुति आधारित हैं। इसलिए आदिवासी भाषा एवं संस्कृति की जानकारी शिक्षकों केलिए अनिवार्य है।

भारतीय शासन व्यवस्था आदिवासियों केलिए कई शिक्षा नीतियाँ लागू की हैं ताकि आदिवासी समाज साक्षर बने। लेकिन फिर भी उनमें अज्ञानता एवं अशिक्षा का असर प्रत्यक्ष होता है। इसलिए नीतियों में संशोधन करने की आवश्यकता है। पहले-पहल आदिवासी लोग कृषि, पशु-पालन जैसे व्यवसायों में बच्चों को भी साथ ले चलते थे और उनसे काम करवाकर घर की आजीविका चलाते थे। लेकिन आज वर्तमान दौर में आदिवासी समाज के बीच शिक्षा को लेकर काफी बदलाव का माहौल पैदा हुआ है। औद्योगिकरण के उद्देश्य से उत्पन्न उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण जैसी आर्थिक नीतियों ने आदिवासियों को विस्थापन का दंश झेलने को मजबूर कर दिया है। आज आदिवासी जल-जंगल-ज़मीन से बेदखल होकर महानगरों की ओर पलायन कर रहे हैं। लेकिन महानगरों में वे अपमानित हो रहे हैं। शिक्षा के अभाव में आदिवासी समाज को सबसे ज़्यादा वंचित होना पडता है। ज़िन्दगी में कोई निर्णय लेने से स्त्री और पुरुष दोनों असमर्थ हो जाते हैं।

महानगरों में आकर अपमानित होना और गैर-आदिवासियों का संपर्क में आना आदि कई कारणों से आदिवासी समुदायों में शिक्षा को लेकर उनका नज़रिया बदला है। इसलिए आदिवासी लोग कृषि, पशु-पालन जैसे व्यवसाय से धन अर्जित कर अपने बच्चों को शिक्षा प्राप्त कराने का प्रयास कर रहे हैं। महादेव टोप्पो की कविता 'आदिवासी गाँव से इंटर पास छात्र का सपना' में इसी सच्चाई का यथार्थ अंकन हुआ है। कवि लिखते हैं-

"पैसे मिल ही जायेंगे दादा

जुगाड हो जाएगा

किसी-न-किसी तरह मेरी पढाई का।”[14]

यहाँ पर कवि ने आदिवासी छात्र की शिक्षा के प्रति उसके सपने और आकांक्षाओं को व्यक्त किया है। साथ में पढाई में बाधा डालनेवाली आर्थिक समस्या पर भी विचार किया है। शासन के द्वारा प्रदत्त निःशुल्क शिक्षा के कारण से आदिवासी समाज में शिक्षा की सुविधा का लाभ प्राप्त हो रहा है। किन्तु आगे की पढाई केलिए पैसों का होना ज़रूरी है।

आदिवासियों का निवास स्थान जंगल एवं पहाडों पर केन्द्रित है और पाठशालाएँ वहाँ से कोसों दूर होती हैं। ज़्यादातर बच्चे दूरी के कारण पढाई से इनकार कर रहे हैं। लेकिन आज प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना कर शिक्षा हासिल करने का प्रयास हो रहा है।

यहाँ पर रामदयाल मुण्डा और महादेव टोप्पो ने आदिवासी इलाकों में व्याप्त निरक्षरता के कई कारणों को हमारे सम्मुख रखने का प्रयास किया है। अन्य रचनाकारों की अपेक्षा इन दोनों रचनाकारों की कविताओं में आदिवासियों की शिक्षा को लेकर आवाज़ बुलन्द है।

3.9 स्त्री

आदिवासी स्त्री जीवन असुरक्षा के जाल में फंसा हुआ है। आदिकाल से अब तक उनका जीवन दमित और अवहेलित रहा है। उसे मनुष्य से ज़्यादा पशु तुल्य देखा जाता है। औरत परिवार का महत्वपूर्ण हिस्सा है। सभ्य समाज की

अपेक्षा आदिवासी समाज की स्त्री अधिक स्वतन्त्र है। फिर भी उसका शोषण जारी है। पितृसत्तात्मकता, परंपरावादी-रुढिवादी मानसिकता, यौन शोषण आदि आदिवासी स्त्री शोषण के केन्द्र बिन्दु हैं। समकालीन रचनाकार आदिवासी स्त्री जीवन के अनेक पक्षों को सरलता एवं गहनता के साथ हमारे सम्मुख रखने का प्रयास करते हैं। निर्मला पुतुल, रमणिका गुप्ता, रोज़ केरकेट्टा, सरोज केरकेट्टा, सरिता सिंह बडाईक, ज्योति लकडा, नितिशा खलखो जैसे अनेक कवयित्रियों ने ज़िन्दगी और शरीर के साथ एक साथ संघर्ष करनेवाले आदिवासी स्त्री के विविध चेहरों को प्रत्यक्ष कराया है। और उनके साथ भगवान गव्हाडे, हरिराम मीणा जैसे कवि भी आदिवासी स्त्री जीवन के दर्द को उकेरने में समर्थ हुए हैं। किन्तु निर्मला पुतुल और रमणिका गुप्ता की कविताओं में आदिवासी स्त्री जीवन की गहराई अधिक स्पष्ट हुई है। रमणिका गुप्ता की बहुचर्चित कविता है 'मैं जिऊँगी'। प्रस्तुत कविता में कवयित्री ने कोयला खदानों में काम करनेवाली आदिवासी स्त्री की मजबूरी एवं विवशता को दर्शाया है। कवयित्री के शब्दों में -

> "तू खदान में खटती है
> मर्द ने छोड दिया है तुझे
> तू उसके बच्चे पालती है
> पीठ पर बच्चे को बाँध
> बोझती है कोयला।"[15]

कवयित्री ने यहाँ पर आदिवासी स्त्री की नियति और मानसिकता पर बहुत बारीकी से समझने की कोशिश की है। आदिवासी स्त्री जीवन अक्सर गरीबी और अभावों से गुज़रता है। इन अभावों के बीच ज़िम्मेदारियाँ निभाना उनका मूलभूत कर्तव्य होता है। ज़िन्दगी की राहों से आदिवासी स्त्री को अक्सर अकेला चलना पडता है। मर्द कभी उनका सहारा नहीं बनते और अंत में ज़िन्दगी बोझ बन जाती है। पर वे संकटों का सामना बखूबी संभालती हैं। विकास रूपी मायाजाल आदिवासी इलाकों को निगल रहा है। ऐसे में आदिवासी स्त्री की समस्याएँ भी भयानक हो रही हैं। आदिवासी स्त्रियाँ मेहनतकश एवं श्रमशील हैं। खेतीबाडी या कृषि आदि उनके मुख्य पेशों में से है। पर सरकारी योजनाओं से उत्पन्न कोयला उत्खनन, बाँध परियोजना, सिंचाई परियोजना, इस्पात परियोजना आदि परियोजनाएँ उनकी ज़मीनों को जड से उजाड रही हैं। मेहनत कर जीवनयापन करती आदिवासी स्त्रियाँ आज भी मेहनत कर रही हैं। पर आज कोयला खानों में काम करना, पहाडों को तोडना आदि उनके मुख्य पेशे बन गये हैं और वे खुद अपने घर तोडने को मजबूर हैं।

आदिवासी समाज में स्त्रियाँ कभी-कभी आर्थिक समस्या का हल बनती हैं। इसलिए मर्द उन्हें गिरवी रखने और वेश्यागिरी करने को विवश करते रहते हैं और इस प्रकार उनमें चरित्र हीन का करार लग जाता है। डायन प्रथा इस समाज में छायी सबसे असहनीय अन्धविश्वास है जिसका शिकार आदिवासी स्त्री ही बनती है।

रमणिका गुप्ता के समान निर्मला पुतुल ने भी अपनी कविता ‘माँ’ में बहुत ईमानदारी और मेहनत से घर संभालती आदिवासी स्त्री का सटीक वर्णन किया है। वे लिखती हैं -

“उसे पता है वर्षों से खाट पर पडे
तपेदिक से ग्रस्त पिता की
हर सुबह नीम की दतवन
गर्म पानी से नहलाना...”[16]

आदिवासी स्त्रियाँ कभी परम्परा से हटकर जीना नहीं चाहतीं। वे अपनी परम्परा और संस्कृति को कायम रखना चाहती हैं। पर विस्थापन, वैश्वीकरण, भूमि अधिग्रहण आदि के बहाने ज़मीनों से बिछडे आदिवासी आज अनगिनत बीमारियों के शिकार हैं। मूलभूत ज़रूरतों के साथ दवाइयाँ भी ज़रूरत की वस्तु बन गई है। रिश्तों का बोझ निभाते-निभाते आदिवासी स्त्री का स्वास्थ कमज़ोर होता जा रहा है। पर उनकी परवाह एवं खयाल कोई नहीं रखता। भूख, गरीबी, बेरोज़गारी, विस्थापन आदि कारणों से वे मन ही मन टूट रही हैं। अपने ख्वाबों को चुप्पी की सादगी में बाँधकर जीने में वे अतिसमर्थ हैं और इसीमें उनकी जीवन की सफलता झलकती है।

यहाँ पर कवयित्रियाँ परम्परा और सामाजिक परिवर्तन के बीच पिसती आदिवासी स्त्री की छटपटाहट पर आक्रोशित हुई हैं। बरसों से दबे-कुचले आदिवासी स्त्री अपनी हक केलिए लड रही हैं।

3.10 परंपरावादी-रूढिवादी मानसिकता

अधिकांश आदिवासी समुदाय परंपरावादी रूढिवादी मानसिकता से ग्रस्त जीवन जीता है। भारत में अधिकतर आदिवासी समुदायों में परंपराओं के प्रति विशेष लगाव पाया जाता है। परम्पराओं और रूढियों पर उनकी मज़बूत आस्था है। इसलिए वर्तमान समय के विज्ञान एवं तकनीकी युग में भी परंपरागत रिवाज़ों में बदलाव केलिए वे बिलकुल तैयार नहीं हैं। आदिवासियों की रूढिवादी मानसिकता उनकी ज़िन्दगी में अपरिवर्तनशीलता का मुख्य कारण है।

मानव सभ्यता के विकासक्रम में स्त्री और पुरुष दोनों का समान अधिकार रहा है। लेकिन भारतीय समाज पितृसत्तात्मकता को अपनाया है। आदिवासी समाज के अधिकांश समुदाय पितृसत्तात्मकता को स्वीकारा है। लेकिन कई ऐसे आदिवासी (कबूतरा) समाज हैं, जहाँ स्त्री पुरुष पर अधिकार जताती है।

सरिता सिंह बडाईक, ज्योति लकडा जैसे समकालीन साहित्यकारों ने आदिवासी समाज में व्याप्त पुरुषों की वर्चस्ववादी मानसिकता को अपनी कविताओं में विश्लेषण करने का प्रयास किया है। सरिता सिंह बडाईक की कविता 'रिश्तों का बोझ' को उदाहरण स्वरुप देखा जा सकता है -

"निभा रही है रिश्तों का बोझ
दिवंगत पति के स्मृति शेष में
स्वयं को नहीं पाती खोज।"[17]

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को पुरुष की दासी बनकर रहना पड़ता है। साथ ही पुरुष के प्रति प्रेम, समर्पण एवं निष्ठा की भावना जताना पड़ता है। यह भी नहीं विवेक एवं बुद्धि से पति और उसके परिवार को संकट से बचाना पड़ता है। सरिता सिंह बडाईक के समान निर्मला पुतुल की 'माँ' कविता और ज्योति लकडा की कविता 'तुम्हारा डर' में भी पुरुषों की परंपरावादी सोच को उकेरा है।

प्रस्तुत कविताओं के माध्यम से रचनाकारों ने परम्पराओं से ग्रस्त आदिवासी स्त्रियों की संवेदनात्मक टूटन को रूपायित करने का प्रयास किया है जो घर तथा बाह्य क्षेत्रों में दायित्वों की पूर्ति करते हुए तनावपूर्ण तथा वैषम्यपूर्ण जीवन व्यतीत करती हैं। समकालीन साहित्यकारों ने आदिवासियों की अनेक समस्याओं को अपनी कविताओं में जोडने के साथ जनजातीय समाज में बिखरी परंपरावादी-रूढ़िवादी मानसिकता से भी रूबरू कराने की कोशिश की है। आदिवासी स्त्री की अपनी स्वच्छंद तथा स्वतंत्र महत्वाकाक्षाएँ होती हैं। मगर अनेक प्रकार के परम्परागत मूल्य एवं बन्धन के मध्य वे फंस जाती हैं। इस प्रकार उनकी घुटन अधिक गहन होती जाती है।

3.11 पुरुषों की भोगवादी दृष्टि

स्त्रियों का यौन शोषण का प्रमुख कारण पुरुषों की भोगवादी दृष्टि है। जब तक पुरुष वर्ग की यह हीन दृष्टि बदल न जाएगी तब तक स्त्रियों का यौन शोषण चलता रहेगा। आदिवासी समाज में स्त्रियों का यौन शोषण कुछ ज़्यादा ही नज़र आता है। पुरुषों की भोगवादी दृष्टि के प्रति समकालीन आदिवासी साहित्यकारों ने अपना आक्रोश व्यक्त किया है। ज्योति लकडा, ग्रेस कुजूर, रोज़

केरकेट्टा, निर्मला पुतुल जैसे कवयित्रियों में अन्य रचनाकारों की अपेक्षा ज़्यादा आक्रोश दिखाई देता है। ज्योति लकडा की महत्वपूर्ण कविता है 'तुम्हारा डर'। प्रस्तुत कविता में कवयित्री इस प्रकार लिखती हैं -

"क्योंकि तुम डरते हो मेरी गरिमा से
इसलिए योनी-पूजा की तरह
लिंग-पूजा स्थापित की तुमने..."[18]

यहाँ पर कवयित्री ने पुरुषों की भोगवादी दृष्टि को मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया है। सभ्य समाज की अपेक्षा आदिवासी समाज में स्त्री पुरुष यौन सम्बन्ध भिन्न है। किन्तु जनजातियों के बीच विवाह के पहले यौन सम्बन्ध स्थापित होता है। इसका लाभ उठाकर आदिवासी पुरुष महिलाओं को वेश्या बनाकर धन कमाते हैं। कभी-कभी स्त्रियों को बेच दिया जाता है या गिरवी रखा जाता है।

आदिवासी समाज में स्त्री पुरुषों की नज़र में केवल धन अर्जन की वस्तु है और आर्थिक समस्या हल करने का प्रमुख उपाय भी। वह हाड माँस की वस्तु है। इसलिए पुरुषों के मन में स्त्री के सपनों और आकांक्षाओं केलिए कोई जगह नहीं। पुरुषों का जानवरों सा बर्ताव और अतृप्त कामवासना के कारण आदिवासी स्त्री मानसिक और शारीरिक तौर पर चूर-चूर होती है।

आदिवासी समाज में व्याप्त पुरुषों की भोगवादी दृष्टि के कई कारण हो सकते हैं। शिक्षा का अभाव, आर्थिक समस्या, नशा आदि उनमें प्रमुख हैं।

लेकिन सभ्य समाज में शिक्षित व्यक्ति जिस तरह स्त्रियों से अमानुषीय व्यवहार करते हैं तो इस विषय पर गहन चिन्तन की अनिवार्यता है। निर्मला पुतुल अपनी किवता 'वेश्या' में यों कहती हैं -

> ''पुरुष बनाता है स्त्री को वेश्या
> वरना स्त्री वेश्य नहीं होती।''[19]

प्रस्तुत कविता में कवयित्री स्त्री की वेश्यागिरी का प्रमुख्र कारण पुरुष की मानसिकता को बताया है। इसी प्रकार ग्रेस कुजूर की 'स्त्री, नन्ही हरी दूब' जैसी कविताएँ और रोज़ केरकेट्टा की 'पहरेदार' नामक कविता में भी पुरुषों की भोगवादी दृष्टि को बडे सक्षम ढंग से प्रस्तुत किया है।

आदिवासी स्त्रियों के प्रति हो रहे अमानुषीय बर्ताव के प्रति अवबोध कराना ही रचनाकारों का मूल उद्देश्य है। किन्तु निर्मला पुतुल, ज्योति लकडा जैसे कवयित्रियों की कविताएँ बहुत ही प्रेरणादायक हैं।

3.12 यौन शोषण

भारतीय आदिवासी समाज में स्त्री पुरुष यौन सम्बन्ध दूसरे समाजों की तुलना में भिन्न नज़र आती है। कई आदिवासी समाजों में आदिवासी स्त्री-पुरुष को विवाह के अतिरिक्त यौन संबन्ध रख्रा जाने का नियम है। लेकिन अन्य जाति या जनजाति के पुरुष के साथ यौन संबन्ध रख्रने से आदिवासी स्त्री को कठोर नियमों का पालन करना पडता है। लेकिन इन नियमों के बावजूद शारीरिक शोषण आदिवासी स्त्रियों की समस्याओं में सबसे महत्वपूर्ण रही है। पुलिस,

ज़मीन्दार एवं उच्च अधिकारियाँ आदिवासी स्त्रियों के साथ अमानुषीय व्यवहार करते हैं।

यह बात सही है कि कई आदिवासी स्त्रियाँ गैर आदिवासी स्त्री से कहीं अधिक स्वतंत्र हैं। लेकिन यह स्वतन्त्रता उन्हें अस्वतन्त्रता में जकड देती है। आदिवासी स्त्रियों को अपने जीवन में अनेक समझौते करने पडते हैं। न चाहते हुए भी परपुरुष से शारीरिक सम्बन्ध बनाना पडता है। शारीरिक एवं मानसिक पीडा सहन करते हुए आदिवासी स्त्री सचमुच टूट जाती है। घुटन और पीडा के कारण वे अंदर ही मन खींची चली जाती हैं।

समकालीन आदिवासी कवयित्रियाँ आदिवासी स्त्रियों के यौन शोषण पर आवाज़ें ज़ोर कर रही हैं। आदिवासी स्त्री जीवन के विभिन्न पक्षों को उजागर करने के साथ उनके यौन शोषण पर गहराई से छानबीन की है। निर्मला पुतुल, ग्रेस कुजूर, रोज़ केरकेट्टा जैसे कवयित्रियाँ उनमें प्रमुख हैं। रोज़ केरकेट्टा की कविता 'पहलेदार' काफी चर्चित है। वे बताती हैं :-

"गेहूँ के खेत में
गूंजो उसकी आवाज़-
इससे पहले ही वह औरत
हो चुकी थी फरार"[20]

पुरुष सत्ता आदिवासी स्त्री को केवल हाड माँस की बिकाऊ माल समझता है। इसलिए स्त्री को न चाहते हुए भी शारीरिक सम्बन्ध बनाने पडते हैं। निर्मला

पुतुल की अधिकांश कविताएँ आदिवासी स्त्रियों के यौन शोषण पर केन्द्रित हैं। उनकी 'मिटा पाओगे सब कुछ', 'सबसे डरावनी रात', 'किसी से कहा नहीं हमने' जैसी कविताएँ आदिवासी स्त्री के प्रति पुरुष वर्ग की अमानवीय व्यवहार के विविध चित्रों को प्रस्तुत करती हैं। निर्मला पुतुल की 'किसी से कहा नहीं हमने' कविता की पंक्तियाँ देखिए -

''नशे में धुत
कई बार किए हैं जानवराना बलात्कार
कुरेदा है नाखून से वक्षस्थल
अपने बत्तीसों दाँत
यु भोए हैं गालों पर।''[21]

कवयित्री ने यहाँ पर पुरुष वर्ग द्वारा बलात्कार होती आदिवासी स्त्री की जीवन की दरिन्दगी को दर्शाया है। निर्मला पुतुल और रोज़ केरकेट्टा के समान ग्रेस कुजूर भी अपनी कविताएँ 'स्त्री', 'नन्हीं हरी दूब' आदि में आदिवासियों पर हो रहे यौन शोषण पर अपना विचार व्यक्त किया है।

आदिवासी स्त्रियों की सामाजिक स्थिति अत्यन्त दयनीय है। लेकिन आज आदिवासी स्त्रियाँ जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों में भी संघर्ष करते आगे बढती नज़र आती हैं। समकालीन कविताओं में आदिवासी स्त्री संघर्ष की आवाज़ बुलन्द है। सहजता उसके व्यक्तित्व की दुर्बलता नहीं बल्कि क्रान्ति बनकर उभरी है। उस पर होते हुए अत्याचारों को वे मूक बनकर सहती रहीं। लेकिन अब

उन्होंने साहित्य रूपी हथियार को हाथ में ले लिया है और जमकर प्रहार कर रही हैं।

3.13 अस्तित्व संकट

आज अस्मितामूलक विमर्श का दौर चल रहा है। ऐसे में आदिवासी साहित्यकार अपनी जाति की अस्तित्व को खोज निकालने का प्रयास कर रहे हैं। वर्तमान काल विकास की चरम सीमा तक पहुँचने की भाग दौड में है। विकास की इस अंधी दौड में भारतीय आदिवासियों का जीवन अत्यधिक प्रभावित हो रहा है। ब्रिटिश शासन द्वारा गुनहगार का इल्ज़ाम लगाना, नागरी सभ्यता की नकारती नज़रें आदि ने आदिवासियों को वर्षों से दबाया व सताया और बोलने, सोचने का अवसर नहीं दिया। साथ ही बर्बरतापूर्वक जीवन जीने को मजबूर कर दिया। स्वाधीनता के बाद भारतीय समाज ने यह सोचा था कि साम्राज्यवादी ताकतों से मुक्ति के बाद स्वदेशी शासन द्वारा संपूर्ण विकास होगा और सबसे समानता का व्यवहार किया जाएगा। पर यह संभव नहीं हुआ। विशेषकर आदिवासियों के सन्दर्भ में।

आदिवासियों का जीवन पूर्ण रूप से जल, जंगल और ज़मीन पर केन्द्रित है। उनकी आजीविका खेती, पशुपालन, शिकार आदि से चलती है। विचित्र भौगोलिक परिस्थिति के कारण उनकी भाषा, संस्कृति, रीति-रिवाज़, आर्थिक पद्धति आदि में भिन्नता दिखाई देती है। किन्तु वे जंगलों तथा पहाडों के बीच पूर्वजों के बनाये नियमों के अनुसार अपना जीवनयापन करते हैं।

आज आदिवासियों के अस्तित्व पर सवाल उठने लगे हैं। क्योंकि जब से गैर-आदिवासी या सभ्य समाज की घुसपैठ हुई है तब से उनका जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है। पहले ही उनके स्वत्व एवं योगदान को नज़र अन्दाज़ कर जंगली, बन्दर, राक्षस आदि कुरुप एवं बर्बर चित्रण के प्रतीक बना दिये। और उनकी संस्कृति, भाषा, ज़मीन यहाँ तक की उनकी औरतों को भी शोषण का शिकार कर दिया। सभ्य समाज ने आदिवासियों के प्रति केवल अलगाव, परायेपन एवं अविश्वास का भाव रख्रा है। असमानता का व्यवहार आदिवासियों के अस्तित्व पर सबसे ज़्यादा चोट पहुँचाता है।

समकालीन साहित्यकार आदिवासियों के अस्तित्व के प्रश्न पर सवाल कर रहे हैं। उनपर होनेवाले अनेक संकटों के साथ अस्तित्व की तलाश करने लगे हैं। भगवान गव्हाडे, भुवनलाल सोरी जैसे रचनाकार उनमें प्रमुख्र हैं। भगवान गव्हाडे अपनी कविता ‘अपने जंगल की तलाश’ में बताते हैं -

> “मुझे तलाश है सदियों से
> अपने अस्तित्व, अपने मनुष्य
> होने का, गर्दन को सीधी कर सकूँ
> ऐसे अपने सम्मान की।”[22]

वर्तमान में आदिवासियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। सभ्य लोगों ने उन्हें असभ्य तथा पिछडा कहकर अपनी ही ज़मीन से बेदख्रल कर बेसहारे के पथ पर ख्रडा कर दिया है। आधुनिकता के इस माहौल में देश विकास के तेज़ रफ्तार में है। दुनिया की तेज़ दौड में आदिवासी समाज गिरता जा रहा है।

विकास की सरकारी योजनाएँ एवं आदिवासियों को उनके मूलभूत अधिकारों से ही वंचित कर देती हैं। प्रस्तुत कविता में कवि आदिवासियों का मनुष्य होने का एहसास दिलाना चाहते हैं। क्योंकि सभ्य समाज उनसे जानवराना व्यवहार करते हैं। भगवान गव्हाडे के समान भुवनलाल सोरी भी अपनी कविता 'उजाले की तलाश में' आदिवासी अस्तित्व पर विचार करने का प्रयास किया है। कवि के शब्दों में -

> ''गुबंदनुमा पहाडियों के बीच से
> निकलते लोग
> उजाले की तलाश में।''[23]

समाज से ही हाशियेकृत आदिवासी आज धरती से भी हाशियेकृत हो रहा है। सरकार नए-नए उद्योग लगाने हेतु कोलनियों का निर्माण कर आदिवासी ज़मीनों को छीन रहा है और वहाँ पर बडे-बडे लोगों का वास स्थान बना रहे हैं। परिणामस्वरुप कमज़ोर वर्ग को दबाया जाना आसान हो जाता है। पहले से ही अंधेरे में खडे आदिवासी उजाले की तलाश में महानगरों की ओर अग्रसर हो रहे हैं। लेकिन महानगरों में उनकी ज़िन्दगी जंगली जीवन से भी बदत्तर है। क्योंकि सभ्य समाज उनकी अशिक्षा एवं अज्ञानता का फायदा उठाकर चोट में मरहम लगाने की वजह और मरीज़ बना रहा है। यहाँ पर दोनों कवि आदिवासी अस्तित्व को बचाने का आग्रह करते हैं।

3.14 मुक्ति की कामना

सदियों से बेडियों में बंद जीवन जीते आदिवासी आज आज़ादी तलाश रहे हैं। बरसों से असभ्य, गंवार, जंगली सुन-सुनकर आदिवासी जीवन बेचैन है। इसलिए इक्कीसवीं सदी के इस माहौल में आदिवासी असभ्य कहनेवाले जीवन से मुक्त होना चाहते हैं। आदिवासियों का जीवन सुख्रों से कोसों दूर है। सदियों से दुःख्र को सीने में दबाए सब कुछ सहते चले। अज्ञान और अशिक्षा के कारण पीढी-दर-पीढी गुफाओं में बंद आदिवासी कभी-भी अपने मूलभूत अधिकारों को मांग नहीं सके। आज विकास की होड में आदिवासी बेबस और बेसहारे बन गए हैं। जब इतिहास के पन्नों को उलटें तो संघर्ष का एक धारावाहिक रूप ही उपलब्ध होगा। किन्तु सभ्य समाज उन्हें अनदेखा करता रहा। शिक्षित लोग आदिवासियों की इज़्ज़त और जान पर हैवानगी करते रहें। वे सहते रहें, झेलते रहें और स्त्रियाँ भोगती रहीं। दर्द और पीडा से कराहते हुए कई पीढियाँ बर्बाद होती गयीं और हो रही हैं। आदिवासियों के जीवन में सुख्र और सम्पन्नता ने कभी दस्तक नहीं दिया। पर वे अपनी परम्परा, संस्कृति, भाषा, जल, जंगल एवं ज़मीन पर ख्रुश थे। लेकिन विकास रूपी चाल का जाल बिछाकर सरकारी योजनाएँ औद्योगिक सभ्यता से उत्पन्न आर्थिक नीतियाँ, वैश्वीकरण आदि ने उनके आश्रय स्थानों को छीन लिया और उनका जीवन तार-तार कर दिया। आज करोडों आदिवासी बुनियादी सुविधाओं के अभाव में जीवन काट रहे हैं।

समकालीन साहित्यकार आदिवासियों की हक की लडाई लड रहे हैं जिनसे वे बरसों से दूर एवं वंचित थे। लक्ष्मण सिंह कावडे अपनी कविता 'भविष्य के प्रति' में कहते हैं -

“बस्तर के
वनवासी भी
देखते हैं सपने
कि आएगा वक्त
एक न एक दिन ज़रूर।”[24]

शोषण की जंजीरों को तोडकर आदिवासी मुक्त होना चाहते हैं। जितने भी दमन के शिकार बने फिर भी उनमें सफलतापूर्वक भविष्य की चाहत और सपने झलकते हैं। कवि ने यहाँ पर आदिवासियों में छायी निराशा में आशा की किरणें लाने का प्रयास किया है। लक्ष्मण सिंह कावडे के समान युवा आदिवासी साहित्यकार मोती लाल ने अपनी कविता 'सूची से बाहर' में आदिवासी मुक्ति की चाहत एवं तलाश को व्यक्त किया है। वे इस प्रकार संकेत देते हैं -

“अभी जगाए रखेगा मुझे
कि चीज़ें नहीं है वैसी
जैसे हम नहीं रखते हैं
कभी भी।”[25]

सीमित और असंतोष का जीवन व्यतीत करते आदिवासी ऊब गये हैं। आदिवासी मन आक्रोश में लकीरों को लाँघकर ऊँचाइयों को छूना चाहता है।

यहाँ पर कवि आदिवासियों की ज़िन्दगी की बेडियों को तोडना चाहते हैं। लक्ष्मण सिंह कावडे और मोतीलाल के अलावा हज़ारी लाल मीणा राही, भुवन लाल सोरी आदि अपनी कविताओं में आदिवासियों की अनेक समस्याओं को जोडने के साथ आदिवासियों की मुक्ति की लडाई लड रहे हैं।

3.15 बाल शोषण

बाल शोषण आदिवासी इलाकों में व्याप्त सच्चाई है। आज की बाज़ारीकृत दुनिया ने आदिवासी बच्चों को और शोषित बना दिया है। आदिवासी इलाकों में अधिकांश बच्चे अशिक्षित है। इसलिए आदिवासी बच्चे अपने माँ बाप के साथ खेत-खलिहानों में काम कर अपना जीवनयापन करते हैं। लेकिन बाज़ारीकरण नामक महाजाल की दुनिया ने तो उन्हें माँ बाप से तो क्या सारे रिश्ते-नाते और परम्परा एवं संस्कृति से भी दूर कर दिया है और अनजान ज़िन्दगी जीने को मजबूर कर दिया। विस्थापन एवं पलायन के कारण आदिवासी अपने जल-जंगल-ज़मीन से बिछुडकर या बेदखल होकर महानगरों में आ बसते हैं। महानगरों में वे गुमनामी की ज़िन्दगी जीने को विवश हैं। भूमण्डलीकरण और पश्चिमीकरण की चकाचौंध में सबसे ज़्यादा आदिवासी बच्चों को शिकार होना पड रहा है और समकालीन कविताओं में रचनाकार आदिवासी बच्चों की ज़िन्दगी की दरारों को केन्द्र में रख रहे हैं।

सरिता सिंह बडाइक, सरोज केरकेट्टा, शिवलाल किस्कू, निर्मला पुतुल, हज़ारी लाल मीणा राही जैसे अनेक समकालीन साहित्यकार आदिवासी बच्चों को लेकर काफी चिन्तित हैं। इनमें सरिता सिंह बडाइक और हज़ारी लाल मीणा

राही की कविताएँ उल्लेखनीय हैं। सरिता सिंह बडाईक ने अपनी कविता 'बच्चा' में आदिवासी समुदाय में व्याप्त बाल मज़दूरी को केन्द्र में रखा है। कवयित्री के शब्दों में -

"रगड-रगड कर जूठी प्लेटों करता साफ
मिटा नहीं फिर भी बदनसीबी का दाग"[26]

आदिवासी बच्चों को सपने देखने का हक तक नहीं है। उनका भूत, वर्तमान और भविष्य अन्धकार से छाया है। उनसे उनका बचपन छीना गया है। उनके नसीब में बासी रोटी और फटे कपडे लिखे हैं। फिर भी वे किस्मत के खेल पर हैरान नहीं हैं। किसी अनजान शहरों में आकर बर्तन साफ करना, अखबार बेचना, जूते पॉलिश करना जैसे कई छोटे मोटे काम कर अपना गुज़ारा कर लेते हैं।

आदिवासी इलाकों में अक्सर मासूम बच्चे एकाएक लापता होते हैं। आज बच्चों के साथ यौन शोषण हो रहा है। बाज़ार में स्त्रियों से ज़्यादा छोटे लडके और लडकियाँ अत्यधिक बिकाऊ हो रहे हैं। आदिवासी बच्चों का गुमनाम होना बहुत बडी समस्या है। भूख, गरीबी, अज्ञानता आदि कई कारणों से बच्चे गाँव-गाँव और शहर-शहर में भटकते रहते हैं। इसी बीच वे अचानक गायब हो जाते हैं। आदिवासी समाज हो या सभ्य समाज आज बच्चों के साथ अमानुषीय व्यवहार चल रहा है। आज जवान और बूढे मिलकर बच्चों के साथ क्रूर बलात्कार कर रहे हैं। बच्चे अपनी अज्ञानता और बेबसी के कारण सब मूक बनकर सह लेते हैं। स्त्रियों के साथ हो रहे यौन शोषण में स्त्रियाँ अक्सर

गर्भवती हो जाती हैं। नाजायज़ सम्बन्धों में बने बच्चों को कोई स्वीकार नहीं करता। कभी खेत-खलिहानों में खून से सने नंगे मासूम बच्चे पाये जाते हैं। कभी-कभी इनका ज़िन्दा रहना नामुमकिन सा हो जाता है। अगर ज़िन्दा है तो उनकी ज़िन्दगी नरक तुल्य बन जाती है। निर्मला पुतुल, रोज़ केरकेट्टा जैसे साहित्यकारों की कविताएँ एसी सच्चाइयों से अक्सर साक्षात्कार कराती रहती हैं।

आदिवासी समाज में व्याप्त गरीबी एवं निर्धनता के कारण आदिवासी बच्चों को सबसे ज़्यादा भूख का शिकार बनना पडता है। जल संकट से उत्पन्न पेयजल की अपूर्ति और भोजन की कमी से आदिवासी बच्चों का स्वास्थ्य बिगडता रहता है। भूख के कारण आदिवासी समाज में भूखमरी की स्थिति पैदा हो चुकी है। एक वक्त भर पेट अन्न सपना बनता जा रहा है। आदिवासी समाज के बच्चों की हालतों को देखकर कवि हज़ारी लाल मीणा राही अपनी कविता 'बाल मज़दूर' के माध्यम से हमसे सवाल करते हैं -

> "बारह करोड बाल मज़दूरों का समूह
> पूछ रहा है सवाल
> देव भूमि में पैदा होना
> क्या उनका दोष है?"[27]

रचनाकारों ने अपनी कविताओं के ज़रिए बाल शोषण के विभिन्न स्तरों को हमारे समक्ष रखने का प्रयास किया है। विषय की विविधता एवं विस्तार के कारण प्रस्तुत करने के ढंग में असमानता पायी जाती है। लेकिन उनका मूल

उद्देश्य एक है। सरिता सिंह बडाईक और हज़ारी लाल मीणा राही की कविताओं में आदिवासी बाल शोषण के प्रति ज़्यादा तीखा प्रहार उपलब्ध होता है।

बच्चे आनेवाला कल है और आजकल आदिवासी समाज के बीच जनसंख्या ह्रास अति भयानक रुप ले लिया है। ऐसे में आदिवासी समाज के बच्चों का वर्तमान और भविष्य के प्रति जागरुक होना ज़रुरी है।

3.16 मानसिक संत्रास

संत्रास का अर्थ होता है अत्यधिक भय या भय मिश्रित वेदना का भाव। किसी भी रुप का बाह्य हस्तक्षेप आदिवासियों का जीवन असह्य कर देता है। अपने जल-जंगल-ज़मीन से बेदखल होते आदिवासी हर वक्त मानसिक संत्रास का गुलाम बनते जा रहे हैं। विकास से उत्पन्न छीना-झपटी का वातावरण ने आदिवासी जीवन को अत्यन्त त्रासदपूर्ण एवं तनावपूर्ण बना दिया है। अपने प्रति होनेवाले क्रूर एवं भेदभावपूर्ण व्यवहारों के प्रति भय की खातिर आदिवासी निस्सहाय एवं निश्शब्द हैं। अपने मानसिक डर एवं पीडा के कारण षडयंत्र रचनेवालों के खिलाफ वे कुछ नहीं कर पा रहे हैं। समकालीन रचनाकारों की अधिकांश कविताओं में आदिवासियों में छायी भय की भावना एवं मानसिक टूटन की यथार्थ अभिव्यक्ति मिलती है। रमणिका गुप्ता, ओली मिंज आदि की कविताएँ उनमें उल्लेखनीय हैं। रमणिका गुप्ता अपनी कविता ‘वे बोलते नहीं थे’ में आदिवासियों की मानसिकता को इस प्रकार व्यक्त करती है -

“भूख को भूख

प्यास को प्यास कहना
आता नहीं था उन्हें
मार को मार
जुल्म को जुल्म कहना
नहीं था उनकी सोच के दायरे में’’[28]

पिछडापन, अशिक्षा एवं निर्धनता के चंगुल में फंसे आदिवासी शिक्षित व्यक्तियों के असहनीय प्रहारों के प्रति हार बैठे हैं। आदिवासियों की खामोशी सभ्य समाज का सबसे बडा हथियार है। इस खामोशी को उनकी कमज़ोरी समझकर सरकार एवं धनाढ्य व्यक्ति उनका सब कुछ लूट रहे हैं। अनेक अभावों से ग्रस्त आदिवासी आज अस्थिपंजर हो गये हैं। आदिमता के कर्तव्य को निभाते-निभाते वे समाज से ही बाहर हो गए हैं। असोची स्थितियाँ एवं घटनाएँ उनकी ज़ुबान को ही नोच ली हैं। रमणिका गुप्ता के समान ओली मिंज ने भी अपनी कविता ‘इदरी का जंगल’ में जंगल की कटाई से उत्पन्न डर एवं वेदना के भाव को उकेरा है। कवि के शब्दों में -

‘‘बडी बेरहमी से कटाई हुई
ठाक-ठाक-ठाक
यह आवाज़
सारी-सारी रात
डराती रही
आँखों से मेरी
नींद उडाती रही।’’[29]

गतिशील समाज में आदिवासी समाज की गति दुर्गति में परिवर्तित हो गयी है। असह्य पीडा से गुज़रते आदिवासी दिलों में डर की तबाही मच रही है। आदिवासी जीवन प्रतिदिन सिकुडता एवं असुरक्षित होता जा रहा है। ऐसे माहौल में उनमें मानसिक संत्रास का भाव भयानक रुप से छा रहा है। यहाँ पर रचनाकारों ने आदिवासियों को मनोवैज्ञानिक स्तर पर पडताल करने की सराहनीय कोशिश की है।

3.17 इतिहास बोध

समकालीन आदिवासी कविताएँ आदिवासियों के गौरवपूर्ण इतिहास को याद रखती हैं। आदिवासी जीवन के विषाद या दुःख दर्द का बयाँ और 3000 वर्षों से भी ज़्यादा समय से चले आ रहे संघर्ष को आज समय के संघर्ष के साथ जोडा जा रहा है। संपूर्ण आदिवासियों का इतिहास उसके भीतर से झलकता है। इतिहास का अर्थ बीते हुए कल से है। इतिहास में विलीन हुए आदिवासी जीवन के विभिन्न पहलुओं को हमारे सामने लाने की सराहनीय कोशिश समकालीन रचनाकार कर रहे हैं। इतिहास के अंधेरे रास्तों में आदिवासियों के कई लहु-लुहाते दृश्य अप्रत्यक्ष होते गये। उनके बलिदान, दर्द एवं पीडा को अनदेखा कर बीच रास्ते ढकेल देने में सभ्य समाज की साजिशें अनगिनत हैं। किन्तु समकालीन रचनाकार आदिवासी जीवन के इतिहास को पुनः याद कर उन्हें संघर्ष के रास्ते पर लाने की चाल चला रहे हैं। निर्मला पुतुल, ग्रेस कुजूर, हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, अनुज लुगुन, भगवान गव्हाडे, शिशिर टुडू आदि उनमें उल्लेखनीय हैं।

आदिवासी जीवन अनेक बाधाओं से घेरा हुआ है। जबसे आर्यों का आगमन होने लगा तब से आदिवासी जीवन उलटने लगा। बाद में औपनिवेशिक शासक आए। इसके फलस्वरूप दलाल, ज़मीन्दार, ठेकेदार आदि पनपने लगे और आदिवासी जंगल के अंदर अधिक फंसते और पिसते गये। वास्तव में औपनिवेशिक घुसपैठ ने आदिवासी जीवन को ही पलट दिया। भारत में उपनिवेश की शुरुआत तब हुई जब अंग्रेज़ यहाँ आए थे। बीसवीं शती तक भारत में अंग्रेज़ों का समय रहा। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात से उपनिवेशवाद का मुद्दा अत्यधिक विस्फोटक बन गया। इस युद्ध ने सदियों पुरानी उपनिवेशवादी व्यवस्था को हिला दिया। विश्व की आधी से अधिक आबादी इससे छुटकारा पाना चाहते थे और उन्होंने स्वतन्त्रता केलिए संघर्ष करना शुरू कर दिया उनमें कई आदिवासी थे। उपनिवेशवाद का मूल उद्देश्य विभिन्न प्रजाति के लोगों के निवास स्थान पर शासन स्थापित करना है। इस तरह शासन स्थापित करने के बाद वहाँ की जनता की सम्पत्ति पर नियन्त्रण रखने लगते हैं।

आदिवासी भले ही गरीब है पर उनका जीवन पूर्ण रुप से प्रकृति पर निर्भर है। किन्तु बाहरी लोगों की नज़रें उनकी प्राकृतिक सम्पदाओं की ओर थीं। लाखों करोडों के धातुओं से आछादित आदिवासी इलाके आज सभ्य समाज के कब्जे में हैं। उपनिवेशवाद का इतिहास लगभग पाँच शताब्दी पुराना है। अपनी विकास प्रक्रिया में यह विभिन्न चरणों से गुज़रा है और इसके प्रत्येक चरण की अलग-अलग विशेषताएँ हैं। आज यह भूमण्डलीकरण के नाम पर आज़ाद भारत की सम्पत्ति को लूट कर रहा है। और आदिवासी संस्कृति का विध्वंस हो रहा है।

उनकी कला, नृत्य, धर्म, भूगोल, मौलिक साहित्य सभी पर जान बूझकर हमला कर रहे हैं।

अपने शोषण और उत्पीडन के खिलाफ आदिवासी पहले से ही लडते रहें। किन्तु उनके बलिदान की गाथाओं को इतिहास के पन्नों से दूर रखा गया। सिद्धु, कन्हु, तिलका, बिरसा जैसे अनेक आदिवासी वीर नायक आदिवासी हकों केलिए आखिरी साँस तक लडते रहें। आदिवासी मर्दों के साथ आदिवासी औरतों की बलिदान की गाथाएँ अब भी इतिहास की वस्तु नहीं बन पायी हैं। लेकिन पहाडिया विद्रोह, संथाल हूल, बिरसा का उलगुलान आदि आन्दोलनों में आदिवासी स्त्रियाँ आदिवासी पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अंग्रेज़ों के खिलाफ लडी थी। सिनगी दई, चम्पी दई, फूलो, झानो आदि आदिवासी महिलाएँ क्रान्तिकारी जीवन से परिचित हैं। ये महिलाएँ ऐतिहासिक परम्परा के साथ समाज केलिए मार्गदर्शक भी हैं।

समाज केलिए सब कुछ न्योछावर करनेवाले आदिवासी आज अपना होने का एहसास दिलाना चाहते हैं। वे इतिहास में उनकी जगह एवं पहचान को बनाना चाहते हैं। शिशिर टुडू, यशोदा मुर्मू जैसे कवि उनमें प्रमुख हैं। शिशिर टुडू की कविता 'मेरा इतिहास' में सभ्य समाज से सवाल करते हैं। वे पूछते हैं -

> ''इतिहास में किसका गुणगान है?
> उसी का न-
> जो हर सकता है, हम जैसे सैकडों

बेबसों के प्राण?

इसीलिए उसमें मेरा

या मेरे कुनबे का ज़िक्र नहीं है।''[30]

यहाँ पर कवि ने आदिवासी समाज के प्रति सभ्य समाज की साजिश एवं चालाकी के विरुद्ध आवाज़ उठाई है।

उसी प्रकार यशोदा मुर्मू ने 'स्वाधीन भारत में है कहाँ नारी का स्थान' नामक कविता के माध्यम से आदिवासी क्रान्तिकारी महिलाओं का परिचय कराया है। वे इतिहास को दुहराने की बात बताती हैं। कवयित्री लिखती हैं -

''जरा याद करें सिनगी दई, कैली दई का साहस

गाएँ झूम-झूम फूलो, झानो का स्त्री गान।''[31]

प्रस्तुत कविता में कवयित्री आदिवासी क्रान्तिकारी महिलाओं के माध्यम से आदिवासी समाज एवं आदिवासी स्त्री के प्रति होनेवाले अन्याय एवं अत्याचार के विरुद्ध पुनः लडने की सलाह देती हैं। दोनों रचनाकारों ने कविता में ही नहीं बल्कि पूरे इतिहास में विमर्श खडा कर दिया है। महान सांस्कृतिक विरासत के वाहक आज अधूरा जीवन जीने को मजबूर हैं। जिससे उभरने के रास्ते वे खुद ढूंढ निकाल रहे हैं। किन्तु फिर भी वे अन्याय एवं अत्याचारों के बीच दबे कुचले जा रहे हैं। महादेव टोप्पो, भगवन गव्हाडे, हरिराम मीणा आदि ने अपनी कविताओं में आदिवासियों की अनेक समस्याओं को जोडने के साथ उनके इतिहास की ओर भी दृष्टि डाली है।

3.18 विद्रोह

समकालीन आदिवासी कविताएँ क्रान्तिकारी हैं। आक्रोश के साथ पीडा और उनका अनुभव है। आज पढे-लिखे आदिवासी युवा लेखक अपने जीवन संघर्ष और जिजीविषा को अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहे हैं। मुख्यधारा का समाज आदिवासी समाज को न तो विकसित होने दिया और न ही उनके बीच शामिल होने दिया।

जब से औपनिवेशिक ताकतों का घुसपैठ होने लगा तब से आदिवासियों पर होनेवाले अत्याचार भी बढते गये। अपने जल, जंगल तथा ज़मीन से बेदखल होना उनके लिए सबसे असहनीय कार्य था। पौराणिक काल से लेकर आज़ादी के आन्दोलन तक आदिवासियों के बलिदान और महत्वपूर्ण योगदानों को मुख्यधारा के समाज ने हाशिए पर रखा। लेकिन आदिवासी सदा स्वदेश प्रेमी एवं स्वाभिमानी रहे। अपने ऊपर होनेवाले अत्याचार पर आवाज़ उठाने की आवश्यकता पर वे सोचते रहे। देश के अनेक कोनों में घटित आदिवासी आन्दोलन उनके विद्रोह के उदाहरण हैं। पहाडिया विद्रोह, संथाल हूल, बिरसा का उलगुलान आदि उनमें प्रमुख हैं। स्वाधीनता के पहले ब्रिटिश शासन ने भारतीय शासन व्यवस्था पर अपना कब्जा जमा लिया था। लेकिन उनकी न्याय व्यवस्था से लोग दम घुटने लगे। देश की संपदा पर अंग्रेज़ों का शोषण गहरा बनता गया। इस प्रकार वन और भूमि के उपयोग करनेवाले आदिवासियों के अधिकारों पर रोक आने लगे। जब सन् 1878 में 'इंडिया फारस्ट एक्ट' पारित किया तो संरक्षित एवं सुरक्षित जंगल तथा उसके उत्पादों पर आदिवासियों के

अधिकार पर कठोर रुकावटें आ गयीं। अंग्रेज़ी शासक ने आदिवासी समुदायों की परंपरागत संपत्ति के स्वरूप को मूलभूत रूप से बदल दिया और उसे राज्य की संपत्ति बना दिया। इस प्रकार ब्रिटिश शासन तथा उसके स्थानीय प्रतिनिधियों के खिलाफ आदिवासियों ने आन्दोलन चलाये। अंग्रेज़ों के खिलाफ आज़ादी की लडाई आदिवासियों ने लडी थी। लेकिन अंग्रेज़ों के खिलाफ विद्रोह की शुरुआत करनेवाले आदिवासियों की स्थिति आज अत्यन्त दयनीय है। इतिहास को भुलाकर उन्हें विकास की मुख्यधारा से ही वंचित कर दिया। इस प्रकार आदिवासियों में असंतोष के कारण प्रतिरोध के स्वर बुलंद होते रहें। आदिवासियों के देशप्रेम का मूल कारण उनका एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करने से है। लेकिन आज वैश्वीकरण के मायाजाल से आदिवासी समुदायों को अपनी ज़मीन से बेदखल होना पड रहा है। इसलिए वे अपने अस्तित्व एवं पहचान को बनाए रखने केलिए संघर्षरत हैं।

भगवान गव्हाडे, अनुज लुगुन, ग्रेस कुजूर, निर्मला पुतुल, जसिन्ता केरकेट्टा जैसे साहित्यकार अपनी ज़मीन की खातिर आदिवासियों को उनकी पहचान को लौटाने का प्रयास कर रहे हैं। अनेक आदिवासी समस्याओं को अपनी कविताओं में जोडने के साथ आदिवासियों को उनका संघर्ष भरा इतिहास के दौरान वर्तमान में संघर्षरत होने की सीख दे रहे हैं।

यह बात सच है कि आदिवासियों द्वारा चलाये गए आन्दोलन स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार स्थानीय स्तर पर ही लडे गये। आदिवासी कभी भी पूरे भारत की स्वतंत्रता केलिए अंग्रेज़ों के विरुद्ध युद्ध नहीं लडे। इसका प्रमुख

कारण आदिवासी कई उपजातियाँ एवं समूहों में बंटे हुए थे। और आज भी बंटे हुए हैं। इसलिए अपनी स्वायत्तता की लडाई भी अलग-अलग लडे और लड रहे हैं। फ्रांसिस्का कुजूर और जसिन्ता केरकेट्टा ने अपनी कविताओं में समान रुप से सभ्य समाज के करतूतों के प्रति विरोध प्रकट किया है। फ्रांसिस्का कुजूर की कविता 'हमें करना होगा' में संघर्ष भरे दर्द को इस प्रकार व्यक्त किया है -

"अपने हक केलिए उलगुलान करना होगा
बिरसा बुधु जतरा सिदो-कान्हू के बताए रास्ते
पर चलना होगा।"[32]

न्यायालयों का पक्षतापूर्ण निर्णय, पुलिस एवं अन्य सरकारी कर्मचारियों द्वारा अत्याचार और उनमें महाजनों एवं ज़मीन्दारों का सहयोग महाजनों एवं ज़मीन्दारों द्वारा आर्थिक शोषण, वन संपदा की लूट आदि कई कारणों से आदिवासी जीवन तहस-नहस हो गया है। ऐसी बर्बर राजनीतिक, सामाजिक व्यवस्था के प्रति उनका आक्रोश भडक उठता है।

फ्रांसिस्का कुजूर के समान जसिन्ता केरकेट्टा की कविता 'मेरे हाथों के हथियार' में आक्रोश भरी आवाज़ अभिव्यक्त है -

"हम लड रहे हैं
अपनी ज़मीन
और अपना वजूद बचाने केलिए
मेरे बाद तुम्हें भी लडना होगा।"[33]

समाज में जब असमानता बढती है, तो प्रतिरोध का जन्म होता है। प्रतिरोध के बिना परिवर्तन संभव नहीं है। प्रतिरोध एक महत्वपूर्ण हथियार है जो न्याय की लडाई लडने केलिए समर्थ है। आदिवासियों में विद्रोह की शुरुआत किसी एक विशेष कारण से नहीं हुई थी। कभी आर्थिक शोषण है तो कभी सामाजिक, सांस्कृतिक हस्तक्षेप के परिणाम, कभी सत्ता के प्रति असंतोष इस प्रकार आदिवासी क्रान्तिपथ का अनुसरण करने पर विवश होते गये।

सर्वव्यापी बाज़ार व्यवस्था के कारण आदिवासी समाज अपने जल, जंगल, ज़मीन, पर्यावरण, अस्मिता तथा संस्कृति के बचाव केलिए जूझ रहे हैं। भूमण्डलीकरण ने आदिवासियों का जीवन अस्त-व्यस्त कर दिया है। भोजन, कपडा, मकान जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ हैं जो पूर्ण नहीं हो पा रही हैं। आदिवासी सदियों से गुलामी, अत्याचार, उत्पीडन और शोषण का शिकार बनते रहे, लेकिन वर्तमान में वह इन सब से मुक्त होना चाहते हैं। अपनी संस्कृति को कायम रखते हुए आज़ादी की ज़िन्दगी जीना चाहते हैं।

कविताओं के माध्यम से रचनाकार आदिवासियों के चहूँओर बंधा चक्रव्यूह से निकलने की सलाह दे रहे हैं। विकास रूपी भ्रमजाल के झूठे वादों को तोडकर आदिवासियों को पढ-लिखकर कायदे, कानून एवं राजनीति को समझकर आगे आना है। जब तक सत्ता, सम्पत्ति एवं भूमि का समान बँटवारा न होगा तब तक आक्रोश का धुआँ उठता रहेगा।

मुख्य धारा की संस्कृति ने उनके सामने केवल दो ही रास्ते छोडे हैं। या तो अपनी अस्मिता, अपने इतिहास को मिटाकर निचला दर्जा स्वीकार कर लें या

फिर अपना अस्तित्व मिट जाने केलिए मूक बन जायें। दरअसल गैर आदिवासी समाज ने आदिवासियों को सोचने को मजबूर कर दिया है कि या तो इस सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह का स्वर बुलंद करें या फिर इस गंदी राजनीतिक एवं सामाजिक भेदभाव को झेलते रहें।

3.19 विस्थापन

समय के परिवर्तन ने आदिवासी शब्द का अर्थ ही नहीं, बल्कि उनकी ज़िन्दगी का आयाम ही बदल दिया है। आज़ादी के पहले जब उपनिवेशियों की घुसपैठ हुई तो तब उनकी समस्याएँ वनोपज पर प्रतिबंध, महाजनी शोषण, पुलिस एवं प्रशासन का अत्याचार आदि मुख्य रहीं। लेकिन स्वाधीनता के बाद भारत सरकार ने विकास का नया मोडल अपनाया। जिसके फलस्वरूप उनके जीवन में अनगिनत समस्याएँ उत्पन्न होने लगीं और विस्थापन जैसी भयानक समस्या का जन्म हो गया। अधिकांश जनजातियाँ घुमक्कड हैं। अपनी आजीविका केलिए वे घूंमतु बने। अस्थायी खेती, शिकार आदि आदिवासियों की मुख्य आजीविका के मार्ग है। इसलिए वे जंगल दर जंगलों, पहाडों, नदी किनारों आदि की ओर पलायन करते रहते हैं और प्राकृतिक मौसम के अनुरूप अपना वासस्थान बदलते रहते हैं। अतः आदिवासी जीवन में पलायन का महत्वपूर्ण स्थान है। लेकिन आज आदिवासी अपनी ज़मीनों से मजबूरन पलायन कर रहे हैं। विकास की कीमत सबसे ज़्यादा आदिवासी चुका रहे हैं। कारखानों का निर्माण, सडकों का निर्माण, कोयला खनन, परमाणु विद्युत केन्द्र, बाँध परियोजना, इस्पात परियोजना, सिंचाई परियोजना, लोहा संयंत्र आदि कई

कारणों से आदिवासियों की ज़मीन उनसे ली जाती है। आश्चर्य की बात यह है कि इसकी खबर आदिवासियों को नहीं है। दिन-प्रतिदिन लाखों आदिवासी विस्थापित हो रहे हैं। कई परियोजनाएँ अभी निर्माणाधीन हैं। उनके चालू होने पर कितने आदिवासी विस्थापित होंगे यह चिन्तनीय है। सरकार हज़ारों एकड ज़मीनों का अधिग्रहण कर औद्योगिक क्षेत्र केलिए ज़मीन तैयार कर रही है, जिसमें आदिवासियों केलिए कोई जगह नहीं है। विस्थापितों की वास्तविक संख्या का आकलन किया जाए तो विस्थापन की भयावह स्थिति का अनुमान हो सकता है। ज़मीनों से बेदखल होकर संस्कृति एवं सभ्यता से दूर होने पर भी वे अभावों में जी रहे हैं। यही उनकी ताकत की निशानी है।

नित नयी बन रही परियोजनाएँ आदिवासियों की मौत परियोजना के कारण बन गयी हैं। क्योंकि परियोजनाओं के कारण विस्थापित होनेवालों केलिए सुनिश्चित पुनर्वास की व्यवस्था नहीं हो रही है। किसी की शिकायत एवं सिफारिश किए बिना विकास केलिए वे सब कुछ खो रहे हैं। अन्यों के विकास केलिए सर्वनाश होते आदिवासी समाज के सपने और आकांक्षाएँ टूट कर बिखर गए हैं। आज़ादी के बाद भी मौलिक अधिकारों से वंचित होते हुए आज वे अपने फटती ज़मीनों को देखकर रो रहे हैं। सदियाँ भर वे चीखते-चिल्लाते रहें। लेकिन किसीने उन्हें देखा न सुना। सरकार का नाम लेकर सभ्य समाज उन पर मनमानी कर रहा है। उनके घर-द्वार, खेत-खलिहान सब कुछ आज स्मृतियाँ बन रही हैं। अमंगल जीवन उनकी नसीब बन गई है। सभ्य समाज का क्रूर एवं अमानवीय व्यवहारों के प्रति वे मौन हैं। भूमि के पुश्तैनी हकदार और दावेदार

होते हुए भी उनका खुले-आम शोषण जारी है। पहाडों को पाताल बनाकर ज़मीनों को तोडकर आदिवासियों के सीने में सभ्य समाज छुरी चढा रहा है। सभ्य समाज के हुनर के आगे आदिवासी चोर-लुटेरे बन गये हैं और उपेक्षित एवं तिरस्कृत भी। आदिवासी पहले ज्ञान विहीन थे। लेकिन आज वे ज्ञान विहीन के साथ गृहहीन एवं भूमिहीन बन रहे हैं। सभ्य समाज आदिवासियों के जल-जंगल-ज़मीन को नुक्सान पहुँचाकर उनकी रीढ को तोड रहा है। आदिवासी इलाकों का चित्र आज बदल गया है। सभ्य समाज का संवेदनहीन व्यवहार के आगे आदिवासी बेबस है और उनके आगे गडबडाना उनकी नियति बन गई है। लेकिन समकालीन साहित्यकार विस्थापन के कारण बदहाल होते आदिवासी समाज पर बोल उठते हैं और उनके हकों की मांग करते हैं। अनुज लुगुन, महादेव टोप्पो, खन्ना प्रसाद अमीन, हरिराम मीणा, ग्रेस कुजूर, निर्मला पुतुल, रमणिका गुप्ता, ज़्योति लकडा आदि अनेक साहित्यकार उनमें शामिल एवं सक्रिय हैं। विस्थापन का आलम आदिवासियों केलिए सबसे असहनीय बन गया है। उनके साये उनसे हट चुके हैं। अनेक ज़ुल्म हादसों के शिकार बनते आदिवासियों के खिलाफ हो रहे शोषण कभी थमते नहीं हैं और बदलते बदलाव में उनकी जान पर आफत पहुँची है। समकालीन कवयित्री वंदना टेटे की कविता ‘रची जा रही हैं’ में इस सच्चाई को बताना चाहा है। कवयित्री के शब्दों में -

“तुम्हारे विकास की गाड़ी
दौड़ सके रौंदती हुई हमारे
भूत-वर्तमान और भविष्य को

कुछ इस तरह

कि न उठ सके कोई दोबारा

और न कर सके कोई दावा"[34]

लाखों आदिवासी ज़िन्दगियाँ विस्थापन के दंश में लिपट चुके हैं। वैश्वीकरण, उदारीकरण एवं निजीकरण के बढते कदम से आज अनेक कम्पनियाँ उत्पन्न हो रही हैं। यह सब पूँजी का खेल है। आदिवासियों को जडों से निकालकर उन्हें ज़मीन से निष्कासन करने की सभ्य समाज की चालाकी है। सबका समान विकास केलिए औद्योगीकरण देश केलिए अत्यन्त ज़रूरी बताकर सरकार GEZ या SEZ के नाम पर आदिवासी ज़मीनों को हथिया रहे हैं और औद्योगिक क्षेत्रों को नीलाम कर एच.ई.सी जैसे बडे-बडे कॉम्पलेक्स बनाकर करोडों आदिवासियों को विस्थापित किया जा रहा है। ज़मीन बिना आदिवासी जीवन बर्बाद होने लगा है। ज्योति लकडा ने अपनी कविता 'लोहा' के माध्यम से विस्थापन का दंश झेलनेवाले आदिवासी ज़िन्दगियों का यथार्थ बयान किया है। वह लिखती है -

"जंगल-जंगल

साखू के सुलगते अंगार में

तपने लगा है

कोयल कारो, काठीकुंड कलिंगा।"[35]

कवयित्री ने यहाँ पर आदिवासी बहुल क्षेत्र जैसे सारंडा, सिंगुर, नेतरहाट, नन्दीग्राम, बस्तर, तेलंगाना, लालगढ आदि स्थानों को विकास के नाम पर

विस्थापन के अंगार में तपे जाने की सच्चाई से मिलवाने की कोशिश की है। यहाँ पर दोनों रचनाकारों ने विभिन्न पहलुओं के मद्दे नज़र विस्थापन की समस्या को देखने-परखने की कोशिश की है। विस्थापन के यथार्थ को भोगते आदिवासी समाज का जीवन्त चित्रण को वंदना टेटे और ज्योति लकडा ने गहराई से उजागर किया है। आदिम मूल्यों को अवमूल्यन करनेवाला यह विनाश आदिवासी एवं आदिवासी संस्कृति को भी संसार से ओझल कर रहा है। विकास के नाम पर होनेवाला इस विनाश को रोका जाना अत्यन्त ज़रुरी है। आदिवासी समाज को धक्का देनेवाला यह ज़बर्दस्ती शोषण एक विश्वव्यापी संकट है। जनता की जागरुकता से ही इस समस्या का हल हो सकता है।

3.20 आर्थिक शोषण

भारत के अनेक हिस्से विकास की झलक में चमकने लगे हैं। एक तरफ लोग लाखों करोडों से खेल रहे हैं तो दूसरी तरफ एक एसा समाज है जो आज भी अपनी प्राचीन परम्परा एवं संस्कृति के सहारे जीवन गुज़ार रहे हैं। वह है आदिवासी। जंगली परिस्थितियों में जीनेवाले आदिवासियों की आजीविका पूरी तरह प्रकृति पर आश्रित है। सभ्य समाज की अपेक्षा आदिवासी जीवन में अर्थ की आवश्यकता बहुत कम है। किन्तु मानवीय जीवनयापन केलिए धन की अत्यन्त आवश्यकता होती है। आज मनुष्य की अर्थ के प्रति लालच बढने लगी है। विकास की बयार में महंगाई का बढना इसके लिए प्रमुख्र कारण है। इसके फलस्वरुप मनुष्य अपनी ज़रुरतों की पूर्ति केलिए अधिक धन इकट्ठा कर रहे हैं। देश की औद्योगिक क्रान्ति राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था के हित केलिए अपनाया

गया प्रमुख मार्ग है। औद्योगिक विकास के उद्देश्य से लागू की गयी आर्थिक नीतियाँ, बाज़ारवाद एवं उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया है, जिससे बचना आज असंभव सा हो गया है। मात्र मुनाफे को महत्व देनेवाली इस संस्कृति की हर कोशिश प्रकृति के खिलाफ है। औद्योगिक विकास केलिए प्राकृतिक खनिज संपदाएँ अत्याधिक उपयोगी सिद्ध हुई हैं। और प्राकृतिक संपदाएँ आदिवासी इलाकों में सुलभ हैं। ऐसे माहौल में प्राकृतिक संपदाओं के दोहन के साथ आदिवासी शोषण भी जारी है। प्राकृतिक संपदाओं का दोहन और ज़मीनों के लूट के मारे आदिवासी जीवन में धन की आवश्यकता इतनी गम्भीर हो गई है कि वे एक वक्त की रोटी केलिए तरस रहे हैं। सभ्य समाज की अर्थ लोलुपता एवं लालची भाव आदिवासी इलाकों को एक-एक कर लूट-खसोट कर तहस-नहस कर रहे हैं। आदिवासियों को अपनी ज़मीन से विस्थापित एवं बेदखल कर उन्हें अपने घरों से ज़बरदस्ती उखाड रहे हैं।

प्राकृतिक संपदाओं का दोहन आदिवासी जीवन में सबसे ज़्यादा धक्का पहुँचाया है। इस धक्के के कारण आदिवासी जीवन में छाये आर्थिक शोषण के विभिन्न स्तरों की ओर समकालीन रचनाकार हमारा ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं। रामदयाल मुण्डा, महादेव टोप्पो जैसे रचनाकार उनमें प्रमुख हैं। रामदयाल मुण्डा की कविता 'कब तक काम करोगे' में कवि ने दिनभर काम करने पर मज़दूरी न मिलने की और पेट न भरने की आदिवासियों की यथार्थ स्थिति को प्रस्तुत किया है। कवि यों बताते हैं :-

"कब तक काम करोगे खून सुखाते हुए

कब तक उद्यम करोगे पसीना बहाते हुए
खून सुखाते हुए, पसीना बहाते हुए
बित्ता भर पेट भरता नहीं।''[36]

अभावों में जीता आदिवासी आज निर्धनता के सबसे निचले हिस्से में पहुँच चुका है। भूख एवं गरीबी के मारे आज उनका जीवन मृत्यु के कगार पर है। आदिवासियों के जल-जंगल-ज़मीन को लूटकर शक्तिशाली एवं सम्पन्न वर्ग ऐश और आराम की ज़िन्दगी गुज़ार रहा है। उन्हीं के घरों में घरेलु नौकर बनकर जीना आदिवासियों की मजबूरी बन गई है। आदिवासियों को अपने क्षेत्रों से अलग कर पराये जीवन जीने को विवश कर दिया। खुद उन्हीं की गुज़रगाहों को उन्हीं की हाथों तोड-फोडकर सभ्य समाज केलिए सुविधाएँ बनाना आज उनकी नियति है।

महादेव टोप्पो अपनी कविता 'तुमसे, आदमी कहलाने के गुर नहीं सीखूँगा!' में आदिवासी समाज की आर्थिक दुर्दशा पर गम्भीर विचार-विमर्श किया है। वे छीना-झपटी करनेवालों से यूँ पूछते हैं:-

''घर-द्वार, खेत-खलिहान, भाषा-संस्कृति
अध्यात्म
जंगल-पहाड, नदी-झरने,
पेड-पत्ते, हवा सब कुछ
शरीर का माँस भी नोच लेने के बाद
और क्या लोगे''[37]

सभ्य समाज आदिवासियों पर आदमी होने का तमीज तक नहीं रखता है। हमेशा से अधूरा जीवन व्यतीत करता यह मनुष्य आज विडम्बनापूर्ण त्रासद स्थितियों को झेल रहा है। समकालीन सन्दर्भ में आदिवासी जीवन में धन की अत्यन्त ज़रूरी है। धन के अभाव में आदिवासी स्त्री, पुरुष और बच्चों का जीवन अन्धकार में डूब गया है। स्त्री वेश्यागिरी करने, पुरुष अपराधी कर्म करने और बच्चे बाल मज़दूर बनने को विवश हैं। ऐसे वातावरण में इस समाज का वर्तमान और भविष्य अन्धकार में डूब जाएगा। यहाँ पर रचनाकार आदिवासी जीवन में छायी आर्थिक समस्या एवं शोषण को लेकर काफी जागरूक हुए हैं। सरकारी योजनाएँ एवं धनाढ्य व्यक्तियों के पंजे में दबे रहना आदिवासियों केलिए सबसे असहनीय कार्य है। वर्तमान दौर में आदिवासियों केलिए आर्थिक स्तर पर न्याय दिलाना ज़रूरी है।

3.21 संस्कारों पर अतिक्रमण

आदिवासी जीवन अनेक संस्कारों से संपन्न है। उनका रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, नृत्य-संगीत, देवी-देवता, जन्म-मृत्यु आदि की अपनी अलग खासियत है। अनेक विशिष्टताओं से संपन्न आदिवासी संस्कार आज विनाश के कगार पर है। दिन-प्रतिदिन आदिवासी अपने संस्कारों से वंचित होते जा रहे हैं। गौरवपूर्ण इतिहास, संस्कृति एवं परम्परा को निभाते उत्कृष्ट जीवन व्यतीत करते आदिवासी आज अपने घर-द्वार, खेत-खलिहान, भाषा-संस्कृति एवं जंगल पहाड से दूर होकर बेसहारे बन गये हैं। विकास योजनाओं से सिर्फ धनाढ्य व उच्च कौशल व्यक्तियों एवं व्यावसायिकों को लाभ पहुँचा है और आदिवासियों को

मात्र नुक्सान। वैश्वीकरण की तेज़ रफ्तार में आदिवासी अतिसंकटों से जूझ रहे हैं। वैश्वीकरण नामी मायवी जाल के फलस्वरूप विस्थापित होते आदिवासी अपनी पारम्परिक ज़मीन व परिवेश से खदेडे जाने को विवश हो गये हैं। गरीबी, निरक्षरता, बेरोज़गारी, बीमारी एवं भूमिहीनता के कारण वे निर्दयता से कुचले जा रहे हैं। ऐसे परिवेश में वे अपने संस्कारों को संजोये रखने में असमर्थ होने लगे हैं। समकालीन कविताएँ आदिवासी समाज के संस्कारों पर होनेवाले अतिक्रमण के खिलाफ तीखा प्रहार करती हैं। अनुज लुगुन, ग्रेस कुजूर, शिरोमणि महतो, आलोका कुजूर जैसे अनेक रचनाकारों की कविताएँ आदिवासी जीवन के संस्कारों पर होनेवाले अतिक्रमण के खिलाफ बोल उठती हैं। अनुज लुगुन की महत्वपूर्ण कविता 'ससान दिरी' की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

> ''इन मृत पत्थरों पर जीवित है
> हमारी सैकडों पुश्तों की विरासत
> लेकिन सरकारी पट्टों पर
> इनका कुछ पता नहीं।''[38]

प्रस्तुत कविता में कवि ने आदिवासी विरासत पर दखल की सरकारी पट्टों की ओर विचार विमर्श किया है। ससान दिरी आदिवासियों का एक सांस्कृतिक पत्थर है जो हरेक मृत सदस्यों के नाम पर गाड़ा जाता है। आदिवासी ज़मीनों को जड से सफाया करने की सभ्य समाज की कोशिश एवं हुनर पर कवि ने यहाँ पर तीखा प्रहार किया है। ग्रेस कुजूर की कविता 'एक

और जनी-शिकार' में कवयित्री आदिवासी संस्कारों पर होनेवाले अत्याचारों पर ज़ोर से प्रहार करती है। कवयित्री के शब्दों में -

"कहाँ गई वह सुगंध
महुआ और डोरी की
गूलर और केयोंद की
कहाँ खो गया बांसों का संगीत
और जाने कहाँ उड गई
संधना की सुगंध?"[39]

कवयित्री यहाँ पर दमित होती आदिवासी संस्कारों पर सवाल करती हैं। आदिमता की महक में चमकते-लहराते आदिवासी संस्कार आज हवा में उड गया है। भारत के मूल निवासियों के वंशज आज सभ्य समाज द्वारा कुचला जा रहा है। आदमी से आदमी के खिलाफ और दूर करने की जुर्रत असहनीय है। सभ्य समाज के लोगों में संतुलन या समीकरण की मनःस्थिति नहीं है। इसलिए वे आदिवासी संस्कारों में ही दाव डालकर उनके जीवन के आधार को ही मिटा रहे हैं। यहाँ दोनों कविताएँ आदिवासी संस्कारों पर होनेवाले अतिक्रमणों के खिलाफ काफी प्रेरणादायक एवं चिन्तनीय हैं।

3.22 आवास एवं पुनर्वास

प्राचीन संस्कृति के संवाहक आदिवासी आज बेघर हैं। दूसरों को घर बनाने के चक्कर में वे खुद गुज़रगाहों से बाहर हो गए हैं। विकास की तेज़

रफ्तार में आदिवासी इलाके विनाश की आँधी में डूब रहे हैं। वर्तमान दौर की बाज़ारीकृत सोच, सूचना प्रौद्योगिकी का विस्तार, सरकारी योजनाएँ, खुदाई, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का हस्तक्षेप आदि कई कारणों से आदिवासी इलाके समतल एवं कंक्रीट बन गए हैं। आज अधिकांश आदिवासी गाँव शहर बन चुके हैं। इसलिए आज आदिवासियों में आवास एवं पुनर्वास की समस्या प्रचलित रूप से पायी जा रही है।

आदिवासियों की आवास एवं पुनर्वास की समस्या को सुरक्षा, अभिरुचि, सौन्दर्य बोध आदि कई दृष्टियों से देखा-परखा जा सकता है। साथ में आवासों के निर्माण में वातावरण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आर्थिक व्यवस्था तथा अनुकूल वातावरण के अनुसार ही आदिवासी आवासों की बनावट हो सकती है। कई जनजातियाँ अपनी कलात्मक ढंग से झोंपडियाँ बनातीं तो कई जनजातियाँ छायादार पेडों, गुफाओं तथा पहाडों में अपना वासस्थान बना लेती हैं। लेकिन आज वे लोग अपने जल-जंगल-ज़मीन से दूर होकर घरों से वंचित हो रहे हैं। सभ्य समाज का अवसरवादी तथा संकीर्ण दृष्टिकोण ने आदिवासी समुदायों के आवासों और आवासस्थानों को उजाड दिया है। आदिवासियों को अपनी ज़मीन तथा प्रकृति के प्रति विशेष अनुरक्ति है। उनका जीवन प्रकृति केलिए समर्पित है और यह समर्पण भावना उन्हें आज बेघर कर दिया है। आज आदिवासी महानगरों की गलियों में भटक रहे हैं। कूडे कचरों के साथ गन्दगी और बद्बूभरे रास्तों के किनारे जीवन गुज़ारने को मजबूर हो गए हैं।

समकालीन रचनाकार आदिवासियों के आवास स्थानों का उजड जाना और उनकी पुनर्वास की योजना ठीक से न होना आदि को लेकर काफी चिन्तित नज़र आते हैं। खन्ना प्रसाद अमीन, सरोज केरकेट्टा जैसे रचनाकारों की कविताओं में घर से बेघर हुए आदिवासी जीवन का यथार्थ अंकन हुआ है। खन्ना प्रसाद अमीन की कविता 'बिखर गए' में आवासस्थानों से बिखरे आदिवासियों की यथार्थ अभिव्यक्ति मिलती है -

"वे बिखर गए जहाँ-तहाँ
गाँव-गाँव नगर-नगर
रेल पटरी और सडकों के आस-पास"[40]

विकास योजनाओं के कारण जल-जंगल-ज़मीन से वंचित आदिवासियों को उनके आवश्यकतानुसार सरकार एवं उच्चवर्ग पुनर्वास की योजना नहीं कर रहे हैं। जिन्हें उपलब्ध हुआ है वह उनकी आवश्यकतानुसार नहीं बने हैं। क्योंकि वे घर उनकी परम्परा तथा संस्कृति से बिलकुल अलग हैं। जनजातियों का आवासस्थान उनकी परम्परा, विश्वास, रीति रिवाज़ आदि पर निर्भर है। उन्हीं बातों पर ध्यान दिये बगैर उनकी आवास योजना संभव नहीं है। आदिवासियों में छायी इस समस्या को नज़र अन्दाज़ नहीं किया जा सकता। क्योंकि अगर आदिवासी आज बेघर हैं तो सरकार एवं सभ्य समाज इसके लिए ज़िम्मेदार है। इसलिए इस समस्या का हल उनकी ज़िम्मेदारी है। सरोज केरकेट्टा भी अपनी 'घर' कविता में घर से बेघर हुए आदिवासियों की ओर दृष्टि केन्द्रित की है। कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

"छत मेरे घर की
टूट गयी
जिस छत तले
धूप वर्षा और जाडा से
बचती रही
वह छत गिर गयी।"[41]

आदिवासियों को अपने वास स्थानों से मज़बूत लगाव रहता है। आज वहाँ से बिखर कर उनमें असंतोष एवं अनेक कठिनाइयाँ पैदा हो चुकी हैं। इस तरह उनमें अलगाववाद आन्दोलन प्रेरित होने लगा है। यहाँ पर रचनाकारों ने आदिवासी जीवन की समस्या, आवास एवं पुनर्वास पर गम्भीरता से परखने की कोशिश की है।

3.23 बेदखल

भारतीय समाज में करोडों आदिवासी निवास करते हैं। आज बेदखल उनकी समस्याओं में एक महत्वपूर्ण समस्या बन गई है। जल-जंगल-ज़मीन के असली हकदार आज बेदखल के कगार पर खडे हैं। आदिवासियों की ज़िन्दगियाँ जंगलों के भरोसे चलती हैं और आजीविका वन उपज पर केन्द्रित है। पर वे अपनी जन्मभूमि में आज अपराधी बनकर जी रहे हैं। वन क्षेत्रों के असली और उपयुक्त दावेदार होते हुए भी वे उच्च अधिकारियों के हिमायतों के आगे हार बैठे हैं। उच्च अधिकारियों का मानना है कि वर्षों से वे जिस ज़मीन पर निवास कर रहे हैं वे असंवैधानिक रुप से हैं। इस तरह लाखों आदिवासी बेदखल हो

चुके हैं और लाखों आदिवासियों के ऊपर बेदखल का खतरा मंडरा रहा है। अस्थायी खेती आदिवासियों की पारम्परिक कृषि रीति है। अधिकांश जनजातियाँ जंगलों को साफ कर कृषि कार्य करती हैं और वहीं झोंपडियों का निर्माण कर अपना वास स्थान बनाती हैं। आज उन पर इस विषय को लेकर मुकदमा चल रहा है। कागज़ी वजूदों के अभाव में आदिवासी मुकदमे हार रहे हैं और जैल की सज़ा भुगतने को विवश हैं। भारतीय वन अधिनियम के तहत जंगलों को संरक्षित एवं अधिसूचित करने का अधिकार सरकार को है। सरकार का कहना है कि बडे पैमाने पर जंगलों में अवैध रूप से आदिवासी रह रहे हैं और वन भूमि पर अवैध रुप से कब्जा किया है। वास्तव में यह आदिवासियों की पुश्तैनी ज़मीनों को षडयंत्रपूर्वक हथियाने एवं हडपने की सरकारी चाल है। अगर सरकार पूँजीपतियों और निजी इंडस्ट्रीज़ के साथ जुडकर विकास एवं आर्थिक उन्नति को बढावा देने केलिए आदिवासियों पर शोषण कर रही है तो वह न्याय संगत नहीं है। अपनी अशिक्षा एवं अज्ञानता के कारण आदिवासी अपनी जन्मभूमि पर अपने दावे को साबित करने में असफल रह गये हैं। उच्च अधिकारी एवं शिक्षित व्यक्तियों की धमकी एवं दबाव में आकर कोरे कागज़ों पर आदिवासी हस्ताक्षर डालने को विवश हैं। इस तरह सरकारी व्यवस्था आदिवासी ज़मीन को कॉरपोरेटों के हाथ नीलाम कर रही है।

आज आदिवासी क्षेत्रों में पूँजीपतियों का कब्जा परिधि पार कर चुकी है। जंगलों की कटाई, पहाडों का टूटन, ज़मीनों का खदेडे जाना आदि बढता जा रहा है। अन्याय एवं अनीति के बलबूते पर बेदखल होते आदिवासी आज

अपनी हक मांग कर रहे हैं। समकालीन साहित्यकार आदिवासी मांगों का न्याय पूरी करने की कोशिश जारी कर दी है। ग्रेस कुजूर, आलोका कुजूर, हरिराम मीणा, अनुज लुगुन, निर्मला पुतुल, रमणिका गुप्ता, भगवान गव्हाडे जैसे अनेक समकालीन साहित्यकारों ने बेदखल होते आदिवासियों का जीवंत चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हरिराम मीणा की 'बेदखल होते हुए' कविता सबसे चर्चित है। प्रस्तुत कविता में कवि ने बेदखल होते आदिवासियों के अन्य समस्याओं को भी उकेरने का प्रयास किया है। कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

> "धंस रहे हैं
> घने पेडों और झुरमुटों में
> लहुलुहान और भौंचक्के
> बेदखल होते हुए
> हमारी अपनी पुश्तैनी ज़मीनों से!"[42]

आदिवासी जंगल के रीढ की हड्डी हैं। इसलिए उन्हें हटाना सरकार एवं शक्ति सम्पन्न वर्गों केलिए अनिवार्य है ताकि वे प्राकृतिक खनिज संसाधनों को अपना सके। इसलिए आजकल आदिवासी क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की घटनाएँ घट रही हैं। अपनी लालची एवं मुनाफावादी दृष्टिकोण के ज़रिए बाहरी समाज आदिवासियों की ज़िन्दगी में आँच पहुँचा दी है। नक्सलवाद एवं माओवाद के नाम आदिवासी इलाकों में संघर्ष स्थापित करना असल में सभ्य समाज की चालाकी है ताकि आदिवासियों को उनकी ज़मीनों से भगाया जा सके और उनकी पुश्तैनी ज़मीनों को अपना सके। इस सच्चाई को कवि अनुज लुगुन ने

अपनी कविता ‘सुगना मुण्डा की बेटी’ में बडे शिद्दत के साथ उकेरा है। कवि के शब्दों में -

> “नेपथ्य-ध्वनि की तरह रह-रह कर उठती है चीख
> बच्चों की, औरतों की और बूढों की कराह
> उनके भागने की आहट।”[43]

विकास की आँधियाँ आदिवासी इलाकों में विस्फोट की भाँति धमाके मचा रही हैं। इन्हीं धमाकों के बीच आदिवासियों को जडों से विस्थापित कर बेदखल कर दिया जा रहा है। पलक झपकते सब कुछ खत्म होती आदिवासी ज़िन्दगियाँ बेदखल के मारे बिखर गए हैं। बेदखल होते आदिवासी बच्चों, औरतों और बूढों की चीखें हमारे समाज में कराह रही हैं। उनकी कराहों को अनदेखा नहीं किया जा सकता, क्योंकि आदिवासियों का बेदखल मजबूरन और अन्याय के साथ हो रहा है। इस अन्याय के खिलाफ दोनों रचनाकारों ने अपना आक्रोश अभिव्यक्त किया है और सभ्य समाज के करतूतों पर तीखा प्रहार किया है। मनुष्यत्व के खिलाफ होनेवाली घिनौनी हरकतों के प्रति चेतावनी दी जाती है।

3.24 अस्थायी खेती

अस्थायी खेती सबसे पुरानी कृषि पद्धति है जो हज़ारों वर्षों से चली आ रही है। भारतीय आदिवासियों में अस्थायी खेती का प्रचलन दिखाई देता है। अस्थायी खेती से तात्पर्य कुछ समय तक एक भूमि पर खेती करना और फिर

उसे खाली छोड देने से है। इसके अन्तर्गत जंगली ढलानों की सफाई, गिरे हुए पेडों को जलाना आदि आते हैं। पहले-पहल भूमियों का स्वामित्व आदिवासियों को था। लेकिन धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन होने लगा। जब से उपनिवेशों की घुसपैठ हुई तब से भूमि पर अधिकारी वर्ग बढने लगे। इससे किसानों का शोषण बढता गया और साथ ही आदिवासी जीवन की सामाजिक-आर्थिक दिशा में बाधाएँ आने लगीं।

आदिवासियों की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है और अस्थायी खेती मुख्य आय का साधन एवं मार्ग है। देश की स्वतंत्रता के समय तक भूमि का स्वामित्व केवल कुछ ही लोगों के हाथों में केन्द्रित था। लेकिन स्वतन्त्रता के बाद तेज़ी से परिवर्तन होने लगा। आज लाखों एकड ज़मीन सरकार के द्वारा औद्योगिक घरानों एवं कॉरपोरेट जगत के नाम पर नीलाम है। आज यत्र-तत्र बिखरे खेतों, मैदानों आदि के स्थान पर विशाल अट्टालिकाएँ, कॉलनियाँ, कम्पनियाँ, स्मार्ट सडकें, बडे-बडे मॉलों, अपर्टमेटों आदि ने जगह बना ली है। सभ्य समाज की साजिशों से अनजान आदिवासी जीवन खतरे के कगार पर है।

आज के युवा आदिवासी साहित्यकार अपनी आदिम आजीविका को खोते देखकर आक्रोश हो उठते हैं। सरोज केरकेट्टा और शिशिर टुडू उनमें प्रमुख हैं। शिशिर टुडू की महत्वपूर्ण कविता है 'जान देंगे, ज़मीन नहीं'। प्रस्तुत कविता में कवि बताते हैं-

> ''कभी थे ज़मीन के भूंईहर और जोतदार
> आज बेबस है रहने को झोपडपट्टी में।''[44]

सरकार की योजनाएँ आदिवासियों की आशियानों में आग लगा दी हैं। विकास की तमाम नवीन रास्तों में आकर आदिवासी बिखर गए हैं। सभ्य समाज छल और चालाकी से उनका सब कुछ छीन रहा है। ज़मीन से बिखर कर बेसहारे बन गए है और महानगरों की गलियों में वे बेताब हैं। शिशिर टुडू के समान सरोज केरकेट्टा भी अपनी कविता 'रास्ते बन्द है' में इसी सच्चाई को व्यक्त किया है। कवयित्री लिखती हैं -

> "अब रास्ते बन्द हैं
> खेत निगले गये
> उग आये हैं अपार्टमेंट।"[45]

आदिवासी जीवन के सारे रास्ते बन्द होते जा रहे हैं। खेतों के निगल जाने पर उनकी आजीविका पर रोक लग गयी है। आदिवासी इलाकों में बनी विकास रुपी बांउड्री उन्हें कीचड में धकेल दिया है। इन कीचडों से बचना आदिवासियों केलिए नामुमकिन सा हो गया है। पर वे आज आत्मरक्षा हेतु अपनी ज़ुबान चला रहे हैं।

अस्थायी खेती की अनुपलब्धता आदिवासियों केलिए एक विकट समस्या है। इस समस्या को दोनों रचनाकारों ने अपनी कविताओं में संघर्ष एवं आक्रोश के साथ व्यक्त किया है। समकालीन रचनाकार भी आदिवासियों की इस विकट समस्या को लेकर काफी बेचैन है।

3.25 भूमि हस्तांतरण

ज़मीनों से आदिवासियों का लगाव अत्यधिक है। लेकिन आज वे अपने ज़मीनों को खो रहे हैं। भूमि हस्तांतरण या भूमि अधिग्रहण आदिवासियों की महत्वपूर्ण समस्या बन गई है। आदिवासी एवं गैर आदिवासी एक ही देश के वासी हैं। पर उनकी संस्कृति, सभ्यता एवं दृष्टिकोण में भिन्नता पायी जाती है। आदिवासियों की दुनिया आदिमता के अंधेरे में डूबा है। पर आज वे इससे बेहतर दुनिया बसाना चाहते हैं। किन्तु सभ्य समाज की करतूतों से आदिवासियों का जीना दिन प्रतिदिन दूभर होता जा रहा है।

आदिवासी समाज में भूमि अधिग्रहण अंग्रेज़ी शासन काल में प्रारम्भ हुआ था। भारतीय शासन व्यवस्था में अंग्रेज़ी शासन व्यवस्था के हस्तक्षेप ने उनके जीवन को ही पलट दिया। अंग्रेज़ी स्थायी व्यवस्था को लागू कर भूमि का स्वामित्व ज़मीन्दारों को सौंप दिया। इस व्यवस्था से भू व्यवस्था प्रभावित रही। इस व्यवस्था के अनुसार कर न चुकाने पर ज़मीन बेच दी जाने की और किसी को भी खरीदी जाने की अनुमति प्राप्त थी। निर्धन, गरीब, अशिक्षित एवं ज़मीन्दारों के गुलाम बन कर जीनेवाले आदिवासी कभी-भी कर नहीं चुका पाते। इसके फलस्वरुप उनके हाथों से ज़मीन आसानी से फिसल जाती है और सभ्य समाज के धनाढ्य व्यक्ति ज़मीन जायदाद के मालिक आसानी से बन जाते हैं। देश की स्वतंत्रता के पहले तक भूमि पर कुछ ही लोगों का स्वामित्व रहा। किन्तु स्वाधीनता के बाद जब औद्योगिक सभ्यता का विकास होने लगा तो आदिवासी ज़मीन कॉरपोरेटों के हाथों में पहुँचने लगी। प्राकृतिक संपदाओं से संपन्न

आदिवासी इलाकों में आज कॉरपोरेटों की निगाहें मज़बूत होती जा रही हैं। इसलिए सरकार की अनगिनत योजनाएँ आदिवासी ज़मीन को हड़प रही हैं। सिंचाई परियोजना, इस्पात परियोजना, बाँध परियोजना आदि उनमें प्रमुख हैं। साथ में खदानों से कोयला निकालने हेतु भूमि अधिग्रहण जारी है।

सभ्य समाज का अन्याय एवं असमान व्यवस्था के खिलाफ समकालीन कविताओं में प्रतिरोध की प्रक्रिया के रूप में लेखनी चल रही है। नंग-धडंग घूमनेवाले आदिवासी प्रकृति के बेजोड हिस्से हैं। आज वे अपनी ज़मीन से बाहर है। अपनी ज़मीन की खातिर आदिवासी युवा साहित्यकारों की आवाज़ें ज़ोरों पर हैं। ग्लैडसन डुंगडुंग की कविता 'युवा तुम्हें क्या चाहिए?' में कवि ने देश के धनाढ्य व्यक्तियों द्वारा आदिवासी इलाकों की लूटमार का जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत किया है। कवि कहते हैं -

> "टाटा के पूर्वजों ने बेचकर चीन में अफीम
> और कालीमाटी में लूटकर आदिवासियों की ज़मीन
> खडी की थी यह भव्य इमारत
> विकास की।"[46]

बिजनेस टैकून मुकेश अंबानी जैसे धनिक व्यक्ति सरकार के सहारे देश का लूट-मार कर रहे हैं। विकास के नए मॉडल अपनाकर आदिवासी इलाकों में बेईमानी कर रहे हैं। आदिवासी अपनी ज़मीन से जड से उखाडे जा रहे हैं। इस तरह उजडना उनकी नियति बन गई है। प्रस्तुत कविता में आदिवासी समाज का भूमि अधिग्रहण से उत्पन्न उनके दुःख दर्द गुस्सा एवं आक्रोश उभर आया है।

पूर्वजों के खलिहान उनकी परम्परा एवं संस्कृति सब कुछ दबे-कुचले जा रहे हैं। वक्त की अजीब विडम्बनाओं से ग्रस्त निर्दयता के जालों में फंसे आदिवासी आज भिखमंगे बन गए हैं।

जनजातीय आयोग की रिपोर्ट के अनुसार जनजातियों की भूमि हडपने की कई रीतियाँ बाहरी लोग अपनाये हैं। उनमें सबसे प्रचलित तरीका है न्यायालय। न्यायालयों में जनजाति बिलकुल शक्तिहीन बन जाते हैं। क्योंकि सभ्य समाज उनकी अशिक्षा का फायदा उठाकर उनके ही विरुद्ध गवाही देता है। आलोका कुजूर की कविता 'ज़मीन का टुकडा' में इसी सच्चाई का संकेत हुआ है। कवयित्री बताती हैं -

"इस धरती का पूरा हिस्सा मेरा है
सभी मेरे ही तो है।
जब बट जाती शब्दों से
कोर्ट के कागज़ों के ऊपर।"[47]

नीति-निर्धारकों के सामने आदिवासी असहाय और बेबस बनते जा रहे हैं। आज के नीति नियन्ताओं को सुधारने का वक्त कब का पूरा हो चुका है। स्थितियों का वैज्ञानिक पड़ताल कर आदिवासियों को नीति दिलाना अनिवार्य है। वैश्वीकरण और यंत्रयुग से आदिवासी जीवन पशुत्व और पाशविकता में बन्द होता जा रहा है। सभ्य समाज का आभासी विकास से उनके घाव ताज़े होते जा रहे हैं और स्वत्वहीन एवं चेतनाहीन होकर कैदी सा जीवन जीने को मजबूर हैं। अनन्त यातनाओं से घुटता उनके दम से भाप की लहकें उठ रही हैं।

यहाँ पर आदिमता एवं धरती को बचाने केलिए अन्याय के विरुद्ध लडने को सक्षम हुए हैं। किन्तु ग्लैडसन डुंगडुंग ने एक तरफ धनिकों द्वारा आदिवासी समाज एवं धरती के शोषण को उकेरा है तो दूसरी तरफ आलोका कुजूर ने न्यायलयों में बेसहारे बनते आदिवासी समाज का यथार्थ जीवन को व्यक्त किया है। दोनों के विषयों में विविधता पायी जाती है किन्तु उद्देश्य एक है। आलोका कुजूर और ग्लैडसन डुंगडुंग के अलावा समकालीन अन्य युवा साहित्यकारों की कविताओं में आदिवासी ज़मीनों की लूटमार अभिव्यक्त हुई है।

वर्तमान सन्दर्भ में भूमि अधिग्रहण चिन्तनीय विषय है। धरती की लूटमार कर मानव पूरे मनुष्य राशि को ही हानि पहुँचा रहा है। विकास रूपी विस्फोट एवं सरकारी योजनाओं से ज़मीन की नींव को हिला दी है। बंटवारे के इस अवसर पर धरती का भी बंटवारा हो रहा है। समूचा आदिवासी जीवन व साहित्य इस सच्चाई से अवगत कराने की कोशिश में है।

3.26 प्रवास/प्रवसन

दुनिया भर के सभी समुदायों को अपनी ज़मीन व मूल वासस्थान से गहरा जुडाव रहता है। विशेष रूप से आदिम समुदायों को अपने ज़मीन से अधिक लगाव है। किन्तु आज जनजातियों के बीच प्रवसन की समस्या बढती जा रही है। वैश्विक विकास की अंधी दौड में राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आज त्वरित गति से प्रगति हो रही है। इसी बीच अनगिनत जनसमूह जीवन की विसंगतियों से जूझ रहे हैं। विकास की हमलावार योजनाओं ने आदिवासियों में सामाजिक, आर्थिक शोषण, भूख, गरीबी, बेरोज़गारी, बीमारी, भूखमरी आदि

के साथ बाढ व सूखा जैसे प्राकृतिक आपदाओं का शिकार होने को विवश कर दिया है। इसके फलस्वरूप आदिवासियों को मजबूरन प्रवासी बनना पड़ता है। साथ ही शहरों में रोज़गार के बेहतर अवसर व अधिक मज़दूरी जैसे अनेक कारकों से वे खुद प्रवासी बन रहे हैं। श्रम रहित क्षेत्रों से श्रम अधिकतावाले क्षेत्रों की ओर अग्रसर होना स्वाभाविक बात है। लेकिन श्रम अधिकतावाले क्षेत्रों में आकर आदिवासी मालिकों तथा पूँजीपतियों के शोषण के शिकार बनते जा रहे हैं। अधिकारियों के अधीन सरकार दर पर मज़दूरी नहीं मिलती। कम मज़दूरी एवं बन्धुआ मज़दूरों के रूप में आदिवासी अपनी आजीविका चलाते हैं। शिक्षा के अभाव में कृषि तथा घरेलू नौकरों के रूप में प्रवासी जीवन व्यतीत करते हैं। समकालीन कविताओं में इसकी चर्चा ज़ोरों पर चल रही है। फ्रांसिस्का कुजूर, राम दयाल मुण्डा जैसे रचनाकारों ने इस समस्या को केन्द्र विषय बनाया है। फ्रांसिस्का कुजूर की 'घर लौटो' नामक कविता महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत कविता में कवयित्री ने आदिवासियों का प्रवासी जीवन रेखांकित करने का प्रयास किया है। वे लिखती हैं -

> ''दादा (बड़े भइया) चले गए तुम परदेश
> नगर की भाग-दौड़ में''[48]

लेखिका ने यहाँ पर सभ्य समाज की घिनौनी हरकतों के प्रति सवाल खडा किया है। सभ्य मनुष्य आदिवासी ज़मीनों को उजाडकर उन्हें भूमिहीन बना दिया है। उनके जल, जंगल, पहाडों को छीनकर उन्हें बेदखल कर दिया है। इस तरह वे परदेशी जीवन जीने को मजबूर हो गए हैं। फ्रांसिस्का कुजूर के

समान राम दयाल मुण्डा ने भी अपनी कविता 'वापसी' में आदिवासियों का प्रवासी जीवन अभिव्यक्त किया है। उनका कहना है -

"तब वह भाग गया था
अपना गाँव छोड़कर
अब उसका गाँव भाग गया है
उसे छोडकर।"[49]

आदिवासी पहले अपने इच्छानुसार प्रवासी बनते थे। लेकिन आज उन्हें मजबूरन प्रवासी जीवन अपनाना पड रहा है। यहाँ पर इन रचनाकारों ने आदिवासियों के प्रवासी जीवन को बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

3.27 निर्जनीकरण या जनह्रास

निर्जनीकरण या जनह्रास आदिवासी समाज में व्याप्त एक प्रमुख समस्या है। भारत के अधिकांश जनजातियाँ आज जनसंख्या ह्रास की ओर अग्रसर हो रही हैं। निर्जनीकरण के कई कारण हैं। लेकिन दो पहलुओं के मद्दे नज़र इसे समझा जा सकता है। पहले में वह बात शामिल की जाती है कि जब कोई आदिवासी किसी कारणवश अपना मूल स्थान छोडकर कहीं ओर जाकर बसे और उसका अता-पता न हो और दूसरे पहलू में वह सब बातें शामिल की जाती हैं कि छल, कपट, शोषण, प्राकृतिक आपदाओं का शिकार आदि कारणवश जनह्रास के कगार पर खडे हो। दरअसल अजीब बात यह है कि मुण्डा, उराँव, संथाल जैसे कुछ जनजातियाँ औसत से अधिक हो रही है। और कई छोटी

जनजातियाँ जैसे जारवा, ओंग आदि औसत से कम हो रही है। निरन्तर परिस्थितियों का बदलना आदिवासी समाज केलिए काफी हानि पहुँचायी है। सभ्य समाज के अमानवीय व्यवहार के कारण पेयजल की कमी, कुपोषण, बीमारियाँ आदि उनका नसीब बन गई है। निरपराध होकर भी किस सज़ा केलिए कैदी जीवन भुगत रहे हैं यह सोचना अनिवार्य है। समकालीन रचनाकार इस विषय पर काफी चर्चा कर रहे हैं। सुषमा असुर और मीरा राम निवास की कविताएँ उनमें प्रमुख हैं। मीरा राम निवास अपनी कविता 'जनरैशन गैप' में बताती हैं -

> "तुम्हारा ज़माना ख़त्म हुआ
> अब मेरा ज़माना आया है।"[50]

सभ्य मनुष्य या नयी पीढी आदिम मनुष्य के नसों को एक-एक कर उजाड़ रहे हैं। विकास रुपी षडयंत्र आदिवासी समाज में विषाक्त द्रव को फैलाकर उनके जीवन को पूर्ण रुप से विघटित कर दिया है। इधर-उधर बिखरते वे बेतरतीब हो रहे हैं। बसेरों से वंचित होकर भूखे, प्यासे बनकर जीना आज उनकी नियति बन गई है। मीरा राम निवास के समान सुषमा असुर ने अपनी कविता 'हम ज़रूर जिएँगे ही पठार की तरह निडर' में यों कहा है-

> "हमें (असुरों को) जन्म दिया
> पर जिन्दा रहने केलिए रास्ता नहीं बतलाया"[51]

आदिवासियों केलिए परिवर्तन शब्द सबसे ज़्यादा ह्रास पहुँचा रहा है। उनका सब कुछ गड्डमड्ड कर दिया है। परिवर्तन के तेज़ बहाव में वे कहीं का

ना हो पाते। आदिवासियों का वजूद एवं जान दिन-ब-दिन मिट रहा है। यहाँ पर रचनाकारों ने आदिवासियों के निर्जनीकरण के मूल कारणों की ओर हमें ले चलने का प्रयास किया है और उन्हें समझाने की सराहनीय कोशिश की है। हरिराम मीणा, लीलाधर मंडलोई आदि की कविताओं में निर्जनीकरण का यथार्थ चित्र उभर आता है।

3.28 प्रदूषण

प्रदूषण से तत्पर्य दूषित होने से है। इक्कीसवीं सदी के इस युग में सारी चीज़ें दूषित होते जा रही हैं। वास्तव में यह संम्पूर्ण मानवीय जीवन केलिए एक बडा खतरा है। सभ्य-समाज अपने स्वार्थ, सुख-सुविधाओं एवं धन की लालच में प्रकृति पर नुक्सान पहुँचा रहा है। यह दुर्भाग्य की बात है कि आदिवासी उन क्षेत्रों में निवास करते हैं जहाँ प्राकृतिक एवं खनिज संसाधनों के दोहन की व्यापक संभावना हो। औद्योगिक क्षेत्रों का तेज़ी से विस्तार एवं सरकार की नवीन योजनाएँ आदि पर्यावरण असंतुलन के प्रमुख कारण बन गये हैं। समस्त प्राणी सुरक्षित रहने की अनेक सुविधाएँ प्रकृति ने स्वयं प्रदान की हैं। किन्तु मनुष्य ने उसे विषयुक्त एवं असुविधाजनक बना दिया है।

विकास के नाम पर जल-जंगल-ज़मीन से खदेडे जानेवाले आदिवासी शहरों की ओर पलायन हो रहे हैं। यहाँ पर वे बडे-बडे कारखानों, मोटर वाहनों आदि से निकलते धुओं और शब्दों को सुनते-सूंगते प्रदूषण के शिकार बन रहे हैं। शहरों के धूल में लिपटे जाने के कारण आज वे अनगिनत बीमारियों के जाल में फंसे हुए हैं जिनसे बचने की सम्भावना न के बराबर हैं। औद्योगिक स्थानों,

कृषि स्थानों एवं घर से निकलते अपशिष्टों के कारण विभिन्न जल स्रोत दूषित हो रहे हैं। वर्तमान में जल संकट की समस्या अति भयानक हो गयी है। पेयजल की अपूर्ति सिर्फ आदिवासियों को ही नहीं बल्कि पूरे मानव राशि केलिए ही सबसे बडी चुनौती है। जो आदिवासियाँ जंगल में बचे हैं वे प्रदूषण के जाल से बच गये, यह सोचना बिलकुल गलत होगा। क्योंकि हमारे वनांचल आज सबसे ज़्यादा प्रदूषण के मायाजाल में फंसा हुआ है। विकिरण एवं खनन के कारण वनांचलों में बसनेवाले आदिवासियों के जीवन को नरक-तुल्य बना दिया है।

साहित्यकार प्रदूषण की भयावहता के बीच पिसता आदिवासी समाज के यथार्थ को उकेरने की कोशिश कर रहे हैं। फ्रांसिस्का कुजूर और हरिराम मीणा की कविताएँ इसके लिए सशक्त उदाहरण हैं। हरिराम मीणा की कविता 'सभ्यता के विस्तार के नाम पर हादसा' में प्रदूषित होते आदिवासी इलाकों पर सवाल खडा किया है। कवि पूछते हैं -

> "समुद्र मैले हो रहे हैं
> तटों पर प्लास्टिक की थैलियाँ
> बिखर रही हैं
> और तुम चुप हो..."[52]

कूडे कचरों के बीच फंसे आदिवासी भूख और बीमारी से तडप रहे हैं। वनांचलों से बेदखल होकर महानगरीय गलियों में प्रदूषण की धूल में लिपटता आदिवासी समाज को देख कवि का मन कराहता है। फ्रांसिस्का कुजूर ने अपनी कविता 'जरा सोचो तो हीरा' में प्रदूषण की विकट स्थिति को व्यक्त किया है -

"तुम्हारे खेत-खलिहानों में बन रहा है कारखाना
जिससे निकल रहा है काला धुआँ"[53]

पावर प्रोजेक्ट या केमिकल फेक्ट्रियों द्वारा पूरे जल-जंगल-ज़मीन को प्रदूषित कर दिया है। उनसे निकलती विषैले धुओं और किरणोत्सर्ग के मारे वातावरण का हर चीज़ आज गयब होने लगा है। यह माहौल अगर ज़्यादा दिन चले तो इस सृष्टि से केवल पशु-पक्षी और आदिवासी ही नहीं बल्कि पूरा मानव समुदाय ही विलुप्त हो जाएगा। यहाँ पर रचनाकारों ने सिर्फ आदिवासी जीवन पर ही नहीं पूरे मानवीय जीवन पर प्रश्नचिह्न लगाया है। फ्रांसिस्का कुजूर और हरिराम मीणा के अलावा खन्ना प्रसाद अमीन, महादेव टोप्पो, ओली मिंज, निर्मला पुतुल, रमणिका गुप्ता, ग्रेस कुजूर जैसे अनेक रचनाकार प्रदूषण को लेकर काफी बेचैन नज़र आते हैं।

3.29 संचार

संदेशों का आदान-प्रदान प्राचीन काल से ही चली आ रही है। किन्तु आज संचार माध्यमों की क्रान्ति चल रही है। इसके फलस्वरुप भारत जैसे देश में आशातीत उन्नति हुई है। संचार माध्यमों का प्रभाव-इतना अधिक हो गया कि मानवीय जीवन की कल्पना संचार माध्यमों के बिना मुश्किल सी हो गयी है। नित नये आविष्कारों के कारण इसका त्वरित विकास हो रहा है। जिससे मनुष्य पूरी तरह इस पर निर्भर हो गया है। जनजातीय क्षेत्रों के विकास तथा आर्थिक-स्थितियों में सुधार करने केलिए संचार माध्यमों की अत्यन्त आवश्यकता है। लेकिन हर सिक्के के दो पहलू होते हैं। संचार माध्यमों के दो पहलू हैं जो

नकारात्मक और सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। और संचार माध्यमों का विकास आदिवासी क्षेत्रों पर लाभ से ज़्यादा हानि पहुँचायी है। क्योंकि संचार व्यवस्थाओं के विस्तार से आदिवासी इलाकों पर बहुत सारे बाहरी तत्वों का अनावश्य हस्तक्षेप हो रहा है जिससे आज आदिवासियों का शोषण ज़ोरों पर हो गया है। संचार आदिवासी जीवन में अनावश्य रूप से दखल कर उनकी सभ्यता एवं संस्कृति से जुडे सूचनाओं को सनसनीखेज बनाकर पूरी दुनिया के सामने परोस रहा है। अशिक्षा एवं अज्ञानता के चंगुल में फंसे आदिवासियों पर संचार माध्यमों के तहत पडनेवाले बुरे प्रभावों को झेलते वे अब थक चुके हैं। मूल्यों को नज़र अन्दाज़ करनेवाला सभ्य मनुष्य आदिवासी जीवन के मूल्यों के साथ खिलवाड कर रहा है। उनकी पुश्तैनी ज़मीन, प्राकृतिक संपदा, प्राचीन परम्परा एवं सभ्यता का लूट कर रहे हैं। चुनौतियों एवं तूफानों से बारम्बार उत्पीडित यह समाज के प्रति समकालीन साहित्यकार संघर्ष के प्रतिमूर्ति बन रहे हैं। जसिन्ता केरकेट्टा, वंदना टेटे जैसे रचनाकार उनमें प्रमुख हैं।

जसिन्ता केरकेट्टा की बहुचर्चित कविता है 'जमुनी रोको खुद को बिकने से।' प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवयित्री ने आदिवासी स्त्री जीवन को संचार माध्यमों की ताज़ा खबर बनने की ओर संकेत किया है। कवयित्री कहती हैं -

> ''तुम रेडियो, टीवी, इंटरनेट पर
> हर दिन की खबरों में
> देखती हो, पढती हो, सुनती हो।''[54]

आज आदिवासी जीवन के हर दुःख दर्द को खबरें बनाकर बाज़ार केलिए मुनाफे का रास्ता खोल रखा है। उनके हर शोषण और हर उत्पीडन को ताज़ा खबर बना रहे हैं। जसिन्ता केरकेट्टा के समान वंदना टेटे भी अपनी कविता 'हमारे बच्चे नहीं जानते, तोतो-रे नोनो-रे' के माध्यम से आदिवासी जीवन में संचार-माध्यमों के प्रभाव पर सोचती हैं। वे लिखती हैं -

> ''बन्द कमरे में आँखें खोलते ही
> टी.वी, कम्प्यूटर, नेट की दुनिया में''[55]

संचार माध्यमों का क्रान्तिकारी विकास ने आदिवासी इलाकों पर और अंधेरा ला दिया है। संचार-माध्यम आज आदिवासी जीवन के चौराहे पर खडा है। ज़माना परिवर्तनशील के दौर से गुज़रकर मूल्यों का विखण्डन कर रहा है। संचार के बीच आदिवासी जीवन एक मुहावरा बन गया है। और ऐसे भयावह स्थिति का बयान करने में रचनाकार सफल हुए हैं।

3.30 स्वास्थ्य

मानवीय जीवन में स्वास्थ्य का महत्वपूर्ण स्थान है। शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य का समान रूप से खयाल रखना अनिवार्य है। स्वच्छता तथा सफाई के बिना अच्छे स्वास्थ्य का खयाल नहीं रख सकते। क्योंकि स्वच्छता स्वास्थ्य का महत्वपूर्ण अंग है। घने जंगलों एवं पहाडों में बसनेवाले आदिवासी समुदाय पहले से ही स्वच्छता तथा सफाई के बारे में काफी पीछे हैं। इसलिए उनमें स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक समस्याएँ दिखाई देती हैं। लेकिन वर्तमान

में आदिवासियों का स्वास्थ्य भयानक रूप से बिगडता जा रहा है। महानगरों की ओर पलायन एवं विस्थापन, प्राकृतिक आपदाएँ, मदिरापान, प्रदूषण, विकिरण, मानसिक तनाव, जल संकट आदि आदिवासियों के स्वास्थ्य बिगडने के प्रमुख्र कारणों में से हैं और इन्हीं मुद्दों को केन्द्र में रख्रकर समकालीन रचनाकार आदिवासियों के स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं पर विचार-विमर्श कर रहे हैं। शिवलाल किस्कू, ग्रेस कुजूर, शंकर लाल मीणा, आलोका कुजूर, निर्मला पुतुल, रमणिका गुप्ता जैसे अनेक साहित्यकार उनमें प्रमुख्र हैं। शंकर लाल मीणा और अलोका कुजूर की कविताओं में इसकी झलक ज़्यादा परिलक्षित हुई है। आलोका कुजूर की कविता 'वो गीत हैं तेरे' सबसे चर्चित कविता है। कवयित्री का कहना है -

"एच ई सी को हम लोगों ने दिया ठाँव
बदले में उसने दिया
बड़ा-बड़ा बीमारी"[56]

एच ई सी माने हेवी इंजीनियरिंग कॉपरेशन लिमिटेड है जो सबसे बड़ा एकीकृत इंजीनियरिंग काम्पलेक्स में से एक। यह इस्पात, ख्रनन, रेलवे, ऊर्जा, रक्षा, अंतरीक्ष अनुसंधान और परमाणु क्षेत्रों केलिए भारत में पूंजीगत उपकरणों केलिए अग्रणी आपूर्तिकर्ता का कार्य करता है। यह लगभग 21,00,000 वर्ग मीटर के क्षेत्र में फैला हुआ है। इतनी जगह सिर्फ आदिवासियों को उनकी ज़मीन से ख्रदेडे जाने से प्राप्त हो सकती है। भारत देश के विकास केलिए

आदिवासी ने सब कुछ न्योछावर कर दिया। इसके बदले में उन्हें सिर्फ गरीबी, बेरोज़गारी और बडी-बडी बीमारियाँ हासिल हुई हैं।

अधिकांश जनजातियाँ जंगलों में नंगे घूमती हैं और कुछ अल्प वस्त्र पहनती हैं। लेकिन विस्थापन एवं पलायन के कारण ज़मीनों से खदेडे जाने से वे लोग महानगरों की गलियों में भटक रहे हैं। यहाँ पर वे प्रदूषण से ग्रस्त जीवन गुज़ारने को विवश हैं। सभ्य समाज के सम्पर्क में आकर आज वे वस्त्रों से पूरे शरीर को ढक रहे हैं। लेकिन वस्त्रों के प्रयोग और उससे सम्बन्धित स्वच्छता की जानकारी के अभाव में मैले कुचले वस्त्र पहनने से उनमें कई चर्म रोग दिखने लगे हैं। प्रदूषण एवं प्राकृतिक आपदाओं के कारण उनमें जल सांक्रमिक रोग पाये जाने लगे हैं और बच्चे पेयजल के अभाव में कुपोषण के शिकार है। अनगिनत बीमारियों से ग्रस्त आदिवासियों में मृत्यु-दर ज़ोरों पर है।

शंकर लाल मीणा ने अपनी कविता 'परदेशी सौदागर' के माध्यम से आदिवासियों के स्वास्थ्य पर पडनेवाले बुरे प्रभावों की ओर संकेत किया है। कवि कहते हैं -

> ''सौदागर के यहाँ से
> तंबाकू के साथ
> तपेदिक की टैबलेट्स''[57]

मदिरापान आदिवासी सामाजिक परम्पराओं का प्रमुख भाग है। वे अपने घरों में मदिरा बनाते हैं और उनमें नशा का प्रभाव नहीं होता। आदिवासी

रीति-रिवाज़ों का यह अभिन्न अंग आज उनके स्वास्थ्य केलिए खतरा बन गया है। सभ्य समाज मदिरापान को व्यावसायिक स्तर पर बढावा दे रहे हैं। आज यह भारत देश की आर्थिक उन्नति का प्रमुख्र हिस्सा बन चुका है। आदिवासियों के बने मदिरापान में आज नशा का प्रभाव अत्यधिक है। मदिरापान के अलावा अन्य नशीले पदार्थ भी आज समाज में उपलब्ध हैं। जिनका उपयोग सिर्फ आदिवासी ही नहीं, बल्कि सभ्य समाज के बच्चे, जवान और बूढे भी कर रहे हैं।

शंकर लाल मीणा अपनी कविता के माध्यम से यह बताना चाहते हैं कि मनुष्य ने खुद अपने जान पर खतरा मोल ले लिया है। लहरी पदार्थों के उपयोग से इन्हें मुफ्त में बीमारियाँ मिल रहीं हैं। व्यंग्यात्मकता के सहारे तो सही सामाजिक यथार्थ को भले-भांति प्रस्तुत करने में कवि यहाँ पर सफल हुए हैं। कालरा, पेचिश, अतिसार, नहरुआ, तपेदिक, खुजली, चेचक, एनीमिया आदि आदिवासी जीवन के सामान्य रोग हैं। इनके अलावा अन्य जान लेवा बीमारियाँ भी आज इनके आस-पास घूम रही हैं। अखिर मनुष्य की करतूतों की वजह ही तो है कि दुनिया भर में पकड न मिलनेवाली जान लेवा बीमारियाँ फैल रही हैं। कोविड-19 इसके लिए सशक्त उदाहरण है। रचनाकार यहाँ पर मात्र आदिवासियों की नहीं बल्कि पूरे मानवीय जीवन के स्वास्थ्य पर पडनेवाले बुरे प्रभावों पर जागरूक हुए हैं। दोनों ने विषय के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की है।

3.31 पर्यटन

पर्यटन सभी देशों में धन पैदा करने का एक महत्वपूर्ण मार्ग है। आज पर्यटन भारत देश की आर्थिक उन्नति केलिए महत्वपूर्ण हिस्सा निभा रही है। भारतीय समाज के कई सारे उद्योग पर्यटन पर केन्द्रित हैं। लेकिन देश की अर्थ व्यवस्था को विकसित एवं मदद करनेवाला यह स्रोत आदिवासी जीवन में काफी ज़्यादा आँच एवं हानि पहुँचा रहा है। अनेक संस्कृतियों से संपन्न भारत देश में प्राचीन संस्कृति के संवाहक भी मौजूद हैं। आदिवासी प्राचीन संस्कृति के संवाहक हैं। विभिन्न भौगोलिक परिस्थिति में जीवनयापन करते आदिवासियों की अपनी अलग संस्कृति एवं सभ्यता है। जिन्हें वे लम्बे अरसे से निभाते आ रहे हैं। उनका रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, नृत्य-संगीत सभी में भिन्नता पायी जाती है। हर एक आदिवासी वर्ग की अलग-अलग संस्कार एवं प्रथाएँ हैं। ऐसे विशिष्ट वातावरण को निभानेवालों की ओर पर्यटकों की निगाहें आसानी से पहुँच जाती हैं। आखिर दिलों में पीढी-दर-पीढी समा दी गयी बातों को आँखों देख महसूस करना एक विशिष्टता ही तो है। बियाबान जंगलों, गुफाओं, पहाडों में जीवन व्यतीत करते आदिवासी मनुष्य अक्सर पर्यटकों केलिए एक नयी सीख है।

बरसों पहले विदेशी भारत देश में घूमने आए थे। किन्तु यहाँ की ज़मीन-जंगल एवं पहाडों में समाये खनिज पदार्थों को देखकर उनके सफर ने व्यापार व्यवसाय के नये रास्ते खोल दिए। इस प्रकार पर्यटन को बढावा देने केलिए सभ्य लोग आदिवासियों के साथ पर्यटन के नाम पर अमानवीय कृत्य एवं

व्यवहार कर रहे हैं। समकालीन साहित्यकार इस भयानक स्थिति से घटी समस्याओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं। खन्ना प्रसाद अमीन, महादेव टोप्पो जैसे रचनाकार उनमें प्रमुख हैं। महादेव टोप्पो की कविता 'टूरिस्ट का बख्शीश' की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

"अपने मित्रों के समक्ष
करने केलिए बखान
हैं ढेंरों स्मृतियाँ-
तुम्हारे नाच-गान, रीति रिवाज़ तथा
तुम्हारी गरीबी के किस्से।"[58]

गरीबी, बेरोज़गारी एवं बीमारियों को झेलता आदिवासी जीवन पर्यटकों केलिए एक मनोरंजन बन गया है। पर्यटक सिर्फ आदिवासी जीवन शैली से परिचित होते हैं। उनकी कठिनाई भरी ज़िन्दगी यह सिर्फ उनकी अमानत है। हो सकता है किसी अखबार या पत्रिका में इनकी चर्चा की जाए। किन्तु आदिवासी इन खबरों से अक्सर बेखबर रहते हैं। विस्थापन, बेदखल, भूमि अधिग्रहण आदि कई कारणों से यह समाज आज विलुप्त होने लगा है। सभ्य समाज का अनावश्यक अतिक्रमण के कारण यह समाज खुद अपना अस्तित्व मिटाने को मजबूर हैं। आज आदिवासियों के साथ उनकी सभ्यता एवं संस्कृति भी गायब हो रही है। उनके वाद्ययंत्र, बर्तन, औजार, आभूषण आदि उनकी पहचान है जो पर्यटन क्षेत्र के मुख्य प्रदर्शक वस्तु बन गए हैं। इस सच्चाई का दिलासा करते हैं खन्ना प्रसाद अमीन। उनकी कविता 'गायब होता जंगल' की पंक्तियाँ देखिए -

“गायब होते जा रहे हैं अब
धनुष-बाण
ढोल, नगाडा, पियानो, बाँसुरी
रणभेरी और शहनाई भी
अब वे बनकर रह गए हैं
केवल म्यूज़ियम की प्रदर्शिनी।”[59]

यहाँ पर कवि पर्यटन के दौरान आदिवासी इलाकों को चकनाचूर करने का सभ्य समाज के नवीन तरीकों से परिचित करवाया है। आर्थिक लाभ एवं मुनाफे केलिए आदिवासियों पर नुक्सान लाना ही उनका मूल उद्देश्य है। यहाँ पर रचनाकार पर्यटन के नाम पर आदिवासी एवं आदिवासी इलाकों पर चलनेवाले अन्याय एवं अत्याचार को सही ढंग से उकेरने की कोशिश की है।

3.32 खनन

जल-जंगल-ज़मीन सांस्कृतिक धरोहर है और इन सांस्कृतिक धरोहरों से आदिवासियों का नाता अटूट है। क्योंकि जल-जंगल-ज़मीन खनिज संपदाओं का भण्डार है। जिनका संरक्षण आदिवासी लम्बे अरसे से करते आ रहे हैं। लेकिन विकास के नाम पर सरकार और अधिकारी लोग प्रकृति तथा पर्यावरण की चिन्ता किए बिना किसी न किसी रुप में जंगलों तथा पहाडों को तहस-नहस कर रहे हैं। पृथ्वी के गर्भ से धातुओं, अयस्कों औद्योगिक तथा अन्य उपयोगी खनिजों को बाहर निकालकर सभ्य समाज लाखों, करोडों कमाने की लालच

दिखा रहे हैं। जंगलों और पहाडों को देवी-देवता माननेवाले आदिवासियों केलिए यह सबसे असहनीय कार्य है।

भारत खनिज संपदाओं से संपन्न देश है। भारत में प्राचीन समय से ही खनिकर्म प्रचलित हैं। लेकिन उस समय खनिजों की खपत बहुत कम थी। लेकिन आधुनिक युग में खनिजों तथा धातुओं की खपत इतनी अधिक हो गई है कि प्रतिवर्ष उनकी आवश्यकता करोडों टन की हो गयी है। सबसे दयनीय स्थिति यह है कि आदिवासियों को उनके जल-जंगल-ज़मीन से उखाडकर उन्हें बेघर कर दिया है। और खपत की पूर्ति केलिए बडे-बडे खानों में काम करना आदिवासियों की मजबूरी बन गई है। अपने ही घर में वे पराये बन गए हैं। समकालीन रचनाकार आदिवासी इलाकों में छायी खुदाई या खनन से उत्पन्न समस्याओं को बडी होशियारी से ली है। महादेव टोप्पो, जसिन्ता केरकेट्टा जैसे रचनाकार उनमें प्रमुख हैं। महादेव टोप्पो की कविता 'भारत की समृद्ध परम्परा निभाता झारखण्ड' में कवि इस प्रकार बताते हैं -

"कोई झरिया-धनबाद से कोयला ले गया
तो कोई चिडिया माइन्स
किरीबुरु से लौह पत्थर
कोई सारंडा के घने जंगल को क्षीण बना गया
तो कोई जादूगोडा से युरेनियम ले भागा।"[60]

सभ्य समाज का धरती को स्वर्ग बनाने का लालची सपना पूरे प्राकृतिक संपदा को ही विनाश के कगार पर पहुँचा दिया है। उनकी मुनाफावादी दृष्टि

संपूर्ण धरती को ही धीरे-धीरे निगलती जा रहा है। प्रकृति के आश्रित मनुष्य आदिवासियों की दशा आज दुर्दशा में बदल गई है। विकास रुपी महान शोषण ने आदिवासी इलाकों को तहस-नहस कर उन्हें विकिरण, प्रदूषण, विस्थापन एवं अनगिनत बीमारियों का शिकार बना दिया है। संपूर्ण आदिवासी जीवन खतरनाक स्थिति की मोड में है। महादेव टोप्पो अपनी कविता में मात्र झारखण्ड की बात बतायी है। मगर जसिन्ता केरकेट्टा हमें समस्त आदिवासी इलाकों की ओर ले चलती हैं। उनकी कविता 'साजिशों की सिक्स लेन' की पंक्तियाँ देखिए-

"गाँव के हर दरवाज़ों पर
पहुँचते हैं खनन के पैरोकार।"[61]

आर्थिक लाभ एवं भौतिक सुख सुविधाओं के उद्देश्य से सरकारी योजनाओं से सभ्य समाज सहमत है। किन्तु उससे मात्र आदिवासी जीवन को नहीं बल्कि संपूर्ण मानवीय जीवन को खतरा है। आधुनिक युग की विकास योजनाएँ संपूर्ण प्रकृति के विरुद्ध हैं। प्राकृतिक संसाधनों का लूट-मार कर प्रकृति पर अधिकार जमाना सबसे बडा अन्याय है। इस अन्याय के खिलाफ समकालीन आदिवासी कविता सवाल करने लगी है। समकालीन अन्य रचनाकार जैसे फ्रांसिस्का कुजूर, वंदना टेटे आदि के कविताओं में प्राकृतिक लूट मार का दस्तावेज उपलब्ध है। किन्तु महादेव टोप्पो और जसिन्ता केरकेट्टा की कविताओं में धरती में उपलब्ध धातुओं की खपत का यथार्थ चित्र अधिक निहित हुआ है।

3.33 पूँजीवादी शोषण

पूँजीवाद एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसमें व्यक्तिगत लाभ केलिए व्यापार करते हैं और सरकार का नियन्त्रण नहीं होता। पूँजीवादी समाजों का उदय यूरोप और ग्रेट ब्रिटेन के साथ कई देशों में तेरहवीं सदी से ही शुरु हो गयी थी। लेकिन 18 वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति के समय मुख्य रूप से सामने आया। पूँजीवाद मुक्त बाज़ार व्यवस्था में पनप रहा है। लोगों को अपनी संपत्ति का निर्माण स्वतंत्र रुप से करना चाहिए। वास्तव में सामंती व्यवस्था का दूसरा रुप है पूँजीवादी व्यवस्था।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में अत्यधिक प्रतिस्पर्धा बाज़ार की होती है। इसके फलस्वरुप अधिक उत्पादन प्राप्त करने केलिए पढे-लिखे और दक्ष लोगों को रोज़गार उपलब्ध होता है। बुजुर्ग, विकलांग, अशिक्षित और कौशल विहीन लोगों को हाशिए पर धकेल दिया जाता है। ऐसे में पहले से ही अशिक्षित और बेदखल आदिवासी समाज और भी हाशियेकृत हो जाता है। आदिवासी समाज के प्रति पूँजीपतियों की असली शक्ल को समकालीन साहित्यकार अपनी कविताओं में अभिव्यक्त कर रहे हैं। हरिराम मीणा और हज़ारी लाल मीणा राही का नाम उनमें उल्लेखनीय हैं।

हज़ारी लाल मीणा राही अपनी कविता 'दुखडा' में पूँजीवाद के आगमन और आधिपत्य से भयभीत नज़र आते हैं। कवि कहते हैं -

''यदि सिर्फ नेता ही लूट लेंगे देश को

तो पूँजीवाद आ जाएगा।''[62]

नगर पूँजीवादी गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र है। शुरुआती पूँजीवादी व्यापारियों ने एक देश से दूसरे देश जाकर अपने वस्तुओं का क्रय-विक्रय शुरु किया। शहरों में पूँजी का आदान-प्रदान होने लगा तो पूँजीवादी विकास की प्रमुख शक्ति और विक्रय केलिए वस्तुओं का सीधा उत्पादन करनेवाली कार्यशालाएँ खुलने लगीं। उत्पादन या निर्माण के साधन मुख्य रूप से निजी स्वामित्व में होते हैं। जिन व्यक्तियों के पास निर्माण के साधन जैसे कारखाने, मिल, उद्योग आदि होते हैं, वो इनसे उत्पादित माल को बेचकर लाभ प्राप्त करते हैं। विभागीय भंडारी बैंकों, फेक्ट्रियों के उत्पत्ति मूलक के रूप में व्यापारी ऋण और उत्पादन प्रक्रियाओं ने पूँजीवादी विकास को पनपने में मदद की। पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली स्वयं संचालित होने से सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपनी संतुष्टि एवं इच्छानुसार आर्थिक क्रियाओं को सम्पन्न करने का पूर्ण अधिकार होता है। अतः पूँजीवाद आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान करती है। लेकिन यह आर्थिक स्वतन्त्रता ने समाज के एक हिस्से को ही दमित कर दिया।

हज़ारी लाल मीणा राही ने अपनी कविता में पूँजीवादी सभ्यता को पनपने से डर व्यक्त किया है तो हरिराम मीणा ने अपनी कविता 'आदिवासी और यह दौर' में पूँजीपतियों द्वारा आदिवासी इलाकों के लूट को दर्शाया है -

''पूँजी के प्रेत की आँतों में
चुपचाप पिघलते घने जंगल

खनिज सम्पदा, वन्य जीव

और इनके सपने"[63]

आदिवासी इलाके प्राकृतिक संसाधनों से भरे हैं। इन इलाकों पर पूँजीवादी ताकतों की निगाहें ज़्यादा मंडराती हैं। आदिवासी बहुल राज्य की सरकारें इस विनाश को रोकने के बजाय पूँजीवादियों के साथ मिली हुई हैं और उन्होंने आदिवासियों को विस्थापित एवं पलायन होने को मजबूर कर दिया है। आदिवासियों की निर्धनता, निस्सहायता एवं निश्शब्द होने का फायदा उठाकर पूँजीवादी आदिवासी समाज के साथ मज़ाक करते हैं। यह व्यवस्था छल कर उनसे सब कुछ हडप रही है और उन पर ही वार कर रही है।

हज़ारी लाल मीणा राही ने पूँजीवादी सभ्यता का आगमन और हरिराम मीणा ने उसके उदय से उत्पन्न होनेवाले आदिवासी समस्याओं को हमारे सम्मुख लाने का प्रयास किया है। अनुज लुगुन, महादेव टोप्पो, ग्रेस कुजूर जैसे समकालीन अन्य रचनाकार आदिवासियों की अनेक समस्याओं को अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया है। साथ में उनकी कविताओं में पूँजीवादी शोषण का वातावरण भी उभर आता है।

3.34 जातिवाद

भारतीय सामाजिक व्यवस्था जातिवाद को महत्व देनेवाला है। लेकिन भारत में आदिवासी एवं गैर आदिवासियों को लेकर सबसे बड़ा अंतर जातिप्रथा को लेकर है। भारत में व्याप्त ज़हरीली जाति प्रथा आदिवासी सामाजिक

व्यवस्था में नहीं पाई जाती है। दरअसल हो, मुंडा, संथाल, उराँव आदि अलग-अलग आदिवासी समुदाय हैं। हर समुदाय की अपनी भाषा एवं संस्कृति होती है जो अन्य भाषा तथा संस्कृति से अलग होती है। अर्थात् हो, संथाल, मुंडा आदि को हिन्दू समाज की जाति व्यवस्था के भाँति ब्राह्मण, चमार आदि मानना गलत है। लेकिन जब से उपनिवेशियों की घुसपैठ होने लगी तभी से आदिवासी समुदायों में जातिप्रथा का प्रभाव दिखने लगा। वर्तमान में भूमण्डलीकरण, नगरीकरण, संस्कृतीकरण, औद्योगीकरण आदि जातिवाद के विकास केलिए प्रमुख कारण हैं। सभ्य और विकसित समाज की जातिवादी मानसिकता के कारण दमित और बेदखल होते आदिवासी हर जगह कुचले एवं रौंदे जा रहें हैं। जातिवादी सोच के कारण उनके हर अस्त्र-शस्त्र, जल, जंगल, ज़मीन, संस्कृति और सभ्यता सभी नष्ट हो रही है। समकालीन साहित्यकार आदिवासियों की इस समस्या को लेकर काफी बेचैन नज़र आते हैं। डॉ. खन्ना प्रसाद अमीन, महादेव टोप्पो जैसे रचनाकार उनमें प्रमुख हैं। महादेव टोप्पो की कविता 'मैं पूछता हूँ' में सभ्य समाज की नज़र में आदिवासियों की पहचान को दर्शाया है -

> ''मनु की भाषा में शूद्र
> कम्यूनिस्टों की भाषा में शोषित
> भाजपाइयों की भाषा में
> पिछडे हिन्दू।''[64]

वास्तव में सभ्य समाज ने आदिवासियों को जातियों में विभक्त कर दिया है। संविधान में आदिवासी को जनजाति बताया है। लेकिन आदिवासी इस बात

को साफ इनकार करते हैं। उनका मानना है कि उनका कोई जाति नहीं है वे केवल आदिवासी हैं। क्योंकि शिक्षित आदिवासियों को जब दफ्तरों में सहकर्मियों के साथ काम करना पडता है तो उनके बीच या उनकी नज़र में आदिवासी केवल मंदबुद्धि, पियक्कड या रिज़र्व कोटे के आदमी हैं। उनके लिए यह बात सबसे असहनीय है। उनको निचला करने या नीचा दिखानेवाली इस बर्ताव के खिलाफ अपना आक्रोश साहित्य के ज़रिए वे व्यक्त कर रहे हैं।

खन्ना प्रसाद अमीन ने अपनी कविता 'जातिवादी सोच' में सभ्य और विकसित समाज की जातिवादी मानसिकता के चंगुल में दमित एवं कुचले जानेवाले आदिवासियों का यथार्थ अंकन किया है -

> "जातिवाद के ज़हर ने
> उन्हें न जीने दिया
> स्वाभिमान और सम्मान से"[65]

आदिवासी समुदाय विभिन्न कारणों से दबाव में आये थे। वाणिज्य का फैलाव, उनकी ज़मीन पर सेनाओं का आना जाना, उनके बीच ब्राह्मणों का पुनर्वास आदि प्रमुख रहा। साथ में आदिवासी समाज के प्रमुख सदस्यों को हिन्दू समाज की मुख्यधारा में लाने का प्रयास भी चलता रहा। इस प्रकार आदिवासी समुदायों के बीच जाति का फैलाव होने लगा। जो विरोध किया उन्हें पहाडों तथा जंगलों में खदेडे जाने को मजबूर कर दिया और सभ्य समाज ने इन्हें किनारों में धकेल कर अछूत बना दिया। विकास की रेखाओं ने

आदिवासियों में जातिवाद का विषपान खोल दिया है। उसे दूर करना आदिवासी अस्तित्व और अस्मिता केलिए अत्यंत ज़रूरी है।

3.35 धर्मान्तरण

धर्मान्तरण या धर्म परिवर्तन आदिवासी समाज की एक महत्वपूर्ण समस्या बन गई है। आदिवासी केवल आदिवासी बनकर जीना चाहते हैं। लेकिन आदिवासी इलाकों में समय-समय पर होनेवाले बाहरी हस्तक्षेप से आदिवासियों को अपने इच्छानुसार और मजबूरन धर्मपरिवर्तन स्वीकार करना पडता है। किन्तु धर्मान्तरण के कारण उनकी मूल छवि मिटने लगी है और धर्म के साथ उनकी संस्कृति भी परिवर्तित होती है। आदिवासियों का रहन-सहन, वेशभूषा, खान-पान, विवाह, जन्म आदि उनकी पहचान है। लेकिन धर्मान्तरण के कारण इन संस्कारों का वजूद मिटना स्वाभाविक हो गया। आदिवासी अपनी अस्मिता को बचाने केलिए आर्यों से लेकर मुसलमानों तक सामन्तों से लेकर अंग्रेज़ों तक जम कर संघर्ष करते आये। लेकिन उनकी भूख, गरीबी, बेरोज़गारी, तथा असभ्यता को दूर करने के सपने दिखाकर घुसपैठियों ने उनकी ज़मीन व, जंगलों पर कब्जा करता रहा और हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई के रूप में अपने धर्मों में मिलाने का प्रयास करते रहें। आदिवासी समाज की धर्म सम्बन्धी अपनी अलग मान्यताएँ हैं। अधिकांश मानवशास्त्री जनजातीय समाज के धार्मिक स्वरूप को जीववाद बताया है। क्योंकि आदिवासी अपने पूर्वजों की जीवात्मा का पूजन, वंदना एवं प्रार्थना करते हैं। प्राकृतिक तत्वों पर भी वे अपने विश्वासों को संजोया हुआ है। लेकिन उन्हें आज विभिन्न धर्मों में बाँटा जा रहा है। जिस प्रकार

साम्राज्यवादियों ने आदिवासियों को गुलाम बनाकर धर्मपरिवर्तन करते आये उसी प्रकार आज वैश्वीकरण के बहाने उनमें धर्मान्तरण की प्रक्रिया चल रही है। उनकी आस्थाएँ एवं विश्वासों को तोड-फोडकर उन्हें अपनी पैतृक परंपराओं से जुदा कर रहे हैं। धर्मान्तरण से उत्पन्न आदिवासी जीवन की विभिन्न ज्वलंत समस्याओं के प्रति सशक्त प्रतिक्रिया के रूप में समकालीन कविताएँ रची जा रही हैं। अनुज लुगुन, हज़ारी लाल मीणा राही जैसे रचनाकारों का नाम उनमें उल्लेखनीय हैं। अनुज लुगुन की सबसे चर्चित कविता 'अघोषित उलगुलान' में कवि आदिवासियों के धर्मान्तरण को लेकर काफी चिन्तित नज़र आते हैं। कवि के शब्दों में -

"उनके धर्मान्तरण पर
चिन्ता है उन्हें
उनके हिन्दू या ईसाई हो जाने की"[66]

आदिवासी समुदाय ने बाहरी लोगों की धमकी एवं बहकावे में आकर खुद अपने स्वत्व पर आँच पहुँचा दी है। धर्म के नाम पर आदिवासी जीवन दिन-ब-दिन बिगडता जा रहा है और उनके जीवन की पदचाप गुफाओं तथा पहाडों की तरह टूटती बिखरती जा रही है। आदिवासी अपनी पहचान की खातिर लड रहे हैं। किन्तु उनकी लडाई को सभ्य समाज भद्दा मज़ाक समझता है। आदिवासी ईमानदार है। लेकिन सभ्य समाज ने उनके भविष्य को बेईमानी में गढ दिया है। वैश्वीकरण नामी मकडीजाल में आदिवासी धीरे-धीरे फंस रहा है। इसका परिप्रेक्ष्य पढे लिखे लोगों का हिंसक या असभ्य सोच के दायरे से घेरा

हुआ है और आदिवासी समुदाय को इस जाल से बचना नामुमकिन सा हो गया है। हज़ारी लाल मीणा राही अपनी कविता 'हाइकू' में धर्म को संस्कृति मानकर उसे नष्ट न करने की सलाह देते हैं। कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

"धर्म संस्कृति है
अविचल मूल
मत दो तूल"[67]

आदिवासियों केलिए उनकी संस्कृति ही उनका धर्म है। जिसे नष्ट करना या धर्म परिवर्तन होना उनके लिए सबसे असहनीय कार्य है। धर्मान्तरण के नाम पर आदिवासी इलाकों में अराजक एवं हिंसक प्रवृत्तियाँ जगह बना रही हैं और आदिवासी जीवन अति दुस्सह बन गया है। सभ्य समाज की ज़मीन हथियाने की सोच ने आदिवासियों को उनकी पैतृक परम्पराएँ एवं संस्कारों से वंचित कर दिया है। प्रकृति की गोद में बसते वे मनुष्य आज भूख, गरीबी, बेकारी की दल-दल में तर-तर हो रहे हैं। बाहरी लोगों ने आदिवासियों के प्रति दया प्रेम, सहानुभूति इत्यादि का दिखावा कर उन्हें दिल और दिमागी तौर पर गुलाम बना दिया है। वास्तव में आदिवासियों का धर्म परिवर्तन कराने के पीछे मूल उद्देश्य मानसिक गुलाम बनाना ही तो है।

अनुज लुगुन, हज़ारी लाल मीणा राही के अतिरिक्त अन्य सभी रचनाकारों ने आदिवासियों में छायी धर्मान्तरण की समस्या पर विशेष ध्यान दिया है। परन्तु अनुज लुगुन एवं हज़ारी लाल मीणा राही की कविताएँ इस विषय पर काफी गहराई तक छूने की कोशिश की है।

3.36 नक्सलवाद

नक्सलवाद या माओवाद की चर्चा आज ज़ोरों पर है। वैश्वीकरण के इस युग में आर्थिक नीतियों का शिकार सबसे ज़्यादा कमज़ोर लोग ही बनते हैं। अमीरों का और अमीर बनना और गरीबों को अन्धकार में डुबो दिये जानेवाली आर्थिक नीति के कारण आदिवासी इलाकों में नक्सलवाद दिन-ब-दिन बढता जा रहा है। उपनिवेशियों की घुसपैठ के बाद आदिवासी ज़मीनों पर अधिकारी वर्ग नाजायज़ तरीकों से अधिकार स्थापित करने लगे। इसके फलस्वरुप भूस्वामियों के अत्याचारों के विरुद्ध आदिवासी लोगों ने अपने हक की लडाई शुरु की। सभ्य लोगों ने आदिवासी संसाधनों का खूब दोहन किया और तमाम पाबन्दियाँ एवं रोक लगा दीं। आदिवासियों को भूमिहीन बनाकर पहचान विहीन कर दिया। अपने ठिकानों से दूर होते आदिवासी हक की माँग करने लगे। सभ्य समाज के आगे आदिवासी केवल भोजन का जूठन था। दिखावे केलिए समितियाँ एवं रपटें बनीं किन्तु शक्तिशाली एवं सम्पन्न वर्गों का कुछ नहीं बिगडा। परन्तु आदिवासियों का सब कुछ बिगडता गया। आज वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में तमाम असुविधाओं को झेलता नित नये दमन के तौर तरीकों का शिकार बनता जा रहा है। आदिवासियों के सामने आज भोजन का जुगाड भारी बन गया है। सभ्य समाज का शोषण उत्पीडन आदि को आजमाइश करते आदिवासी खुद नक्सलवाद के मार्ग पर चलने को मजबूर हो गया है।

अनुज लुगुन, महादेव टोप्पो, भगवान गव्हाडे, सरस्वती गागराई जैसे साहित्यकार आदिवासी इलाकों में व्याप्त नक्सलवाद के विस्तार को लेकर काफी

चर्चा कर रहे हैं। उनमें भगवान गव्हाडे और सरस्वती गागराई की कविताएँ सबसे महत्वपूर्ण है। भगवान गव्हाडे की 'शायनिंग इण्डिया' कविता में नक्सलवाद के कारण हाशियेकृत जीवन भोगता आदिवासी समाज का यथार्थ अंकन हुआ है -

> ''नक्सलवादी करार देकर
> उन्हें कर दिया दरकिनार
> अभाव उपेक्षा की नरक यातना
> भोगते रहे जीवन भर।''[68]

नक्सलवाद को देश केलिए खतरा बताकर बेकसूर एवं निरपराध आदिवासियों को जान से मार दिया जा रहा है। अपने घरों से बेघर हुए आदिवासियों की पहचान सरकार नक्सलाईट के रुप में करती है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था एवं कुटिल आर्थिक नीतियों के कारण लाखों आदिवासी आत्महत्या की स्थिति में हैं। और कुछ हिंसक नक्सलियों के समर्थक बनने को विवश हैं। वास्तव में नक्सलवाद जल-जंगल-ज़मीन की खातिर बना संघर्ष है और इस संघर्ष में हमारी सरकार एवं सामाजिक व्यवस्था ज़िम्मेदार है।

सरस्वती गागराई 'योजनाओं से वंचित' कविता आदिवासी इलाकों को नक्सली प्रभावी-क्षेत्र बनाने की साजिश की ओर हमें ले चलती है। कवयित्री बताती हैं -

> ''खूँखार नक्सल प्रभावी क्षेत्र

नक्सलियों को नेस्तनाबूद करने हेतु
ग्रीनहंट, कोबरा, अनोकोंडा जैसे
ऑपरेशन चले हैं।''[69]

सन् 1970 के दशक में नक्सली नौजवान आदिवासियों के मध्य आए थे। अपनी भूख, गरीबी, एवं बेकारी के कारण असहनीय आदिवासी नक्सलवाद की ओर अग्रसर हो गए। वे उस समय उन्हें अपनी मुक्तिदाता समझते थे। किन्तु समय के अन्तराल में आदिवासी न्याय के कारागर में बन्द होते गए। वास्तव में आदिवासी इलाकों में नक्सली प्रभाव शक्तिशाली एवं सम्पन्न वर्ग की साजिश है। क्योंकि आदिवासी बहुल क्षेत्रों में व्याप्त खनिज तत्वों का लूट उनका मूल उद्देश्य है। आदिवासियों को उनकी ज़मीन से बेदखल करने केलिए कॉरपोरेट सेक्टर एवं सम्पन्न लोग उन्हें नक्सलवाद के दौरान साजिशें रच रहे हैं। और बेबस, बेदखल आदिवासी खबरों से बेखबर होकर स्वयं नक्सलियों के समर्थक बन रहे हैं। भारत के अर्द्धसैनिक बलों के दौरान नक्सलियों के खिलाफ राज्य सरकार द्वारा आक्रमक लडाइयाँ चल रही हैं और जिन्हें ग्रीनहंट, कोबरा, अनाकोंडा जैसे नामों का प्रयोग किया है।

भारतीय समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, लूट- खसोट जैसे हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ एवं अराजकता के कारण आदिवासी जीवन अति दुष्कर बन गया है। यहाँ पर रचनाकारों ने इसी सच्चाई को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। भारतीय समाज में व्याप्त अन्याय एवं असमता को जब तक रोका नहीं जा सकता तब तक नक्सलवाद के विस्तार को रोका नहीं जा सकता।

3.37 वैश्वीकरण

वैश्वीकरण का एक अलग आर्थिक आयाम है। जिसकी नींव बाज़ार है। व्यापार के बहाने आज देशों के बीच दूरियाँ घट रही हैं और उनके बीच आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक सम्बन्धों का विकास हो रहा है। आज पूरी दुनिया बाज़ार रुपी समाज के जाले में फंसी हुई है और हर एक व्यक्ति ग्राहक है। मनुष्य को मनुष्यों से बाँटनेवाली यह संस्कृति आदिवासी जीवन को खरोंचता चला जा रहा है। वैश्वीकरण के इस युग में पहले से ही हाशियेकृत यह समाज आज और हाशिएपन में पहुँच गया है। उनके अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न पहुँचने लगा है। उनकी परम्पराएँ, रीति-रिवाज़ें और मिथकों को निष्प्राण बनाने का प्रयत्न चल रहा है। आदिवासी जीवन पर वैश्वीकरण एक तूफान बन कर छा गया है। उनकी इच्छाओं, स्वप्नों और सांस्कृतिक वैविध्य पर इतना संकट मंडरा रहा है कि वे असहाय बन गये हैं। पहले से ही सीमित समुदाय के दायरे में फंसा यह समाज आज गरीबी और विवशता के कारण और सीमित हो गया है। वैश्वीकरण की संस्कृति से आदिवासी तालमेल बिठा नहीं पा रहा है। तीव्रगति से तमाम परिवर्तन उनमें जबर्दस्त बेचैनी पैदा कर दी है। अन्धकार से प्रकाश की ओर आने की अथक कोशिश उनमें चल रही है। समकालीन रचनाकार आदिवासी जीवन में वैश्वीकरण की चुनौतियों को गम्भीरता से देख-परख कर रहे हैं। उससे उत्पन्न उनकी अनेक विकट स्थितियों और कुरुपताओं को मार्मिक रूप से रेखांकित कर रहे हैं। वैश्वीकरण के हमले का प्रतिरोध करते आलोका

कुजूर, भगवान गव्हाडे, हरिराम मीणा, ज्योति लकडा, निर्मला पुतुल, रमणिका गुप्त, जसिन्ता केरकेट्टा, ग्रेस कुजूर आदि अनेक कवि नज़र आते हैं।

शान्ति खलखो ने अपनी कविता 'वैश्वीकरण' में वैश्वीकरण नामी व्यवस्था के विकास से विनाश की कगार पर पहुँचे आदिवासी सभ्यता एवं संस्कृति की ओर संकेत किया है। लेखिका लिखती हैं -

"पूरी दुनिया में 'करण' की भरमार,
अच्छे नहीं दिख रहे हैं आसार।
हमारे बीच में घुस गया ये 'करण' "[70]

यहाँ पर अपनी प्रतिकूल परिस्थितियाँ एवं बाधाओं के बावजूद आदिवासी स्वर वैश्वीकरण के विरुद्ध गूँज रहा है। वैश्वीकरण के इस दौर में विशेषकर आदिवासी इलाकों में काफी परिवर्तन हुआ है। वैश्वीकरण ने आदिवासी संस्कृति, परम्परा, भाषा आदि को महत्वहीन बना दिया है। उनके जीवन मूल्य निरर्थक एवं बेबुनियाद बन गये हैं। आदिवासी आज पूरी तरह गुलाम बन चुके हैं। आलोका कुजूर अपनी कविता 'आँगन' में वैश्वीकरण की पद चाप को सुनाती हैं-

"वैश्वीकरण ने ऐसा पाँव पसारा
दुनिया में
गाडी की इंजन की तरह
चलने लगे हम"[71]

वैश्वीकरण का माहौल ने समूचे मनुष्य को यांत्रिक जीवन व्यतीत करने को मजबूर किया है। उसके दिल और दिमाग में संवेदना केलिए जगह नहीं है। ऐसे में आदिवासी जीवन अति भयानक रुप से सिकुडता जा रहा है और वैश्वीकरण आदिवासी इलाकों में अपना आँचल इतना लहरा रहा है कि आदिवासी अपने हाशियेपन से और हाशियेपन की ओर सिमट गये हैं। वैश्वीकरण के कारण असुरक्षा और विनाश के कगार पर खडा यह विशाल समाज आज पराजय, विवशता एवं वेदना के बीच फंसा हुआ है। वैश्वीकरण का मूल उद्देश्य स्वार्थपूर्ण है। इस वातावरण में आदिवासी और आदिवासी संस्कृति का गुम होने की संभावना अत्यधिक है। बाज़ार केन्द्रित आर्थिक मुनाफे को बढावा देनेवाली यह व्यवस्था गरीब कृषक आदिवासियों को आत्महत्या करने की ज़मीन तैयार कर दी है। सामन्ती युग से लेकर वैश्वीकरण की इस नये विस्तृत युग में पहुँचने के बाद भी आदिवासी अपना ऋण चुका नहीं पाये हैं। ऋण का भार बहन करते वे थक चुके हैं। अक्षम हुए आदिवासी खुद अपनी बलि चढा रहे हैं। वैश्वीकरण के बहाने गरीबों का छल-कपट और उनका शिकार आसानी से हो रहा है। उनके संसाधनों को लूटकर धनिक व्यक्तियों को सौंपा जा रहा है। व्यापार की खुली लूट में भागीदार होना आदिवासी नहीं चाहते। वे इसके टकराव को तोडना चाहते हैं और समकालीन रचनाकार इसमें सक्षम हुए हैं। वैश्वीकरण की वजह आदिवासी समाज इस सृष्टि से ही ओझल होने की संभावना है। इसलिए इसके प्रति खडा होना ज़रूरी है।

3.38 उदारीकरण

उदारीकरण का सम्बन्ध अर्थव्यवस्था से हैं। प्रस्तुत नीति आर्थिक सुधार लाने के उद्देश्य से शुरु हुई थी। सन् 1990 के दशक में भारत में नई आर्थिक नीतियों की शुरुआत हुई थी। इन आर्थिक नीतियों में उदारीकरण का नाम आता है। उदारीकरण का मतलब अर्थ व्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप को कम कर बाज़ार प्रणाली को बढावा देने से है। इस प्रकार वर्तमान दौर में व्यापार क्षेत्र अत्यधिक तेज़ी से आगे बढ रहा है। लेकिन आदिवासी समाज का जीवन उतना ही त्रासद होता जा रहा है।

उदारीकरण का मूल उद्देश्य ऐसा आर्थिक वातावरण स्थापित करना है जिससे देश के व्यवसाय व उद्योग स्वतन्त्र रूप से विकसित हो सके। उदारीकरण व्यापारिक दुनिया में क्रान्तिकारी बदलाव लाया। सभी देशों केलिए अत्यधिक अवसर प्रदान किए। लेकिन भारतीय अर्थव्यवस्था के सामने नई चुनौतियाँ उत्पन्न कर दी हैं। उदारीकरण को अपनाने के बाद कृषि क्षेत्र का हिस्सा लगातार घट रहा है। इसके साथ परंपरागत उद्योग धन्धों का ह्रास हो रहा है। आदिवासियों की आजीविका परंपरागत उद्योग धन्धों, कृषि एवं प्राकृतिक तत्वों पर केन्द्रित है। आज उदारीकरण की प्रक्रिया आदिवासी जीवन में इतनी बेचैनी ला दी कि आदिवासी एवं गैर-आदिवासी साहित्यकार उनके प्रति सोचने को मजबूर हुए हैं। ऐसे साहित्यकारों में हरिराम मीणा और भगवान गव्हाडे का नाम उल्लेखनीय हैं।

भारत की नई आर्थिक नीतियों पर कवि हरिराम मीणा की कविता ‘मेरी सबसे छोटी कविता’ काफी चर्चित है। आर्थिक नीतियों के प्रति कवि इस प्रकार संकेत देते हैं -

“जो ज़मीन से

नहीं जुडे

वे ही

ज़मीनों को

ले उडे।”[72]

यहाँ पर कवि ने मात्र उदारीकरण को ही नहीं बल्कि पूरी आर्थिक नीतियों के प्रति अपना जद्दो-जहद आक्रोश प्रकट किया है। साथ ही सभ्य समाज की उपभोक्तृ संस्कृति में दबे-कुचले जा रहे आदिवासी समाज के कई अनदेखे मुद्दों को वैश्विक स्तर पर जोडकर विस्तार से परखने की कोशिश हुई है।

उसी प्रकार भगवान गव्हाडे ने उदारीकरण के दुष्प्रभाव से उत्पन्न आदिवासी समाज की गंभीर समस्या कृषक आत्महत्या पर अपनी कविताओं में ज़ोर से विचार-विमर्श किया है। उनकी महत्वपूर्ण और चर्चित कविता है ‘होरी की याद में’। प्रस्तुत कविता के दौरान कवि ने महत्वपूर्ण रचनाकार प्रेमचन्द का उपन्यास ‘गोदान’ का प्रमुख पात्र होरी के माध्यम से संपूर्ण कृषक आत्महत्या पर अपना आक्रोश प्रकट किया है। कवि कहते हैं -

“होरी अच्छा किया तुमने जो

मूँद ली समय से पहले अपनी आँखें
देख-सह नहीं पाते अपने किसान
भाइयों की
दयनीय स्थिति।"[73]

कवि ने प्रतीकात्मक ढंग से अपना प्रतिरोध व्यक्त किया है। आदिवासियों की आजीविका जल-जंगल-ज़मीन पर केन्द्रित है। आज वे अपने घर से बेघर होकर कृषि, परंपरागत उद्योग धन्धों एवं प्राकृतिक संपदाओं से वंचित हो चुके हैं। और भूख, गरीबी, बेरोज़गारी, बीमारी आदि के कगार पर खडे हैं। ऐसे में उनके सामने आत्महत्या के अलावा और कोई रास्ता नहीं है। भारत को शायनिंग इण्डिया बनाने के चक्कर में आदिवासियों के मुँह पर कालिख पोते जा रहे हैं और आदिवासियों की ज़रूरतों को न समझकर सभ्य समाज उनके जान और पहचान में संकट डाल दिया है।

हरिराम मीणा और भगवान गव्हाडे के अलावा अनुज लुगुन, महादेव टोप्पो, वंदना टेटे, ग्रेस कुजूर, जसिन्ता केरकेट्टा जैसे अनेक समकालीन साहित्यकार आदिवासियों पर उदारीकरण के प्रभाव को लेकर काफी चिन्तित हैं।

3.39 निजीकरण

किसी भी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था मुख्यतः दो क्षेत्रों से संचालित होती है। एक सार्वजनिक क्षेत्र और दूसरा निजी क्षेत्र। अंग्रेज़ों के जाने के बाद भारत देश स्वतंत्र हो गया। लेकिन अर्थ व्यवस्था काफी पिछडी रह गयी। स्वाधीनता के

तुरन्त बाद भारतीय अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र की अपेक्षा सार्वजनिक क्षेत्र ही मज़बूत रहा। परन्तु सन् 1956 में बनी औद्योगिक नीति निजी क्षेत्र में काफी सुधार लायी। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में सुधार हेतु भारत ने सन् 1990 में नयी आर्थिक नीतियों को अपनाया।

निजीकरण के फलस्वरुप समाज में नये-नये कॉरपोरेटों का उदय होने लगा। साथ में मुनाफावादी दृष्टि, गुण्डागर्दी, माफिया शासन आदि भी व्याप्त होने लगा। निजीकरण का दुष्प्रभाव आदिवासी समाज में काफी ज़्यादा पड रहा है। क्योंकि जल-जंगल-ज़मीन से जुडा है आदिवासी जीवन। और आज यह जल-जंगल-ज़मीन का ज़्यादा निजीकरण हो रहा है। आदिवासियों की आजीविका प्राकृतिक तत्वों पर निर्भर है। वे नदी-किनारों, पहाडों एव जंगलों के बीच अपना जीवनयापन करते हैं। आज सरकार देश की अर्थव्यवस्था को बढावा देने केलिए प्राकृतिक संपदाओं को निजी हाथों सौंपकर लाभ कमा रहा है।

समकालीन आदिवासी एवं गैर-आदिवासी साहित्यकारों ने आर्थिक नीतियों से उत्पन्न आदिवासी समस्याओं को अपनी कविताओं का केन्द्र विषय बना रख्रा है और वे निजीकरण के विभिन्न दुष्प्रभावों पर चर्चा कर रहे हैं। सरकार आज सब कुछ बाँट रही है। रोटी, कपडा, मकान के समान पानी, पर्वत, पृथ्वी को भी बाँट रही है। आदिवासी इलाकों का कब्जा उनके सहमति के बिना हो रहा है। अंधेरे के ख्रौफनाक साये में बन्द आदिवासियों की अज्ञानता और अशिक्षा का फायदा उठाकर सभ्य समाज उनका लूट-खसोट कर रहा है। और उनके बीच अराजक स्थितियों को कायम रख्रने की साजिश रच रहा है। ज़िन्दगी की दास्ताँ

में आदिवासी बेफिक्र और बेख़बर बनते जा रहे हैं। ऐसे में साहित्यकार उनमें आक्रोश की चिनगारियाँ डालने का प्रयास कर रहे हैं, ताकि वे अपने अधिकारों के प्रति ज़्यादा मज़बूत बने। ऐसे साहित्यकारों में ग्रेस कुजूर का नाम उल्लेखनीय हैं। उनकी 'मशाल' कविता में इस स्थिति का यथार्थ संकेत हुआ है। कवयित्री बताती हैं -

> "तुम्हारी सहमति के बिना
> गाँव के दोइन दोहर
> नदी झरना, झाड, जंगल, पहाड।"[74]

निजीकरण का मूल उद्देश्य मुनाफा है। इसलिए ज़मीनों से धातुओं को निकालकर बाज़ारीकृत समाज में व्यापार की वस्तुएँ बना रही हैं। जंगलों को काटकर औषधीय पेडों को फार्मस्यूटिकल कम्पनियाँ जैसी कम्पनियाँ हडप रही हैं। और पानी का लूट-मार से पेप्सी, कोकाकोला, स्प्राइट जैसे विषयुक्त पेय पदार्थ बना रहे हैं। पहाडों को तोड-फोडकर वहाँ पर बडी-बडी कम्पनियाँ, फाक्टरियाँ, अपार्टमेंट और मॉलें आदि ने जगह बना ली हैं। सभी के मूल में मुनाफावादी दृष्टि निहित है। आज कंक्रीट से बने जल-जंगल-ज़मीन को आसमाने की चाल चल रही है। प्राकृतिक तत्वों में जल का महत्वपूर्ण स्थान है जिसका आज सबसे ज़्यादा निजीकरण हो रहा है। जल संकट का सामना आज सिर्फ आदिवासी ही नहीं संपूर्ण मानव झेल रहा है। यानी मनुष्य, मनुष्य को ही हानि पहुँचा रहा है। शिरोमणि महतो की 'पानी' कविता में इसी सच्चाई का रेखांकन हुआ है। कवि कहते हैं -

“हम पानी केलिए
अरबों-खरबों खरच रहे
धरती-आकाश एक कर रहे
हम तरस रहे।”[75]

निजीकरण के बढते दिनों में आज पानी पृथ्वी से ही विलुप्त होने लगा है। ऐसी हालात में लोग लाखों रुपए खर्च कर पानी की उपलब्धता प्राप्त कर रहे हैं। लेकिन प्राकृतिक संपदाओं पर आश्रित भूख, गरीबी, बेरोज़गारी और अभाव आदि के चंगुल में फंसे आदिवासी सरकारी योजनाओं के सामने निस्सहाय एवं निश्शब्द हैं। उनमें जागरूकता लाना अनिवार्य है।

यहाँ पर रचनाकारों ने निजीकरण के विभिन्न चेहरों को हमारे सम्मुख रखने का प्रयास किया है। एक तरफ ग्रेस कुजूर ने निजीकरण से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं को विभिन्न पहलुओं के मद्दे नज़र खोजने की कोशिश की है तो दूसरी तरफ शिरोमणि महतो एक पहलू और उससे उत्पन्न समस्याओं को परखने की कोशिश की है। हरिराम मीणा, निर्मला पुतुल जैसे रचनाकारों की कविताओं में निजीकरण के कारण आदिवासी समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याएँ उभर आयी हैं।

3.40 शहरीकरण

आधुनिकीकरण और औद्योगीकरण की चकाचौंध के इस समय में शहरीकरण का महत्व बढ़ गया है। औद्योगिक क्रान्ति ने नौकरी के अवसर

प्रदान कर शहरीकरण को जन्म दिया है। वास्तव में निजी क्षेत्र के विकास में वृद्धि के कारण ही स्वतंत्रता के बाद शहरीकरण का उदय हुआ है। भारत जैसे प्राचीन संस्कृति वाले देशों के विकास को लेकर कई सवाल उत्पन्न होते हैं। आधुनिक और अत्याधुनिक होते जा रहे इस अवसर पर हमारी संस्कृति व सभ्यता की प्राचीन परंपरा नष्ट हो रही है। हज़ारों वर्षों की भाग-दौड के बाद मनुष्य विकास की वर्तमान अवस्था में पहुँचा है। लेकिन अनेक मानव समूह वन एवं दुर्गम क्षेत्रों में अपना जीवन व्यतीत करते रहें और इन्हें जनजातीय समाज कहा गया। वनों के आंतरिक भागों में बसने से ये बाहरी समाज से मिल नहीं पाये और उनकी अलग संस्कृति और सामाजिकता का विकास हुआ। लेकिन शहरीकरण के इस युग में मनुष्य भूल गया कि उसका असली रूप आदिम संस्कृति एवं समाज में ही है।

हर सिक्के के दो पहलू होते हैं। अर्थात् शहरीकरण का प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों स्तर पर पाया जाता है। उच्चशिक्षा, रोज़गारों के अवसर, चिकित्सा सुविधाएँ, आवास परिवहन, नई तकनीकी व्यवस्था आदि शहरीकरण की सकारात्मक देन है तो भीड-भाड, ग्लोबल वार्मिंग, बेरोज़गारी, प्रदूषण गरीबी, स्वच्छ पेयजल की अनुपलब्धता, हिंसा आदि इसके नकारात्मक प्रभाव हैं। इन नकारात्मक प्रभावों को अक्सर भुगतना पडता है गाँवों या वनाँचलों में बसनेवाले गरीब आदिवासियों को।

समकालीन साहित्यकार शहरीय परिवर्तन के कई मुद्दों को हमारे सामने ला रहे हैं। शहरीकरण और उससे उत्पन्न समस्याओं में दबे जानेवाले आदिवासी

समुदाय पर समकालीन आदिवासी कविता गूँज उठती है। जसिन्ता केरकेट्टा और महादेव टोप्पो की कविताएँ उनमें प्रमुख हैं। अन्य रचनाकारों की अपेक्षा इन दोनों रचनाकारों की रचनाओं में आदिवासी जीवन में शहरीकरण के प्रभाव को ज़्यादा उकेरा गया है।

जसिन्ता केरकेट्टा की कविता 'ओ शहर!' में शहरीय चकाचौंध के कारण अपने जल-जंगल-ज़मीन से खदेडे जाने का यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है -

"भागते हुए छोडकर अपना घर
पुआल मिट्टी और खपरे
पूछते हैं अक्सर
ओ शहर!
क्या तुम कभी उजडते हो
किसी विकास के नाम पर?"[76]

गाँवों को उजाडकर शहरों का निर्माण करने से आदिवासी जीवन में रोज़गार एवं अन्य संसाधनों की कमी होने लगती है। जब वनवासी बाहर यानी शहरों का रास्ता चुनते तो उन्हें शहरीकरण की तमाम बुराइयाँ झेलनी पडती हैं। शहरीकरण का अर्थ समाज परिवर्तन से है। याने की ग्रामीण संस्कृति को आधुनिक शहरीय संस्कृति में बदलना। इस प्रकार होने से पारंपरिक ग्रामीण अर्थ-व्यवस्थाओं का औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं में परिवर्तन होता है। विकासशील और विकसित समाज में शहरीकरण की अवधारणा में वृद्धि हुई है। लेकिन गरीबी और आर्थिक गिरावट शहरीकरण का नकारात्मक नतीजा है

जिससे आदिवासी समाज को सबसे ज़्यादा हानि पहुँची है और इसे रोकना अनिवार्य कार्य है।

महादेव टोप्पो ने अपनी कविता 'झारखंड गठन के बाद कुछ दृश्य' में गाँव गायब होकर शहर बन जाने की तस्वीर खींची है। कवि लिखते हैं -

> "भारत में एक उभरते महत्वाकांक्षी
> शहर का नाम है
> जहाँ से
> गायब है अब ठंडी हवा
> गायब है पक्षियों का कलरव।"[77]

शहरीकरण के रंगीनियों के कारण आज पिछडे एवं गाँवों में रहनेवाले शहरों की ओर मजबूरन पलायन हो रहे हैं। इस प्रकार पलायन होने से न वे शहरीय बन बाते हैं और न ही गाँवों में बस पाते हैं। शहरीकरण के नाम पर तमाम आदिवासी इलाकों को उजाडा जा रहा है। वे बेघर बन गए हैं। आज यह प्रश्न ज़ाहिर किया जाता है कि आदिवासी समाज को किस भाँति शहरीय समाज के साथ सामंजस्य बिठा पाए और आदिवासियों के सामाजिक परिवेश एवं संस्कृति को निरन्तर बनाए रखकर विकास की यात्रा में भागीदार बना पाये। यदि आदिवासी समाज को अकेला छोड दिया जाए तो राष्ट्र का संपूर्ण विकास संभव नहीं हो सकता।

आदिवासी समाज की आवश्यकताएँ और शहरी समाज की आवश्यकताओं में मूल अन्तर है। आदिवासियों की ज़रूरतें नैसर्गिक हैं और शहरीय समाज की ज़रूरतें भौतिक संसाधनों से दबी पडी हैं। इसलिए शहरीय मनुष्य को आदिवासी जीवन में हस्तक्षेप करना पड़ता है। लेकिन ऐसे हस्तक्षेप से क्या फायदा जिससे तमाम आदिवासी ज़िन्दगियाँ तबाह होती हैं? यहाँ पर रचनाकार आदिवासी जीवन को लेकर काफी बेचैन हैं और हमें सोचने को मजबूर कर देते हैं।

3.41 बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ

बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ औद्योगिक सभ्यता की देन हैं। बाज़ारवाद एवं उपभोक्तावादी संस्कृति को पनपने में बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ बहुत मददगार बनी हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की ऊँची पगार के कारण आदिवासी इलाके आज ज़रूरत से ज़्यादा विनाश हो चुके हैं। सभ्यता एवं संस्कृति की विशिष्टता से अलग होकर वे अपनी पहचान तक खो बैठे हैं। आज हर एक व्यक्ति नागरिक नहीं बल्कि ग्राहक है और इन कम्पनियों के इरादों के बीच मानव सभ्यता आसानी से फंसता जा रहा है। वर्तमान दौर में आदिवासी इलाकों में व्याप्त प्राकृतिक वस्तुएँ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में बिकनेवाली माल बन चुकी हैं। ग्राम्य एवं जंगली जीवन व्यतीत करते आदिवासी विकास के धूल में गुम होने लगे हैं। आदिवासी जीवन में आज गम्भीर समस्याएँ आ रही हैं जिससे निकलना या बचना नामुमकिन सा हो गया है। अपनी समस्याओं के प्रति आदिवासी पहले से ज़्यादा काफी सजग हुए हैं। किन्तु सन्दर्भानुसार वे संघर्ष करने में असफल

हुए हैं। लेकिन समकालीन रचनाकार साहित्य के ज़रिए संघर्ष को बढावा देने का महनीय कार्य कर रहे हैं। अनुज लुगुन, हरिराम मीणा, निर्मला पुतुल, शिरोमणि महतो, आलोका कुजूर जैसे कई साहित्यकारों ने अपनी कविताओं में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के तहत विनाश पर पहुँचे आदिवासी एवं आदिवासी इलाकों का ज़िक्र किया है। किन्तु आलोका कुजूर की कविता 'सेज पर सेज' बहुचर्चित है। जिसमें आदिवासी कृषि क्षेत्रों को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हवाले करते सरकार की हीन सोच की ओर नज़र डाली गयी है। कवयित्री का मानना है कि सब अर्थ का खेल है। वे यों कहती हैं -

> "अर्थ का है खेल
> बडी कम्पनियों के साथ
> हस्ताक्षर"[78]

आदिवासी स्वार्थ रहित हैं। मगर सभ्य मनुष्य स्वार्थता के प्रतिरूप हैं। उनके लिए पैसा सब कुछ है। उनके हर अस्त्र-शस्त्र, जल-जंगल-ज़मीन को नष्ट करने केलिए बने हैं। वैश्वीकरण के फलस्वरुप विज्ञान एवं तकनीकी जगत में विकास का विस्फोट हुआ है। लेकिन इस विकास के विस्फोट से सबसे ज़्यादा धक्का आदिवासी समुदाय को मिला है। वंदना टेटे की कविता 'डूबोः के खिलाफ' की पक्तियाँ देखिए -

> "कम्पनियाँ घेरा-डेरा डाल रही हैं
> हरे खेतों की ओगरा करते"[79]

आदिवासियों का औषधीय ज्ञान अपार है। किन्तु आज आदिवासियों का जंगली क्षेत्र बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने हडप लिया है। जंगलों का विनाश कर जडी बूटियों और औषधीय पौधों के मूल रस को फार्मस्यूटिकल कम्पनियाँ लूट रही हैं। कवयित्री यहाँ पर काफी हैरान और परेशान नज़र आती हैं। आज पेड पौधों के साथ पानी भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का हडपने की प्रमुख वस्तु बन गयी है। जिसका फल है पेप्सी, कोकाकोला के नाम पर रंगीन पानी का बोतलों में बंद होना। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने मार्केटिंग के ज़माने को आज़माया है। प्रोडेक्टों की दुनिया में खुद आदिवासी एवं आदिवासी संस्कार प्रोडक्ट बन चुके हैं। उनकी सभ्यता एवं संस्कृति मार्केट में बिकनेवाली कीमती वस्तु बन गयी है। आदिवासियों के हाथ बनी कई वस्तुएँ आज बाज़ार में उपलब्ध हैं। उनकी वेशभूषा, अलंकरण, उत्पाद, नृत्य संगीत के उपकरण आदि आज बाज़ार में बिक रहे हैं। शायद इसकी खबर उन्हें नहीं है। अगर है तो इसके लिए उन्हें वाजिब दाम नहीं मिल रहा है। मनुष्यता के धरातल पर आदिवासियों का मुलाहज़ा कोई कभी रखते ही नहीं। ऐसे वातावरण में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का विकास दरिद्र एवं गरीब आदिवासियों केलिए सबसे बडी चुनौती है। उनकी अंधी विकास दौड में फंसे आदिवासी संसार को इसके विरुद्ध सजग और सचेत होकर साहस के साथ संघर्ष करना होगा। दरअसल लूट शब्द आदिवासियों के खून को चूस निकाल रहा है। इससे बचने की कोशिश अनिवार्य है।

यहाँ पर रचनाकार अपनी कविताओं के ज़रिए आदिवासी इलाकों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा उत्पन्न बुरे प्रभावों को बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

3.42 प्राकृतिक आपदाओं का शिकार

पूर्ण रूप से प्रकृति पर निर्भर आदिवासी आज भी आदिम हैं। इसलिए उनकी सोच भी संकुचित है। किन्तु प्राकृतिक आपदाओं से बचने तथा सहन करने की उनकी अद्भुत क्षमता पर गर्व करना ही होगा। वर्तमान सन्दर्भ में नए विकास कार्यक्रमों के कारण घडी-घडी पर नयी-नयी बाधाएँ एवं घटनाएँ घट रही हैं। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। लेकिन सभ्य समाज की धक्का देनेवाली और लोभ कमानेवाली सोच आज प्राकृतिक असंतुलन का प्रमुख कारण बन गयी है। इसके फलस्वरुप सूखा, भूचाल, बाढ़ जैसे प्राकृतिक आपदाएँ बढती जा रही हैं। इन प्राकृतिक आपदाएँ सबसे ज़्यादा आदिवासी समाज को चोट पहुँचा रही हैं। आदिवासी इलाकों में सबसे ज़्यादा हलचल मचानेवाले प्राकृतिक आपदाओं को निम्नलिखित रुप से देखा जा सकता है :-

3.42.1 सूखा

वर्षा की औसत मात्रा में कमी या न के बराबर पानी प्राप्त होने से सूखा की स्थिति पैदा होती है। सूखा की गंभीर स्थिति को अकाल कहा जाता है। सूखा या अकाल का प्रभाव अत्यधिक होने से लोगों को भूख, गरीबी, भूखमरी इत्यादि समस्याओं को झेलना पडता है। क्योंकि सूखा कृषि स्तर को अत्यधिक

हानि पहुँचाता है। भारत जैसे देश में कृषकों की संख्या अधिक है और अधिकांश आदिवासी जीवन कृषि पर निर्भर है। वर्तमान समय में सूखा एक कठिन स्थिति बन गई है। विकास के नाम पर हो रहे वनों की कटाई, इमारतों का निर्माण आदि विभिन्न कारणों से सूखा की स्थिति गंम्भीर होती जा रही है। जल-जंगल-ज़मीन से जुडे आदिवासी जीवन में सूखे का अत्यधिक प्रभाव हो रहा है। क्योंकि विकास रुपी परिवर्तन की आँधियाँ सबसे ज़्यादा आदिवासी इलाकों में चलाई जा रही हैं। जिससे प्राकृतिक संसाधनों का दोहन उग्र रूप से हो रहा है। कृषि से जीविकोपार्जन चलानेवाले आदिवासी समाज में अकाल के कारण अनाजों की कमी बढ रही है। इसके फलस्वरूप आदिवासियों के बीच भूख एवं भूखमरी की स्थिति भयानक रुप ले ली है। हरिराम मीणा, सुषमा असुर जैसे रचनाकार सूखा या अकाल को लेकर काफी बेचैन हैं। उनकी कविताएँ अकाल पर रोती सूखी नदियों की व्यथा कहानी कही जाती हैं। हरिराम मीणा ने अपनी कविता 'नन्ही कविताएँ' (९९) द्वारा सूखा की अति तीव्र स्थिति को दर्शाया है -

"देखी बूढी नदी रो रही सूखा रोना
तेज़ धूप की ताप सह रहे
झुरमुट, घास दरख्त
पीले तृण को देख मेघ चलता-चलता
नभ पथ पर ठिठका।"[80]

सूखा की अति तीव्र स्थिति से आदिवासी आज भूखे और प्यासे हैं। इससे उनकी मृत्यु दर बढ रही है। सूखा की वजह से संपूर्ण आदिवासी जीवन ही

रूखी सूखी बन गई है। सुषमा असुर ने अपनी कविता 'पहाड़ का घर ख़त्म हो गया है' में इसी जटिल यथार्थ को अभिव्यक्त किया है -

> ''झरने में पानी नहीं है
> पहाड़ में फूल फल नहीं है
> नदी में बहने केलिए पानी नहीं है''[81]

पहले से ही बुनियादी ज़रूरतों से वंचित आदिवासी आज प्राकृतिक संपदाओं से भी वंचित होने लगे हैं। इस तरह मात्र वंचित पात्र बनकर जीना उनकी नियति बन गई है। यहाँ पर रचनाकारों ने सूखे की भयंकर स्थिति को व्यक्त करने के साथ-साथ सूखा के कारण आदिवासी इलाकों की हालातों से साक्षात्कार कराने की कोशिश की है। समकालीन अन्य रचनाकारों ने जैसे वंदना टेटे, रामदयाल मुण्डा, जसिन्ता केरकेट्टा, ग्रेस कुजूर, निर्मला पुतुल आदि की कविताओं में सूखा की दयनीय स्थिति को उकेरने की कोशिश की है।

3.42.2 बाढ

बाढ एक प्राकृतिक आपदा है। जब किसी क्षेत्र में अत्यधिक पानी जमा होता है तभी बाढ की स्थिति पैदा होती है। भारी बारिश के कारण पानी अत्यधिक जमा होता है। इसके फलस्वरूप समुद्र एवं नदी नालों का पानी का स्तर बढने लगता है। कभी बर्फ के पिघलने से और कभी बांधों के टूटने से भी बाढ का आना संभव है। सरकार की बाँध परियोजना ने आदिवासियों को बाढ में डुबा दिया है। आदिवासी इलाकों में बाँधों का बनना स्वाभाविक बात बन गई

है। सरकार पूँजीपतियों के साथ मिलकर लाभ एवं मुनाफावादी सोच को पनपकर आदिवासी इलाकों को बिगाड रही है। सभ्य समाज का अवसरशाही करतूतों से आदिवासी समाज को हर साल किसी-न-किसी क्षेत्र में बाढ का सामना करना पडता है।

बाढ में फंसते आदिवासी इलाकों और आदिवासियों के बारे में समकालीन रचनाकार सोचने लगे हैं। प्यारी टूटी और भगवान गव्हाडे का नाम उनमें उल्लेखनीय हैं। प्यारी टूटी की महत्वपूर्ण कविता है 'बाढ'। प्रस्तुत कविता में कवयित्री आदिवासी इलाकों का अक्सर बाढ में डूब जाने की सच्चाई की ओर ले चलती हैं। कवयित्री के शब्दों में -

> ''बाढ़ आया बाढ़ आया
> दिन-रात पानी आया
> घर-आँगन कोना-कोना में
> बाढ़ का पानी भर गया''[82]

सभ्य समाज का आदिवासी इलाकों में अनावश्य हस्तक्षेप से प्रतिदिन खून-बलात्कार, चोरी-डकैती, लूट-मार, घूसखोरी, कुपोषण, भूखमरी, गरीबी आदि बढते जा रहे हैं। साथ में सभ्य मनुष्य प्रकृति के साथ खिलवाड करते हैं। प्राकृतिक संपदाओं को बिगाडकर खुद जान पर खतरा मोल लिया है। भगवान गव्हाडे ने अपनी कविता 'संचार माध्यम' में बाढ के साथ-साथ अचानक होनेवाले अन्य प्राकृतिक आपदाओं पर भी दृष्टि डाली है। वे बताते हैं -

"कहीं बेमौसम ही वर्षा
अकाल अतिवृष्टि अनावृष्टि
कहीं बाढ भूकंम्प सुनामी"[83]

आदिवासी समाज अनगिनत सिसकियाँ एवं चीख़ों को दबाये प्राचीन काल से इक्कीसवीं सदी तक शोषण-अन्याय एवं अत्याचार को झेलते आ रहे हैं। उनके लिए प्रकृति सब कुछ है। पर आदिवासियों को प्रकृति की जड से उखाडकर फेंकने की सभ्य समाज की चालाकी कोशिश में प्रकृति ही खुद प्रतिरोध एवं आक्रोश प्रकट करने लगी है।

यहाँ पर रचनाकार प्रकृति के साथ खिलवाड न करने की चेतावनी दी है। प्यारी टूटी अपनी कविता में मात्र बाढ के सन्दर्भ में विचार किया है। किन्तु भगवान गव्हाडे अन्य प्राकृतिक आपदाओं पर भी विचार विमर्श किया है।

3.43 वन संपदा का दोहन

जंगल भूमि का आधार है और प्रकृति की ख़ूबसूरती का महत्वपूर्ण हिस्सा है। वन संपदा का दोहन आदिवासियों केलिए आज एक विनाशकारी समस्या बन गई है। क्योंकि वन जनजातियों का आश्रय स्थान है। जंगलों के बिना उनका जीवन बेवजूद है। सदियों से जंगल के राजा बनकर रहनेवाले आदिवासियों पर अंग्रेज़ी शासन द्वारा अपनाये गये वन कानून (1865) नियम से उनके स्वतंत्र जीवन में रोक लगा दी गयी। इस प्रकार वन सम्पत्ति का आर्थिक उपयोग करने केलिए वन सम्बन्धी कठोर नियम बनाकर उन्हें सुरक्षित क्षेत्र

घोषित करके आदिवासियों को वन सम्पत्ति के प्रयोग पर और जंगल काटकर तथा आग लगाकर की जानेवाली उनकी परम्परागत कृषि पद्धति पर रोक लगा दी गयी। प्रस्तुत नियम के अनुसार ब्रिटिश सरकार को वृक्षों अथवा झाडियों वाली किसी भी भूमि को सरकारी ज़मीन घोषित करने का और व्यवस्थापन करने का परिपूर्ण अधिकार मिल गया। उसके बाद सन् 1878 में 'इंडिया फॉरेस्ट एक्ट' पारित किया गया। वन और भूमि के उपयोग करनेवाले आदिवासियों के अनुकूल कोई नियम नहीं बना। सन् 1858 में स्वतंत्रता संग्राम का पराजित होना देश की संपदा पर ब्रिटिश शोषण को और भी गहरा बना दिया।

स्वाधीनता के बाद कई नियम लागू हुए थे। लेकिन इन नियमों के अनुसार यही स्थापित करना चाहते थे कि आदिवासियों को जंगल पर कोई आन्तरिक अधिकार नहीं है। केवल निवासी होने का अधिकार है। बाद में उनसे निवासी होने का अधिकार भी छीना जाने लगा।

अनुसूचित जनजातियाँ एवं परम्परागत वन निवासी सदियों से जंगल के अधिकारों से वंचित रहे हैं। इससे मुक्ति केलिए भारतीय संसद ने एक प्रभावी कानून बनाया। लेकिन अब यह तथ्य स्थापित हो चुका है कि जनजातियों के विकास केलिए लागू की गयी वन नीति का अपेक्षित परिणाम आदिवासियों में प्राप्त नहीं हो पा रहा है। इसमें भी आवश्यक संशोधन करने का अब वक्त आ गया है। क्योंकि आजकल वनाधिकार और भूमि पर आदिवासियों का निरस्त किया जाना खतरनाक संकेत देता है। समकालीन रचनाकार वनसंपदा के दोहन

को लेकर काफी परेशान हैं और उसके दोहन के प्रति जागृत होते नज़र आते हैं। वे अपनी कविताओं में अन्य अनेक समस्याओं को प्रस्तुत करने के साथ वन संपदा का दोहन और उससे उत्पन्न आदिवासी जीवन की त्रासदी को पेश किया है। युवा कवि ओली मिंज का नाम उनमें उल्लेखनीय हैं। वे अपनी कविता 'चार मुक्तक' में इस प्रकार संकेत देते हैं कि -

"पेड पौधों को रौंदकर
जंगली-जानवरों की खाल पर
पक्षियों के पंखों को टाँककर
निःसंदेह आदमी
संपूर्ण मानव समुदाय केलिए
एक खूबसूरत कफन बना रहा है।"[84]

जंगल हमारी संस्कृति का हिस्सा है। गैर-आदिवासी समाज ने इस संस्कृति को अपनी स्वार्थता और फायदे केलिए व्यवसाय बना दिया है। सभ्य मनुष्य बाज़ार के आदर्श एवं मूल्यों को केन्द्र में रखकर अपनी संस्कृति को मुनाफे केलिए नष्ट कर रहा है। व्यावसायिकता को बढावा देने केलिए सरकार आदिवासियों को हटाकर जंगलों पर कब्जा कर रहे हैं। अपना अनुकूल बनाकर बडी-बडी कम्पनियाँ स्थापित करना उनका मूल उद्देश्य है। वन सम्पदा भूमि को अपनी जडों द्वारा जकडकर हवा और वर्षा की तेजधार से बचाकर मिट्टी के कटाव की सुरक्षा प्रदान करती है। इसकी पत्तियाँ और फल-फूल सडकर गिरते हैं। इससे धरती अधिक उपजाऊ बनती है। पेडों के अभाव में ऑक्सिजन का

अभाव भी होने लगेगा। जिससे जीवमात्रा का अस्तित्व मिट जाएगा। पेडों के द्वारा ही वर्षा अधिक होती है और भारतीय कृषि वन संपदा पर आश्रित है। भारत के अधिकांश आदिवासी कृषक है। कृषि का ह्रास और जंगलों के विनाश से आदिवासी जीवन की आजीविका पूर्ण रूप से लुप्त हो जाएगी। वास्तव में सभ्य समाज की व्यावसायिक सोच ने आदिवासी जीवन को तहस-नहस कर दिया है। और इस सच्चाई से ओली मिंज के समान युवा कवि शिशिर टुडू अपनी कविता 'बरसात और पानी' के माध्यम से साक्षात्कार कराते हैं -

> "बादल, बरसात और पानी की
> दादुर, मोर, पपीहा की
> सब गये जमाने की बातें हैं।"[85]

मनुष्य ने अपनी सुख-सुविधा केलिए वनों पर आधारित अनेक उद्योग धन्धे खोल लिए हैं। मनुष्य ज्यों प्रकृति से दूर होता जा रहा है उसका शरीर दुःख एवं रोगों से ग्रस्त होता जा रहा है। इस शताब्दी में वनों के विनाश के कारण होनेवाले खतरों को भी विज्ञान समझ गया है। भूमण्डलीकरण के युग में विनाशकारी विकास पर्यावरण असंतुलन का मुख्य कारण है। वन संरक्षणों का सलाह बार-बार देने के बावजूद भी वनों का शोषण करते रहते हैं।

आदिवासी पहाडियों और जंगलों में निवास करते हैं। इसलिए उनका दैनिक एवं सामाजिक जीवन वनोत्पादों पर निर्भर है। लेकिन अब इसका ह्रास शुरू हुआ है। जंगल सरकार के अधीन चला जाने से वनोत्पाद पर भी सरकारी नियन्त्रण स्थापित हो गया। आज वनस्पतियाँ विलुप्त हो रहीं हैं। पलाश, चन्दन

वृक्ष, बरगद, नीम जैसे औषधीय वृक्षों को फार्मस्यूटिकल कम्पनियों ने हडप ली हैं। जंगली खाद्य पदार्थों के द्वारा बाबाओं ने वैश्विक बाज़ार खोल दिया है। साथ ही आदिवासियों की औषधीय ज्ञान को भी लूट लिया है। असल में पूँजीवादी मानसिकता मनुष्य को जंगल के खिलाफ संघर्ष करने और उसके संसाधनों का अधिकतर दोहन करना सिखा रही है।

यहाँ पर कवि जंगल विनाश को लेकर काफी चिन्तित हैं। दोनों कविताओं में आदिवासियों की प्राकृतिक हक की प्रबल अनुगूँज निहित है। आदिवासी स्वार्थ रहित हैं। वे कभी अपने लिए नहीं जीते उसके जीवन में अन्य सभी प्राणी निहित हैं। आज समूचा जंगल संकट में फंसा है। आदिवासियों की परंपरा एवं संस्कृति जंगलों पर आश्रित हैं। जंगलों का विनाश आदिवासियों का सत्यानाश है। विकास के नाम पर जंगलों के स्थान पर बडे-बडे कंक्रीट के मकान खडे होना उनकी बलि चढाने को तुल्य है। दोनों कवियों की कविताओं में इसका यथार्थ भाव उतर आया है।

3.44 सह अस्तित्व

जल-जंगल-ज़मीन से जुडकर जीनेवाले आदिवासी में सहकारिता का भाव अत्यधिक रूप से पाया जाता है। प्रकृति की वास्तविकता को वे जानते हैं। इसलिए उनमें प्राकृतिक आपदाएँ और जंगली जानवरों से बचने और झेलने की अद्भुत क्षमता पायी जाती है। मनुष्य ने प्रकृति से ही संदेशों का आदान-प्रदान करना सीखा है। आदिवासी रीति-रिवाज़, रहन-सहन, खान-पान, वेश भूषा सब प्रकृति में घुला हुआ है। प्रकृति पर उनकी सहकारिता के भाव केलिए

अत्यन्त उदाहरण है आदिवासी स्त्री तुलसी गौढा का जीवन। मगर आज आदिवासियों का सह अस्तित्व मिटने लगा है। पशु-पक्षी, नदी, पर्वत, जंगल आदि से जुडे उनके जीवन में विस्थापन, वैश्वीकरण, भूमि अधिग्रहण, खनन आदि ने कब्जा कर लिया है। लम्बे अरसे से आदिवासियों की इस मज़बूत रिश्ते को जकडने की कोशिश चल रही है। आज इक्कीसवीं सदी के युग में यह कोशिश ज़ोरों पर है। आदिवासियों की मूल संस्कृति प्रकृति है। विकास के नाम पर सभ्य समाज आदिवासी इलाकों का तहस-नहस कर आदिवासी जीवन में गहरी चोट पहुँचा रहे हैं। ऐसे में वे प्राकृतिक से अप्राकृतिक बनने लगे हैं।

जसिन्ता केरकेट्टा, अनुज लुगुन जैसे समकालीन रचनाकार आदिवासी जीवन के सहकारिता पर काफी चर्चा कर रहे हैं। जसिन्ता केरकेट्टा की बहुचर्चित कविता हैं 'बवंडर और दिशाएँ'। प्रस्तुत कविता के दौरन कवयित्री कहती है -

"पृथ्वी को बचाने केलिए
किसी न किसी को तो
कुर्बानी देनी ही होगी।"[86]

यहाँ पर कवयित्री यह बताना चाहती हैं कि कुछ पाने केलिए कुछ खोना पडता है। औद्योगिक घरानों के मुनाफे केलिए बाज़ारीकृत समाज को पनपने की साजिश चारों ओर चल रही है। ऐसे समाज एवं संस्कृति के विकास केलिए प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अत्यन्त ज़रूरी है। और आदिवासियों की कुर्बानी से ही यह संभव हो सकता है। अन्यता आदिवासी और उनके प्राकृतिक

संसाधनों को सभ्य समाज द्वारा तोडा नहीं जा सकता। इस यथार्थ से अनुज लुगुन अपनी लम्बी कविता 'सुगना मुण्डा' के माध्यम से सीधा खुलासा करते हैं-

"हर बार हमारी सहजीविता ने उसे पराजित किया है
हमारी सहजीविता ही बनाती है
भेदरहित मज़बूत रिश्ते।"[87]

सभ्य समाज अपनी स्वार्थ पूर्ति केलिए आदिवासी समाज को नुक्सान पहुँचा रहा है। आदिवासी सबका भला चाहते हैं इसलिए वे मूक हैं। प्रकृति की अनिवार्यता को वे समझते हैं। इसलिए वे प्रकृति का सहजीवी बनकर जीना चाहते हैं। पर सभ्य समाज मतलबी है। उसका उद्देश्य सिर्फ मुनाफा है। आदिवासी और सभ्य लोगों के बीच ज़मीन-आसमान का फर्क है।

3.45 जल संकट

आजकल आदिवासियों को अनगिनत समस्याओं का सामना करना पड रहा है और अब जल संकट उनकी जीवन की गंभीर समस्या बन गई है। मानवीय जीवन में जल का बहुत बडा महत्व है। जल के बिना कुछ भी संभव नहीं है। इसलिए पृथ्वी को ब्रह्माण्ड का एक अनोखा ग्रह मानते हैं। जल के कारण ही मनुष्य जाति पृथ्वी पर विकसित हो सकी है। अतः मनुष्य, पशुओं, पेड-पौधों सभी को जल की ज़रूरत है। किन्तु आज आर्थिक नीतियाँ एवं सरकारी योजनाओं के कारण पृथ्वी से ही जल घटने लगा है। आदिवासी जीवन में पानी की समस्या इतनी गम्भीर हो गयी कि वे भूखे प्यासे भटकने को विवश

हैं। पानी की अनुपलब्धता के कारण उनका मृत्यु-दर बढने लगा है। आदिवासी स्त्री और बच्चों की स्थिति अधिक शोचनीय है। मनुष्य द्वारा पृथ्वी का अनमोल पदार्थ लूटे जाने पर समकालीन रचनाकार काफी बेचैन हैं। निर्मला पुतुल, शिरोमणि महतो, ग्रेस कुजूर, आलोका कुजूर, रामदयाल मुण्डा जैसे कवि अपनी कविताओं के माध्यम से पानी की भयावह संकट की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं। दुनिया की सबसे पुरानी सभ्यता सिन्धु घाटी सभ्यता गंगा के आस-पास विकसित हुई थी। अर्थात पानी मानवीय जीवन का आधार है। लेकिन पानी की कमी दिन-ब-दिन बढती जा रही है और आदिवासियों की परेशानी। सरकार की निरर्थक योजनाओं से केवल संपन्न वर्ग को फायदा मिल रहा है। जनजातियों को फायदा तो दूर सरकार की योजनाओं में आदिवासी न के समान है।

ग्रेस कुजूर, आलोका कुजूर एवं रामदयाल मुण्डा की कविताओं में समानता पायी जाती है। तीनों कवियों ने अपनी कविताओं में सरकारी योजनाओं से उत्पन्न पानी की समस्याएँ और पानी का दूषित होने के कारण एवं परिणाम बताया है। शहरीय कारखानों से निकलते रासायनिक कचरों से प्रदूषित होता नदी एवं तालाब विषैला हो जाता है। नदी के किनारों में बसनेवाले आदिवासियों की आँखों में बेबसी छा जाती है। ग्रेस कुजूर की कविता 'स्मार्ट सिटी' में इसका यथार्थ अंकन किया है। कवयित्री लिखती हैं -

''झरिया देखता है
कचरों के ढेर से

रिसते स्याह बदबूदार पानी को
खेतों में उतरते
फसलें जलने लगी हैं अब
मरने लगी हैं मछलियाँ।''[88]

पानी सबसे महत्वपूर्ण पदार्थों में से एक हैं। जो पौधों, जानवरों एवं मनुष्य केलिए आवश्यक है। लेकिन आज इस कीमती संसाधन की बरबादी हो रही है। शहरीय विकास के कारण पानी की समस्या और बढ गई है। मनुष्य ने व्यावसायिक गतिविधियों से आज पीने लायक जल को संकट में डाल दिया है। बडी-बडी फैक्ट्रियों से निकलते रासायनिक कचरों को नदियों, झीलों तथा तालाबों में बहाया जा रहा है। जिससे जल दूषित हो रहा है। जल में विषपान को खोल छोडकर मर गिरते हैं जल के जीव जंतु।

सभी को पानी पर समान अधिकार है, चाहे मनुष्य हो या अन्य जीव-जंतु। लेकिन आज की सरकारी योजनाओं द्वारा जनजातियाँ इस अधिकार से वंचित है। इन वर्षों में बढती आबादी, बढते औद्योगीकरण, कृषि का विस्तार और जीवन के बढते मानकों ने पानी की मांग को बढा दिया है। केवल आदिवासी ही नहीं, बल्कि पूरी जनता आज एक बूँद पानी के लिए तरस रही है।

आदिम समाज में पेयजल की व्यवस्था की ज़िम्मेदारी महिलाओं और बालिकाओं को सौंपी जाती है। पीने का पानी लाने केलिए जनजातीय महिलाओं को लगभग पाँच से दस किलो मीटर दूर तक जाना पड़ता है। गर्मी

के दिनों में उससे भी ज़्यादा। लेकिन पानी का दूषित होना और लूट लिया जाने से आदिवासियों की प्यास कभी बुझ नहीं पाएगी।

जल सम्बन्धी समस्याएँ दिनों दिन गंभीर होती जा रही हैं। पानी याने जल आज एक व्यावसायिक वस्तु बन गयी है। इसलिए वैश्विक स्तर पर पानी की माँग बढती जा रही है। बाज़ार से जुडकर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ एवं उद्योगपति जल को हथियाने की कोशिश कर रहे हैं। हमारी सरकार है कि पानी के संकट को दूर करने के बजाय बहुराष्ट्रीय कंपनियों को प्रोत्साहित कर रही है। आज पानी का पूरा नियन्त्रण निजी कंपनियों तथा राजनीतिज्ञों के हाथ में हैं। पूरी दुनिया में पानी के निजीकरण पर ज़ोर देनेवाला लोभी चल रहा है। उनका उद्देश्य मात्र मुनाफे से हैं। साथ में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करके लाभ कमाने की इच्छा उनमें निहित है। निर्मला पुतुल, शिरोमणि महतो जैसे कवि पानी का निजी हाथों में सौंपा जाने की भयावह स्थिति से अवगत कराते हैं। निर्मला पुतुल की महत्वपूर्ण कविता है 'जब टेबुल पर गुलदस्ते की जगह बेसलरी की बोतलें सजती हैं।' प्रस्तुत कविता में कवयित्री बताती हैं -

> ''एक ग्लास पानी मिलना कठिन हो गया है
> और पेप्सी आसान।''[89]

जिस देश में लोटा भर पानी मुफ्त में मिल जाता था आज उसी देश में पानी केलिए दाम देना पड़ता है। आजकल हम अपनी यात्राओं में भी बोतल बंद पानी साथ में रखते हैं। नहीं तो खरीदकर पीना पडता है। और उसका मूल्य भी देना होता है। जल-जंगल-ज़मीन के मुद्दे पर राय चलानेवालों के सभा सम्मेलनों

एवं संगोष्ठियों में बोतल बंद पानी ने जगह बना ली है। और न चाहते हुए भी बोतलों का पानी पी-पी कर अपने इलाके के सूखे स्रोतों पर चर्चा करनी होती है। जो जल-जंगल-ज़मीन बचाने का जज़्बा दिखाते हैं वही पेप्सी या स्प्राइट पीने को मजबूर है। आज की वैश्वीकृत दुनिया विकास की नयी-नयी परिभाषा गढकर सपने दिखा रहा है। और इस सपने में लोटा भर पानी तक नसीब नहीं है। निर्मला पुतुल के अलावा शिरोमणि महतो भी अपनी कविता 'गिलास' में इसी सच्चाई से साक्षात्कार कराते हैं। और आलोका कुजूर अपनी कविता 'अब बनेंगे बाँध आँसू' के माध्यम से सरकारी बांध परियोजना और पानी का व्यावसायिक होने की बात बतायी है। निर्मला पुतुल और शिरोमणि महतो की तरह आलोका कुजूर का भी उद्देश्य एक है। पर बताने का अन्दाज़ थोड़ा अलग है। उनके अनुसार ऐसी कोई भी जगह नहीं जहाँ बाँध न हो और सारी नदियाँ बिक चुकी हैं।

सरकार की बाँध परियोजना आदिवासियों की मृत्यु परियोजना बन गयी है। बाँधों का बनना, टूटना और आदिवासियों का बेदखल होना यह बात अब स्वाभाविक बन गई है। यहाँ पर रचनाकारों ने जल संकट की भयावहता को बहुत ही मार्मिक ढंग से पेश किया है और आदिवासियों के साथ सभ्य समाज और उनकी आनेवाली पीढी केलिए भी चेतावनी दी जाती है।

3.46 विकिरण

विकिरण आदिवासी इलाकों में छायी एक गम्भीर समस्या है। विकास एवं क्रान्ति के नाम पर बन रही हर एक वस्तु के पीछे विकिरण की भयानकता

छिपी हुई है। जिससे केवल आदिवासी ही नहीं संपूर्ण मानव जीवन में खतरा खडा हो गया है। विकिरण का महाजाल प्रबल रूप से संचार क्रान्ति एवं कोयला खनन से उभर रहा है। आदिवासी इलाकों में खनन परियोजना विकिरण की समस्या केलिए ज़्यादा ज़िम्मेदार है। घने जंगलों एवं पहाडों से संपन्न आदिवासी क्षेत्रों की ओर व्यावसायिकों की निगाहें अक्सर मंडराती रहती हैं। उनकी ज़मीन खनिज संपदाओं का भण्डार है। जिनका लूट-मार आज त्वरित गति से चल रहा है। समकालीन हिन्दी रचनाकारों की कविताओं में विकिरण की समस्या से मुठभेड करनेवाला आदिवासी समाज मौजूद है। अनुज लुगुन, शिरोमणि महतो, खन्ना प्रसाद अमीन जैसे कई साहित्यकारों ने अपनी कविताओं में विकिरण की भयावह स्थिति को व्यक्त किया है।

अनुज लुगुन की सबसे चर्चित लम्बी कविता है 'बाघ और सुगना मुण्डा की बेटी'। प्रस्तुत लम्बी कविता का भाग 'सुगना मुण्डा की बेटी' में कवि विकिरण की समस्या से जूझते आदिवासी समाज की दयनीय स्थिति को दर्शाते हैं। कवि के शब्दों में -

> ''वह युरेनियम जादूगोडा का ही था
> वही लोग थे, वही ज़मीन थी
> कोई लूला हो गया था
> कोई लंगडा हो गया था''[90]

भारत में झारखण्ड का मरंगगोडा एवं सारंडा का इलाका आज विकिरण से सबसे ज़्यादा जूझ रहा है और यह आदिवासी बहुल क्षेत्रों में से एक है।

सारंडा इतना घना जंगल है कि यहाँ धूप की रोशनी धरती को आसानी से नहीं छू सकती। शिक्षित मनुष्य अपने अस्तित्व की चिन्ता किये बिना प्रकृति तथा पर्यावरण का शोषण कर रहा है। युरेनियम प्रकृति का सबसे कीमती और भयानक धातु है। लेकिन अशिक्षित आदिवासी युरेनियम के विध्वंसकारी शक्ति से अनजान है। युरेनियम बिजली उत्पादन और आणविक हथियार बनाने में सबसे उपयोगी है। इसलिए मनुष्य बिजली उत्पादन के साथ हैड्रजन बम या अणु बम जैसी विस्फोटक वस्तु बना रहे हैं। सालों पहले हैड्रजन बम या अणुबम का तबाही का प्रभाव हिरोशिमा-नागासाकी द्वारा हमने जाना है। युरेनियम एक अस्थिर रेडियोधर्मी तत्व है। जिसका जीवन लगभग साढे चार अरब वर्ष है। ज़मीन के बाहर निकाले जाने के बाद धरती पर इतने साल युरेनियम का जीवित रहना अत्यन्त घातक पहुँचाया है। इससे निकलनेवाली रेडियोधर्मी प्रक्रिया से मानवीय जीवन और अन्य जीव-जन्तुओं के जीवन में खतरा पैदा हुआ है। जेनेटिक विघटन पैदा होना, बच्चों का मंदबुद्धि होना, विकलांग होना आदि के साथ पशु-पक्षियों का गायब होना भी इसका भयानक नतीजा है। खन्ना प्रसाद अमीन ने इस भयावहता को 'जंगल और पहाड' कविता के माध्यम से व्यक्त किया है। वे बताते हैं -

> ''शहर और गाँव में
> भ्रमण भाव का जादू
> उनके किरणोत्सर्गी
> रूप से

पक्षी हो गए भक्षी

न हुआ हमारा कल्याण।"[91]

खदानों में काम करना आदिवासियों की मजबूरी है। लेकिन इससे न उनकी भूख मिटती है न गरीबी। बदले में शारीरिक विकृतियों और जानलेवा बीमारियों का शिकार बन बैठते हैं। यह खतरा और दयनीय स्थिति मात्र भारतीय आदिवासियों की नहीं है बल्कि दुनिया भर के खदानों में काम करनेवाले और उसके आसपास रहनेवाले सम्पूर्ण आदिवासियों की दयनीय स्थिति है।

अनुज लुगुन और खन्ना प्रसाद अमीन के अलावा समकालीन अन्य प्रमुख हस्ताक्षर जैसे ग्रेस कुजूर, शिरोमणि महतो आदि ने इस विषय पर गम्भीर चर्चा की है। किन्तु अनुज लुगुन और खन्ना प्रसाद अमीन की कविताओं में इस समस्या का तीव्र स्वर मुखरित हुआ है और इस समस्या को वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भी देखा-परखा जाने का अथक प्रयास हुआ है।

3.47 सत्ता

ब्रिटिश शासन से मुक्ति पाने केलिए पूरा भारत संघर्ष करता रहा। इनमें आदिवासी मुख्य-भागीदार रहे। अनेक आदिवासी दबाए गए। फिर भी संघर्ष चलता रहा। इस उद्देश्य से कि नया प्रजातंत्र का युग पैदा होगा। पर ऐसा नहीं हुआ। अंग्रेज़ तो चले गये पर उनकी शासन व्यवस्था जैसे की वैसी रह गयी। नाम प्रजातंत्र और शासन अंग्रेज़ों का। इसका नतीजा यह हुआ कि भारत के

सबसे पिछडे और हशियेकृत आदिवासी समाज और सीमित हो गये। प्रजातंत्र में केवल शक्तिशाली और संपन्न वर्ग ही शामिल थे। अन्य पिछडे एवं दरिद्र व्यक्ति अपने मौलिक अधिकारों से भी वंचित रह गये। भारतीय प्रजातंत्र के षडयंत्र एवं साजिशों को सहते आदिवासी समाज थक चुका है। आज़ादी के बाद आदिवासियों को संविधान में उनका सम्मान सूचक शब्द आदिवासी तक नहीं मिला। बदले में जनजाति शब्द की संज्ञा देती। भारतीय शासन व्यवस्था के गठजोड में आदिवासी अपनी पहचान तक खो बैठा है। सरकार की करोडों रुपयों की योजनाएँ करोडों आदिवासियों को विस्थापित कर दी हैं। भूखे, प्यासे और नंगे जीने की उनकी विवशता का मूल कारण हमारी सत्ता है।

भारतीय समाज में स्वतन्त्रता का अर्थ तभी सार्थक होगा जब सब लोग समानता के हकदार बनेंगे। लेकिन आज परिवर्तन का वातावरण आदिवासी इलाकों में आँधी ला दी है। आज आदिवासी क्षेत्रों में विघटन दस्तक दे रहा है। माना कि सरकार देश की उन्नति केलिए कर रहा है। पर ऐसे उन्नति से क्या फायदा जो दूसरों के लूट से संभव हो। सरकार अपनी ही ज़मीन खोदकर अपना ही घर पराया कर रही है। सत्ता के बलबूते पर पूँजीपति एवं सभ्य समाज ने आदिवासियों का जीवन चकनाचूर कर दिया है। उनके स्वतन्त्र जीवन में हस्तक्षेप कर छल-कपट के मालामाल में फंसा दिया है। आदिवासी हमारी प्रकृति के रक्षक एवं संस्कृति की नींव हैं जिनकी हिफाज़त हमारी ज़िम्मेदारी है।

सत्ता की मनमानी के चंगुल में फंसे आदिवासियों की दयनीयता के प्रति समकालीन कविता संघर्ष करने लगी है। नितिशा खलखो, शान्ति खलखो जैसे

साहित्यकारों का नाम उनमें उल्लेखनीय हैं। शान्ति खलखो अपनी कविता 'जाल' द्वारा जनता के सामने यथार्थ को खडा किया है। कवयित्री बताती हैं -

"धोखाधड़ी कर रहे हम सबसे दिकू,
हम सबके लिए उन्होंने जाल बिछाया ।"[92]

सरकार की नज़रों में आदिवासी कमज़ोर वर्ग हैं। उन्हें अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की संज्ञा देकर समाज में सबसे पिछडा कर दिया है। सरकार अपनी सत्ता के बलबूते पर आदिवासियों को जनजाति कहकर उनका आदिम वंशज होने का हक छीना है। सरकार की कुटिल एवं कर्कश राजनीति के प्रति आदिवासी निरुत्तर है। पुलिस, कानून, मीडिया, सेना सब सरकार की सत्ता रुपी हथियार है। जिनसे आदिवासियों को आसानी से छला एवं सताया जा सकता है। सत्ता के नाम पर अधिकारी वर्ग आदिवासी इलाकों का सर्वनाश कर चुका है। संविधान, कानून और नीतियों के तहत आदिवासी क्षेत्रों में विकास की इमारतें खडी हो गयी हैं। नितिशा खलखो अपनी कविता 'गैलेंटरी अवार्ड' में सत्ताधारियों की सत्ताधारी बने रहने के तंत्रों से सीधा खुलासा करती है -

"सत्ताधारियों को सत्ता में बने रहने का लाभ है
सत्ताधारियों के पास सोने-हीरे और अब तो
प्लेटिनम का भी जुगाड है।"[93]

सत्ताधारियों के नाम प्राकृतिक इलाकों का दोहन आज प्रबल रूप से चल रहा है। प्रकृतिविहीन ज़िन्दगी जीनेवाला सभ्य समाज आदिवासियों की महान

सांस्कृतिक विरासत को समझने में असमर्थ हुए हैं। इसलिए आदिवासियों के जल-जंगल-ज़मीन रुपी सम्पन्नता को छीनकर सभ्य समाज अपना लाभ एवं मुनाफे पर गर्व करता है।

यहाँ पर शान्ति खलखो ने अपनी कविता 'जाल' द्वारा सत्ता के कारण समाज में सबसे छले जाने का दिलासा किया है तो नितिशा खलखो ने अपनी कविता 'गैलेंटरी अवार्ड' में सत्ताधारियों द्वारा समाज में दबे-कुचले जाने के खतरा को समझाया है। सच्चाई यह है कि आदिवासी सिर्फ संवैधानिक एवं कानून के तौर तरीकों के अनुसार और सामाजिक समानता के हकदार बनकर केवल भारतवासी बनना चाहते हैं।

3.48 निष्कर्ष

समकालीन हिन्दी काव्य जगत में आदिवासी एवं गैर-आदिवासी साहित्यकारों ने मिलकर आदिवासी समाज में छायी तमाम परेशानियाँ, समस्याएँ एवं विसंगतियों को विभिन्न पहलुओं के मद्दे नज़र प्रस्तुत करने की सराहनीय कोशिश की है। नयी आर्थिक नीति से उत्पन्न विकास रुपी क्रान्ति ने आदिवासी जीवन को उथल-पुथल कर दिया है। विकासशील समाज से बिलकुल अलग होते हुए भी विकसित समाज के दुष्प्रभावों का वहन करना आज उनकी मजबूरी है। आदिवासियों का जल-जंगल-ज़मीन रुपी संपत्ति को हडपकर सभ्य समाज ने उन्हें प्राचीन सांस्कृतिक विरासत से दूर कर अकेला और बेगाना बना दिया है। साहित्यकार समाज के प्रति सरोकार रखनेवाले होते हैं। शोषितों और पीडितों के प्रति वे कभी अनदेखा नहीं करते। इसलिए सदियों से सताए हुए और आज भी

सताए जानेवाले आदिवासी जीवन की सजीव अभिव्यक्ति उनका मूल उद्देश्य है। सर्वाधिक प्राचीन होने का गौरव रखनेवाले जंगली एवं ग्रामीण परिवेश के इस समाज के आगे आज चौतरफा चुनौतियों की भरमार है। वैश्विक संस्कृति, सरकारी योजनाएँ, पूँजीपतियों की व्यावसायिक एवं मुनाफावादी सोच आदि से उत्पन्न विस्थापन, बेदखल, बेरोज़गारी, भूमि अधिग्रहण आदि कई कारणों से आदिवासी जीवन के उत्पीडन एवं शोषण की प्रक्रिया तेज़ हो गई है। छल और कपट से ईमान बेचता सभ्य मनुष्य आदिवासी इलाकों की फिज़ाएँ और वादियों की खूबसूरत संस्कृति की महक को कभी एहसास नहीं कर पाये। आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा केलिए पैदा हुई यह रचनात्मक ऊर्जा शोषक के प्रतिरोध की प्रक्रिया के रुप में उभरी है। विकास की धूल में उठती हर एक धुएँ में आदिवासियों की जान बसी है। इस जान की रक्षा केलिए साहस झेलने को अब वे तैयार हुए हैं। इसलिए शिक्षित होकर अपने और राष्ट्र के हित केलिए योगदान दे रहे हैं और अपनी अनंत समस्याओं को समाज के सामने ला रहे हैं।

संदर्भ-सूची

1. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.293
2. हरिराम मीणा- आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएँ, पृ.सं.12
3. ग्रेस कुजूर- एक और जनी शिकार, पृ.सं.97
4. शिरोमणि महतो- चाँद से पानी, पृ.सं.57
5. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.41
6. भगवान गव्हाडे- आदिवासी मोर्चा, पृ.सं.29
7. सं. रमणिका गुप्ता- आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, पृ.सं.56
8. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.265
9. वही, पृ.सं.168
10. आलोका कुजूर- नये हस्ताक्षर, पृ.सं.12
11. डॉ. खन्ना प्रसाद अमीन- आदिवासी की मौत, पृ.सं.69
12. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.239
13. वही, पृ.सं.52
14. महादेव टोप्पो- जंगल पहाड के पाठ, पृ.सं.12
15. सं. मदन कश्यप- प्रतिनिधि कविताएँ रमणिका गुप्ता, पृ.सं.46-47
16. निर्मला पुतुल- बेघर सपने, पृ.सं.9

17. सं. रमणिका गुप्ता- आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, पृ.सं.40

18. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.170

19. निर्मला पुतुल- बेघर सपने, पृ.सं.24

20. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.244

21. निर्मला पुतुल- बेघर सपने, पृ.सं.98

22. भगवान गव्हाडे- आदिवासी मोर्चा, पृ.सं.36

23. सं. रमणिका गुप्ता- आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, पृ.सं.58

24. वही, पृ.सं.53

25. वही, पृ.सं.61

26. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.303

27. सं. रमणिका गुप्ता- आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, पृ.सं.54

28. सं. मदन कश्यप- प्रतिनिधि कविताएँ रमणिका गुप्ता, पृ.सं.19-20

29. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.166

30. वही, पृ.सं.231

31. सं. वंदना टेटे- कवि मन जनी मन, पृ.सं.179

32. वही, पृ.सं.108

33. जसिन्ता केरकेट्टा- अंगोर, पृ.सं.58

34. सं. वंदना टेटे- कवि मन जनी मन, पृ.सं.243

35. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.174

36. वही, पृ.सं.54

37. महादेव टोप्पो- जंगल पहाड के पाठ, पृ.सं.73

38. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.58

39. सं. रमणिका गुप्ता- आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, पृ.सं.21

40. डॉ. खन्ना प्रसाद अमीन- आदिवासी की मौत, पृ.सं.23

41. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.255

42. सं. रमणिका गुप्ता- आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, पृ.सं.28

43. अनुज लुगुन- बाघ और सुगना मुण्डा की बेटी, पृ.सं.45

44. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.233

45. वही, पृ.सं.254

46. वही, पृ.सं.269

47. आलोका कुजूर- नये हस्ताक्षर, पृ.सं.63

48. सं. वंदना टेटे- कवि मन जनी मन, पृ.सं.102

49. सं. रमणिका गुप्ता- आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, पृ.सं.43

50. वही, पृ.सं.62

51. सं. वंदना टेटे- कवि मन जनी मन, पृ.सं.33

52. हरिराम मीणा- सुबह के इन्तज़ार में, पृ.सं.44

53. सं. वंदना टेटे- कवि मन जनी मन, पृ.सं.99

54. जसिन्ता केरकेट्टा- अंगोर, पृ.सं.193

55. सं. वंदना टेटे- कवि मन जनी मन, पृ.सं.233

56. आलोका कुजूर- नये हस्ताक्षर, पृ.सं.76

57. सं. रमणिका गुप्ता- आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, पृ.सं.35

58. महादेव टोप्पो- जंगल पहाड के पाठ, पृ.सं.31

59. डॉ. खन्ना प्रसाद अमीन- आदिवासी की मौत, पृ.सं.84

60. महादेव टोप्पो- जंगल पहाड के पाठ, पृ.सं.40

61. जसिन्ता केरकेट्टा- अंगोर, पृ.सं.72

62. सं. रमणिका गुप्ता- आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, पृ.सं.55

63. हरिराम मीणा- आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएँ, पृ.सं.86

64. महादेव टोप्पो- जंगल पहाड के पाठ, पृ.सं.90

65. डॉ. खन्ना प्रसाद अमीन- आदिवासी की मौत, पृ.सं.40

66. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.65-66

67. सं. रमणिका गुप्ता- आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, पृ.सं.55

68. भगवान गव्हाडे- आदिवासी मोर्चा, पृ.सं.37

69. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.280

70. सं. वंदना टेटे- कवि मन जनी मन, पृ.सं.162

71. आलोका कुजूर- नये हस्ताक्षर, पृ.सं.67

72. हरिराम मीणा- आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएँ, पृ.सं.9

73. भगवान गव्हाडे- आदिवासी मोर्चा, पृ.सं.33

74. ग्रेस कुजूर- एक और जनी शिकार, पृ.सं.143

75. शिरोमणि महतो- चाँद से पानी, पृ.सं.95

76. जसिन्ता केरकेट्टा- अंगोर, पृ.सं.26

77. महादेव टोप्पो- जंगल पहाड के पाठ, पृ.सं.28

78. आलोका कुजूर- नये हस्ताक्षर, पृ.सं.48

79. सं. वंदना टेटे- कवि मन जनी मन, पृ.सं.263

80. हरिराम मीणा- आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएँ, पृ.सं.24

81. सं. वंदना टेटे- कवि मन जनी मन, पृ.सं.32

82. वही, पृ.सं.90

83. भगवान गव्हाडे- आदिवासी मोर्चा, पृ.सं.44

84. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.162

85. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.230

86. जसिन्ता केरकेट्टा- अंगोर, पृ.सं.46

87. अनुज लुगुन- बाघ और सुगना मुण्डा की बेटी, पृ.सं.43

88. ग्रेस कुजूर- एक और जनी शिकार, पृ.सं.122

89. निर्मला पुतुल- बेघर सपने, पृ.सं.66

90. अनुज लुगुन- बाघ और सुगना मुण्डा की बेटी, पृ.सं.90

91. डॉ. खन्ना प्रसाद अमीन- आदिवासी की मौत, पृ.सं.73-74

92. सं. वंदना टेटे- कवि मन जनी मन, पृ.सं.165

93. सं. रमणिका गुप्ता- कलम को तीर होने दो, पृ.सं.207

चौथा अध्याय

आदिवासी कविताओं का शिल्प

4.1 विषय प्रवेश

साहित्य का मूल्यांकन उसके कलापक्ष और भावपक्ष दोनों को ध्यान में रखकर किया जाता है। साहित्यकार अपनी अनुभूतियों को कल्पनाओं एवं विचारों को रूपायित करने केलिए साहित्य का आधार लेते हैं और उन्हें शब्दबद्ध एवं लिपिबद्ध करते हैं। आज आदिवासी साहित्यकार हिन्दी भाषा के ज़रिए या अनुवाद के माध्यम से अपने भीतर के प्रतिरोध एवं आक्रोश को साहित्य की लगभग सभी विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहे हैं और इसके लिए वे सुंदर शिल्प विधान को अपना रहे हैं। ऐसे में समकालीन हिन्दी कविता में आदिवासी साहित्य या आदिवासी विमर्श का पदार्पण संपूर्ण काव्य जगत् के कलापक्ष एवं भावपक्ष पर एक नवीन देन ही है। हिन्दी के आदिवासी जीवन केन्द्रित कविताओं का शिल्प विधान को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है :-

4.2 भाषा

भारत भाषायी और सांस्कृतिक बहुलता वाला देश है। भाषा को संस्कृति का प्रतिरूप माना जाता है। किसी भी भाषा का मरना उस संस्कृति का मरना है। भूमण्डलीकरण और नव-साम्राज्यवादी नीतियों का सबसे अधिक प्रभाव जन भाषाओं या आदिवासी भाषाओं पर है। क्योंकि उनकी भाषाएँ लिखित रूप से अधिक वाचिक और मौखिक परम्परा में जीवित है। आज आदिवासी जीवन और संस्कृति के साथ भाषाओं की अस्मिताओं पर भी खतरा पड़ गया है। भूमण्डलीकरण के दौर में आदिवासी भाषाओं के खतरे को लेकर समकालीन

युवा आदिवासी साहित्यकार काफी बेचैन नज़र आते हैं। भगवान गव्हाडे, निर्मला पुतुल, अनुज लुगुन, रमणिका गुप्ता, फ्रांसिस्का कुजूर जैसे अनेक साहित्यकार काव्यात्मक रचना के माध्यम से भाषा की सीमा को बढाने की कोशिश कर रहे हैं। मशहूर कवयित्री फ्रांसिस्का कुजूर अपनी कविता 'मेरी मातृभाषा कुडुख' के माध्यम से संपूर्ण आदिवासी भाषाओं को संकट से बचाने की सलाह देती है। वे लिखती हैं -

"भाषा है समाज का मेरुदंड
बचाता है जो समाज की संस्कृति
बचाता है जो अपनों की पहचान।"[1]

कवयित्री का मानना है कि आदिवासी भाषाओं को बचाने से ही उनकी संस्कृति, सभ्यता एवं अस्मिता की रक्षा कर सकते हैं। यदि भाषा समाप्त हो जाएगी तो वे सूखे-पत्तों के समान झड जाएँगे। भूमण्डलीकरण की आँधी आदिवासियों के साथ आदिवासी भाषाओं को भी विलुप्त कर रही है।

दशकों के प्रतिकार और संघर्ष के बाद अब आदिवासी साहित्य सामाजिक विज्ञान के एक स्वायत्त विषय के रुप में केन्द्र में है। आदिवासी समाज की ही तरह आदिवासी साहित्य सामाजिक विज्ञान के एक स्वायत्त विषय के रुप में केन्द्र में है। आदिवासी साहित्य का संघर्ष अब जारी है। आज आदिवासी भाषाएँ संकट का सामना कर रही हैं। आदिवासी समाज से जुडे साहित्यकार और बुद्धिजीवी आदिवासी भाषा और संस्कृति को बचाने केलिए साहित्य के ज़रिए रचनात्मक लडाई लड रहे हैं।

भूमण्डलीकरण के सहारे भारत की बहुआयामी संस्कृति और भाषा को नष्ट करने की साजिश चल रही हैं। क्योंकि बाज़ारवाद केलिए सबसे बडा खतरा बहुभाषिकता है। इसलिए भूमण्डलीकरण और आर्थिक नीतियों के नाम पर विविधताओं को नष्ट कर एक संस्कृति और एक भाषा को अपनाने की चाल रची जा रही हैं।

भाषा साहित्य का मूल उपकरण है। भाषा में भी समय के अनुरुप बदलाव आया है और समकालीन साहित्यकार भाषिक परिवर्तन का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं। समकालीन समय में रचनाकार काव्य भाषा केलिए अलंकार, साज-सज्जा आदि की परवाह नहीं करते। लेकिन काव्य सौन्दर्य से उनकी नज़र नहीं हटी है। काव्य सौन्दर्य के समर्थन केलिए व्यंग्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, आँचलिकता आदि का उपयोग करते हैं। समय के अनुरुप भाषा का प्रयोग करने में समकालीन आदिवासी साहित्यकार कहाँ तक समर्थक रहे यह जानने केलिए उनकी काव्य भाषा के विभिन्न पहलुओं को जानना अनिवार्य होगा। आदिवासी साहित्य की काव्य भाषा की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :-

4.2.1 मिथकीय- प्रयोग

मिथक हमारी परंपरा एवं संस्कृति से जुडा है। आदिवासी जीवन में मिथक का अहम स्थान है। आदिवासी कविता में प्रस्तुत मिथक संस्कृति के साथ जुडा हुआ है। साथ ही पौराणिक ग्रन्थों से भी संबन्ध रखता है। आदिवासी साहित्यकार मिथकीय प्रसंगों के सहारे आदिवासी समस्याओं को वर्तमान सन्दर्भ

में प्रस्तुत करने की कोशिश कर रहे हैं। ऐसे रचनाकारों में हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, भगवान गव्हाडे, वंदना टेटे, यशोदा मुर्मु जैसे कई साहित्यकार शामिल हैं। हरिराम मीणा की कविता है 'एकलव्य पुनर्पाठ'। प्रस्तुत कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :-

> ''वह कटा अंगूठा
>
> एकलव्य
>
> था मात्र देह का अंग नहीं।''[2]

प्रस्तुत कविता के माध्यम से रचनाकार ने आदिवासी समाज की सच्चाई का उद्घाटन करने के साथ सभ्य समाज की जटिल मानसिकता को भी रेखांकित करने की कोशिश की है।

हरिराम मीणा के अलावा महादेव टोप्पो की कविताएँ- 'तुमसे, आदमी कहलाने के गुर नहीं सीखूँगा!', 'नौकरी पर कालहाँडिर रोड जाते बेटे के लिए' आदि में एकलव्य को केन्द्र में रखकर आदिवासी समाज की चर्चा की है।

उसी प्रकार भगवान गव्हाडे की कविताएँ हमें रामायण, महाभारत की ओर ले चलती हैं। भगवान गव्हाडे की 'लक्ष्मणरेखा' कविता में लक्ष्मणरेखा के माध्यम से रामायण का प्रसंग आता है। भगवान गव्हाडे की एक ओर कविता है आदिवासी 'महामानव'।

> ''शबरी के जूठे बेर खाकर वनवास
>
> में राम रह सखे जीवित।''[3]

वंदना टेटे की 'तुम कौन हो?' कविता में सीता, अहल्या और द्रौपदी के माध्यम से स्त्री शोषण एवं अत्याचार की बात बतायी गयी है। यशोदा मुर्मु की कविता है- 'स्वाधीन भारत में है कहाँ नारी का स्थान।' इसमें वर्तमान स्त्री बलात्कार की परंपरा को मिथकीय प्रसंग के माध्यम से पेश करने का सफल प्रयास किया गया है। कविता की पंक्तियाँ हैं-

> "भरी सभा में हुआ था
> वस्त्रहरण द्रौपदी का"[4]

मिथक के माध्यम से वर्तमान स्त्री जीवन पर गंभीर विचार-विमर्श यहाँ मिलता है।

इस प्रकार समकालीन आदिवासी कविताएँ आदिवासी समाज में चल रहें शोषण एवं अन्याय को बहुत ही मार्मिक ढंग से मिथक के माध्यम से प्रस्तुत कर रही हैं।

4.2.2 प्रतीकात्मकता

प्रतीकात्मकता का काव्य भाषा में प्रमुख स्थान है। आदिवासी साहित्यकार ने प्रतीकों के माध्यम से नई अर्थवत्ता देने का प्रयास किया है। आदिवासी कविताओं में प्रयुक्त प्रतीकात्मकता केलिए अनुज लुगुन की कविता 'बाघ' एक सशक्त उदाहरण है। प्रस्तुत कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

> "जंगल पहाडी के इस ओर है और
> बाघ पहाडी के उस पार

पहाडी के उस पार राजधानी है,

उसने अपने नाख़ून बढा लिए हैं।"[5]

आज के वैश्वीकृत समाज ने पूरी दुनिया को अपने कब्जे में घेर लिया है। ऐसे माहौल में आदिवासी समाज का जीवन अत्यन्त दयनीय बन गया है। प्रस्तुत कविता में कवि ने आदिवासी जीवन को प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त करने का प्रयास किया है।

4.2.3 व्यंग्यात्मकता

व्यंग्यात्मकता काव्य भाषा की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। आदिवासी साहित्यकार ने भाषा सौन्दर्य को व्यंग्य के माध्यम से स्थापित करने का प्रयास किया है। आदिवासी समाज के हर क्षेत्र में अन्याय और अत्याचार दिन-प्रतिदिन बढता जा रहा है। इस यथार्थ को सामने लाने केलिए साहित्यकार ने व्यंग्य को अपनाया। समकालीन आदिवासी कवयित्री जसिन्ता केरकेट्टा की कविता 'नदी पहाड और बाज़ार' में बाज़ारीकृत वातावरण में तहस-नहस होते आदिवासी जीवन को व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त किया है -

"भैया!
थोडी बारिश थोडी गीली मिट्टी
एक बोतल नदी वो डिब्बाबन्द पहाड।"[6]

प्रस्तुत कविता में वैश्वीकरण एवं आर्थिक विकास के फलस्वरूप आदिवासी जीवन में उत्पन्न विभिन्न समस्याओं को व्यंग्य के तेवर स्वर में प्रस्तुत करने की कोशिश हुई है।

4.3 शब्द प्रयोग

आदिवासी साहित्यकारों की काव्य भाषा में विविधता पायी जाती है। क्योंकि परिस्थिति और समय के अनुरूप शब्दों का प्रयोग करने में वे सक्षम हुए हैं। समकालीन आदिवासी कविताओं में काव्य भाषा के सौन्दर्य को बढाने केलिए समान शब्दों की पुनरावृत्ति, अंग्रेज़ी शब्द आदि का प्रयोग किया जा रहा है।

4.3.1 पुनरावृत्ति

समकालीन आदिवासी कविताओं में समान शब्दों की पुनरावृत्ति एक प्रमुख विशेषता है। भगवान गव्हाडे, महादेव टोप्पो आदि की कविताओं में यह विशेषता ज़्यादा दिखाई देती है। भगवान गव्हाडे की कविता 'आदिवासी संस्कृति' को उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है -

"हमारा घर जंगल-ज़मीन
हमारा संसार खेत-खलिहान।"[7]

शब्दों की पुनरावृत्ति एक और प्रकार से भी पायी जाती हैं। एक ही पंक्तियों में शब्दों की बार-बार पुनरावृत्ति कविता की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। वंदना टेटे की कविता 'सीधी कैसे चलूँ' में 'रकम-रकम की बातें' और जसित्ता

केरकेट्टा की 'गुलाम' कविता में लोट-लोट के मत थूमना जैसे प्रयोग मिलते हैं। इससे कविता का सौन्दर्य बढ जाता है।

4.3.2 शब्द के नये प्रयोग

तकनीकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में आदिवासी साहित्यकार साहित्य में वाणिज्य या कीबार्ड के शब्दों का प्रयोग करने लगे हैं। आदिवासी लेखिका आलोका कुजूर की कविता 'एक ही खौफ' में इसका उदाहरण मिलता है-

"मुझे तो लहु@खून का धार लागता है।"[8]

4.3.3 अंग्रेज़ी शब्द

समकालीन आदिवासी कविताओं में अंग्रेज़ी शब्द उपलब्ध है। अनुज लुगुन, खन्ना प्रसाद अमीन जैसे अनेक साहित्यकारों ने अपनी कविताओं में अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं। खन्ना प्रसाद अमीन की कविता 'मृत्यु की ओर' में प्रयुक्त अंग्रेज़ी शब्द इस प्रकार है -

"पावर प्रोजेक्ट या केमिकल फैक्ट्रीओं से
ओईल, गैस, हीरे खनिज तत्वों का।"[9]

4.3.4 लोक शब्द

समकालीन आदिवासी केन्द्रित कविताओं में लोक शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक बात है। क्योंकि आदिवासी भाषाएँ मौखिक हैं। इसलिए हज़ारी लाल मीणा राही, सहदेव सोरी, भुवन लाल सोरी, सरिता सिंह बडाईक, सरोज

केरकेट्टा जैसे अनेक साहित्यकार अपनी कविताओं में लोक शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं। मशहूर लेखिका सरिता सिंह बडाईक की कविताओं में कई 'लोक शब्द' प्रयुक्त हुए हैं। उनकी 'भूले नहीं भुलाये' नामक कविता में प्रयुक्त लोक शब्द इस प्रकार है-

''दोईन - खेत

पेरवा - कबूतर

तेतर - इमली

कुमनी - मछली फाँसने की टोकरी''

सरोज केरकेट्टा की कविताओं में प्रयुक्त लोक शब्द देखिए-

थारू - मिट्टी से बना खाना बनाने का बर्तन

तावा - हंडिया का बर्तन

4.4 शैली

साहित्यकार अपने विचारों एवं भावों को किस प्रकार प्रकट करते हैं उसी को शैली कहते हैं। आदिवासी साहित्यकारों ने अपने साहित्य में विविध शैलियों का प्रयोग किया है। आदिवासी कविताओं में उपलब्ध विभिन्न शैलियाँ निम्नांकित हैं :-

4.4.1 स्मृतिपरक शैली

स्मृतिपरक शैली आदिवासी कविताओं की प्रमुख विशेषता एवं शैली रही है। समकालीन रचनाकार जैसे ग्रेस कुजूर, शंकर लाल मीणा, फ्रांसिस्का कुजूर

जैसे अनेक साहित्यकारों की कविताओं में यह शैली पायी जाती है। ग्रेस कुजूर की 'अमन की संजीवनी' नामक कविता इसके लिए सशक्त उदाहरण है -

"याद आता है मुझको वो दिन
जब पहली बार तुम सटके थे
पेट के बल मचल-मचल कर
कई बार तुम लुढके थे।"[10]

4.4.2 पत्रात्मक शैली

समकालीन आदिवासी कविताएँ 'पत्रात्मक शैली' में भी लिखी जा रही हैं। मशहूर आदिवासी कवयित्री डॉ. दमयन्ती सिंकु की कविता 'प्यारे मित्र' पत्रात्मक शैली में लिखी गयी है। प्रस्तुत कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

"वक्त गुज़र गया मेरे दोस्त
कोई खुशी नहीं है, मेरे दोस्त"[11]

4.4.3 प्रश्नात्मक शैली

प्रश्नात्मक शैली आदिवासी कविताओं की प्रमुख विशेषता रही हैं। सुषमा असुर, जसिन्ता केरकेट्टा, वंदना टेटे आदि अनेक साहित्यकार अपनी कविताओं में प्रश्नात्मक शैली को अपनाया है। मशहूर कवयित्री सुषमा असुर की महत्वपूर्ण कविता है 'कितने दिन?'। प्रस्तुत कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

"कितना दिन ज़मीन
बेचा हुआ रुपया पैसा रहेंगा?

कितना दिन पत्थर तोडोगे?

पत्थर खेत क्यों तोड रहे हो?"[12]

सभ्य समाज के करतूतों से दबा-कुचला जाता आदिवासी समाज अपने जीवन के प्रति उदास होकर सवाल करने लगा है।

4.4.4 वर्णनात्मक शैली

आदिवासी साहित्यकारों ने वर्णनात्मक शैली को भी अपनाया है। प्रकृति, गाँव और आदिवासी परिवार की स्थितियों के साथ उनके रीति रिवाज़, पेशे व आपसी संबन्धों का सुन्दर चित्रण कविताओं में उपलब्ध होता है। मशहूर लेखिका निर्मला पुतुल का नाम उनमें उल्लेखनीय हैं। उनकी 'माँ' नामक कविता में इसका यथार्थ अंकन मिलता है -

"अहले सुबह जागकर

धान सिझाती माँ

महकते धान की खुशबू से

भर जाती है मेरे अधा

जागे सुबह को।"[13]

4.4.5 नाटकीय शैली

आदिवासी कविताएँ नाटकीय शैली में लिखी जा रही हैं। दृश्य-१, दृश्य-२ इस प्रकार एक ही कविता को दृश्यों में विभक्त कर रहे हैं। समकालीन

आदिवासी कवि महादेव टोप्पो की कविता 'झारखंड गठन के बाद-कुछ दृश्य' इसके लिए सशक्त उदाहरण है। जैसे -

> "दृश्य १
> राँची अब सिर्फ
> एक पर्यटन स्थल नहीं है
> दृश्य २
> रोज़ राँची शहर में
> निकलते जुलूसों को देखकर।"[14]

इस प्रकार प्रस्तुत कविता को छह दृश्यों में विभक्त किया है।

4.4.6 लोक गीत

समकालीन आदिवासी साहित्यकार अपनी कविताओं में लोक गीतों का प्रयोग करते हैं। महादेव टोप्पो की कविता 'माँदर का साथ' में इसका उदाहरण देखिए -

> "खेल खोट्टरा भइया रे, मुक्का
> केचका लेखा लग्गी।"[15]

प्रस्तुत लोक गीत उराँव भाषा का है और इसका हिन्दी में अर्थ होता है -

> "माँदर का फूटना, पत्नी की मौत की तरह कष्टदायक है।"[16]

4.5 मुहावरे तथा कहावतें

आदिवासी लोग ज़्यादातर आपसी बातचीत में मुहावरे तथा लोकोक्तियों का प्रयोग करते हैं। आदिवासी साहित्यकार अपनी कविताओं में आदिवासी समाज व जीवन में छायी तमाम परेशानियाँ एवं समस्याओं को मुहावरे तथा लोकोक्तियों के सहारे अभिव्यक्त कर रहे हैं। ग्रेस कुजूर, भगवान गव्हाडे, शिरोमणि महतो आदि का नाम उनमें उल्लेखनीय हैं। शिरोमणि महतो की कविता 'दरिन्दे' में इसका उदाहरण देखिए -

> "अखबार पढते हुए
> आँखें भर आईं
> कलेजा मुँह को आ गया।"[17]

4.6 शीर्षक का विस्तार

शीर्षक का विस्तार आदिवासी काव्य विशेषताओं में से एक हैं। वास्तव में शीर्षक का विस्तार समकालीन साहित्य की देन है। समकालीन आदिवासी साहित्यकार निर्मला पुतुल, महादेव टोप्पो, सुषमा असुर, जसिन्ता केरकेट्टा, वंदना टेटे आदि की कविताओं में यह विशेषता मूल रूप से पाया जाता है। जैसे- सुषमा असुर की कविता 'हम ज़रूर जिएँगे ही पठार की तरह निडर' और जसिन्ता केरकेट्टा की कविता 'पहाडों पर उगे असंख्य बाँसों का रहस्य'।

4.7 शीर्षकों का खण्डों में विभाजन

समकालीन आदिवासी कविताओं का शीर्षक 'खण्डों में विभक्त' हैं। वंदना टेटे, महादेव टोप्पो आदि की कविताओं में यह देखा जा सकता है। वंदना टेटे की एक कविता का शीर्षक देखिए -

बारिश-१

बारिश-२

4.8 कविताओं का खण्डों में विभाजन

समकालीन आदिवासी रचनाकार कविताओं को खण्डों में विभक्त करने लगे हैं। अनुज लुगुन, ग्रेस कुजूर, हरिराम मीणा जैसे साहित्यकारों की कविताएँ इसके लिए सशक्त उदाहरण हैं। अनुज लुगन की कविता 'गुरिल्ले का आत्मकथन' आठ खण्डों में विभक्त हैं। उसी प्रकार ग्रेस कुजूर की कविता 'एक और जनी शिकार' दो खण्डों में विभक्त हैं और हरिराम मीणा की कविता 'आदिवासी जलियाँवाला :मानगढ' छह खण्डों में विभक्त हैं।

4.9 कविता के आकार-प्रकार में बदलाव

समकालीन आदिवासी कविताओं के आकार प्रकार में बदलाव पाया जाता है। कहीं नन्हीं कविताएँ हैं तो कहीं लम्बी कविताएँ लिखी जाती हैं। रामदयाल मुण्डा, हरिराम मीणा जैसे साहित्यकारों की कविताएँ कभी-कभी छोटी होती हैं तो अनुज लुगुन, महादेव टोप्पो जैसे रचनाकारों की कविताएँ लगभग सौ से भी अधिक पंक्तियों में लिखी गयी हैं।

4.10 निष्कर्ष

रचना और रचना दृष्टि समय व परिस्थितियों के साथ बदलती रहती हैं। आदिवासी साहित्य आज समकालीन हिन्दी कविता का केन्द्र बिन्दु बन गया है। आदिवासी साहित्य का कलापक्ष विषय की विविधता से संपन्न है तो भावपक्ष शब्दों व शैली की विविधता से संपन्न है। क्योंकि आदिवासी साहित्यकार अपने अनुभव, प्रतिभा और परिस्थिति के अनुसार कविताओं को नए शिल्प में परिवर्तित करने में सक्षम रहे हैं और निश्चय ही आदिवासी साहित्यकार भाषा की अस्मिता के साथ स्थिति का विश्लेषण शिल्प के नये आयामों के साथ प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं।

संदर्भ-सूची

1. सं. वंदना टेटे- कवि मन जनी मन, पृ.सं.107
2. हरिराम मीणा- आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएँ, पृ.सं.62
3. भगवान गव्हाडे- आदिवासी मोर्चा, पृ.सं.49
4. सं. वंदना टेटे- कवि मन जनी मन, पृ.सं.177
5. अनुज लुगुन- बाघ और सुगना मुण्डा की बेटी, पृ.सं.33
6. जसिन्ता केरकेट्टा- अंगोर, पृ.सं.28
7. भगवान गव्हाडे- आदिवासी मोर्चा, पृ.सं.12
8. आलोका कुजूर- नये हस्ताक्षर, पृ.सं.36
9. खन्ना प्रसाद अमीन- आदिवासी की मौत, पृ.सं.80
10. ग्रेस कुजूर- एक और जनी शिकार, पृ.सं.60
11. सं. वंदना टेटे- कवि मन जनी मन, पृ.सं.147
12. वही, पृ.सं.30
13. निर्मला पुतुल- बेघर सपने, पृ.सं.9
14. महादेव टोप्पो- जंगल पहाड के पाठ, पृ.सं.28
15. वही, पृ.सं.38
16. वही, पृ.सं.38
17. शिरोमणि महतो- चाँद से पानी, पृ.सं.44

पाँचवाँ अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

आदिवासी शब्द दो शब्दों के मेल से बना है और इसका अर्थ है आदिम निवासी। भारतीय जनसमूह का एक बडा हिस्सा इन लोगों का है। हमारे देश की आरम्भिक एवं मूल प्रजाति आज आदिवासी, मूल निवासी, वनवासी, जनजाति आदि कई नामों से जाने जा रहे हैं। देश के विभिन्न क्षेत्रों में बिखरे ये लोग विशेष जीवन शैली को अपनाते हुए निश्चित भौगोलिक प्रदेश में जीवनयापन करते हैं। आदिवासियों की अपनी अलग सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विशेषताएँ हैं। इसलिए उनकी आजीविका, खान-पान, पहनावा, घर-द्वार, नृत्य-संगीत, देवी-देवता, पर्व-त्योहार आदि सभी में यह भिन्नता पायी जाती है। जल-जंगल, गुफा-पहाड, छायादार वृक्ष आदि को वास स्थान बनानेवाला ये समूह उसी से अपनी आजीविका का मार्ग ढूँढ लेते हैं। शिकार करना, पशु पक्षियों का पालन, खेती करना आदि उनकी आजीविका के मुख्य मार्ग हैं। आदिवासियों की जीवन शैली में समानता होते हुए भी अन्दर ही अन्दर असमानता की बात झलकती है और यह असमानता उनके रीति-रिवाज़, पर्व-त्योहार आदि में पायी जाती है। लेकिन उनकी जीवन शैली में प्रकृति एवं आदिमता की निखार हमेशा मौजूद रहती है। और ऐसे सुन्दर एवं सुदृढ जीवन को बनाये रखने का प्रयास एवं प्रयत्न वे हमेशा से करते आए हैं।

हमारे देश में भौगोलिक दृष्टि से देखा जाए तो दक्षिण भारत में केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक आदि राज्यों में कोरग, कुरिच्यर, पणिया, चेंचु, उल्लाडर,

काटुनाय्क्कर, चोलनाय्क्कर जैसे जनजातियाँ निवास करती हैं। मध्य एवं पूर्व भारत के महाराष्ट्र, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, झारखण्ड, बिहार, उडीसा आदि राज्यों में संथाल, मुण्डा, बंजारा, खरवार, भूमिज, भील, बेदिया, सहरिया, मीणा, गोंड, किसान, हो, जैसे प्राचीन आदि वंशजों का निवास है। उसी प्रकार उत्तर भारत के मुख्य क्षेत्र कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, उत्तरप्रदेश जैसे राज्यों में किन्नौर, भोटिया, थारु, बोक्सा, गुज्जर, पाँगी आदि जनजातियाँ निवास करती हैं। पूर्वोत्तर भारत में देखा जाए तो असम, नागालैंड, मेघालय, त्रिपुरा जैसे राज्यों में खासी, गारो, मिजो, नागा, नोक्ते आदि जनजातियों का मुख्य निवास स्थान है। अंडमान निकोबार द्वीप समूहों में ग्रेट अंदमानी, जारवा, ओंगी, शोम्पेन आदि पाये जाते हैं। भारत के प्रमुख आदिवासियों की गहन पडताल से यह बात और स्पष्ट होती है कि अलग-अलग नामों से अलग-अलग प्रदेशों में पाये जानेवाले ये समूह अपनी परंपरा एवं संस्कृति के माध्यम से अनेकता में एकता का एहसास दिलाते रहते हैं।

आदिवासी जीवन संघर्ष एवं प्रेम के मेल से बना है। इसलिए भारतीय इतिहास की लम्बी कडी में आदिवासियों का अहम स्थान है। किन्तु सभ्य समाज ने इन्हें इतिहास के पन्नों से ओझल रखा। इसलिए हम उनके संघर्षमय जीवन और वीर नेताओं से अनजान रहे। पर आज वे खुद, पढ-लिखकर इतिहास की वास्तविकता को सामने ला रहे हैं और समय-समय पर जन्मे आदिवासी नेता और उनके प्रमुख आन्दोलनों से परिचित करा रहे हैं। चेर आन्दोलन, हो आन्दोलन, भूमिज आन्दोलन, खरवार आन्दोलन, मुण्डा

आन्दोलन, मिजो आन्दोलन आदि आदिवासी आन्दोलनों में प्रमुख हैं। इन आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेनेवाले नेताओं में तिलका मांझी, सिद्धु एवं कान्हु, चूडामन राय, बिरसा मुण्डा, ताना भगत आदि का नाम उल्लेखनीय हैं। अहम बात यह है कि आदिवासी पुरुष नेताओं के साथ आदिवासी महिलाएँ भी शामिल थीं। सिनगी दई, चम्पी दई, केइली दई, फूलो, झानो, माकी आदि आदिवासी महिलाओं का जीवन क्रान्तिकारी जीवन से जुडा था। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति केलिए आदिवासियों की अहम भूमिका रही है। लेकिन इतिहास में कहीं भी दर्ज नहीं हुआ।

मूल रूप से देखा जाए तो आज भी मानवीय जीवन के प्राथमिक धरातल पर ही अधिकांश आदिवासियों का सामान्य जीवन गुज़रता है। किन्तु जंगलों में रहते हुए और अशिक्षित होते हुए भी वे अपार ज्ञान और काबिलियत के हकदार हैं और यह पूरी मानव सभ्यता केलिए चौकानेवाली बात है। फिर भी सदियों से सभ्य समाज उन्हें मुख्य धारा से जोडने की बात को परिधि में रखता आया। मगर आज वे खुद पढ-लिखकर अपने इतिहास एवं वर्तमान की वास्तविकता को सामने ला रहे हैं और सभ्य समाज द्वारा बनाए गए दायरे को ध्वंस कर आदिवासी खुद मुक्ति की राह ढूँढ रहे हैं। और वे साहित्य रुपी हथियार को अपने हित केलिए उपयोग कर रहे हैं।

सामाजिक प्रतिबद्धता के प्रति साहित्यकार अपनी रचनात्मकता को हमेशा कायम रखते हैं। क्योंकि साहित्य का मूल उद्देश्य सामाजिक यथार्थ से अवगत कराना है। वास्तव में इक्कीसवीं सदी ने साहित्य केलिए नये-नये रास्ते खोल

दिए हैं। इसलिए आज स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, पारिस्थितिक विमर्श, किन्नर विमर्श आदि विमर्शों के साथ आदिवासी विमर्श भी चर्चा के केन्द्र में हैं। उपन्यास, कविता, कहानी, नाटक, संस्मरण, यात्रा-वृत्तान्त, निबन्ध, आलोचना आदि साहित्य की महत्वपूर्ण विधाएँ हैं और आज इन सभी विधाओं में आदिवासी साहित्य कदम रख़ चुका है।

साहित्य की लगभग सभी विधाओं में आज आदिवासी की बहस चल रही है। उपन्यास साहित्य की महत्वपूर्ण विधाओं में से एक है। सर्वेक्षण के हिसाब से यह बात ज्ञात हुआ है कि उपन्यास विधा में आदिवासी एवं गैर-आदिवासियों ने मिलकर लगभग पच्चास-साठ से भी ज़्यादा उपन्यास लिख़े हैं। ख़ास बात यह है कि उपन्यास लेख़न की आरम्भिक समय से ही आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यास रचे गये हैं। हिन्दी के आरम्भिक उपन्यास एवं उपन्यासकारों में जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का 'बसंत मालती' (1899), ब्रजनंदन सहाय कृत 'अरण्य बाला' (1904), मन्नन द्विवेदी कृत 'रामलाल' (1904) आदि प्रमुख़ हैं। आगे हिन्दी के प्रमुख़ आदिवासी जीवन पर आधारित उपन्यासों एवं उपन्यासकारों में संजीव कृत 'धार', 'जंगल जहाँ शुरू होता है', 'पाँव तले की दूब', वीरेन्द्र जैन कृत 'डूब एवं पार', मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी', महुआ मांजी का 'मरेगगोडा नीलकंठ हुआ', रणेन्द्र कृत 'ग्लोबल गाँव के देवता', हरिराम मीणा का 'धूणी तपे तीर', पीटर पॉल एक्का का 'पलाश के फूल' आदि उल्लेख़नीय हैं।

आदिवासी जीवन पर आधारित आरम्भिक उपन्यासों में उनकी जीवन शैली, संस्कार एवं प्रथाओं को महत्व दिया था। बाद में अंग्रेज़ों के अत्याचार,

तत्कालीन शासकों का शोषण आदि प्रमुख रहे। वैश्वीकृत या समकालीन समय तक आते वक्त उपन्यासों में आदिवासी जीवन से जुडी भयानक एवं गंम्भीर समस्याएँ आगे आने लगीं। इनमें विस्थापन, धर्मान्तरण, कोयला खदानों का निर्माण, विकिरण, आदिवासी स्त्री शोषण, भूमि अधिग्रहण आदि प्रमुख रहें। इस प्रकार आज आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यासों का क्षेत्र काफी विस्तृत हो चुका है।

उपन्यास के समान कहानी भी साहित्य की महत्वपूर्ण विधा है। समकालीन कहानी समय के बारीक बदलाव पर भी नज़र रखने लगी है। इस प्रकार आदिवासी विमर्श ने समकालीन कहानी के इतिहास में अपनी जगह बना ली है। आदिवासी जीवन केन्द्रित अनेक कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में छपकर आ रही हैं। कई कहानी संकलन एवं संपादित संकलन भी प्रकाशित हो रहे हैं।

हिन्दी के गैर-आदिवासी कहानीकार एवं कहानी संकलनों में- योगेन्द्रनाथ सिंहा का 'पहाड की पुकार', मेहरुन्निसा परवेज़ की 'मेरी बस्तर की कहानियाँ', राकेश कुमार सिंह का 'महुआ मांदल और अंधेरा' आदि प्रमुख हैं। हिन्दी के आदिवासी कहानीकार एवं कहानी संकलनों में वाल्टर भेंगरा तरुण का 'जंगल की ललकार', शंकर लाल मीणा का 'आखिर कब तक', पीटर पॉल एक्का कृत 'राज कुमारों के देश में', रोज केरकेट्टा का 'पगहा जोरी-जोरी रे घाटो' आदि प्रमुख हैं।

आदिवासी कहानियों के मूल में उनकी गरीबी, अशिक्षा, भूख, पिछडापन आदि के साथ धर्मान्तरण, नयी पीढी एवं पुरानी पीढी के बीच का टकराव, स्त्री

शोषण आदि कई पहलू आते हैं। कहानी लेखन की परंपरा को आगे बढाने में मंगल सिंह मुण्डा, सिकरादास तिर्कि, फ्रांसिस्का कुजूर आदि रचनाकार सक्रिय हैं।

कविता साहित्य की सबसे पुरानी एवं महत्वपूर्ण विधा है। इसलिए आदिवासी का ज़िक्र प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध है। रामायण, महाभारत आदि उनमें प्रमुख हैं। हिन्दी की जनवादी विचारधारा आदिवासी जीवन को लेकर काफी बेचैन नज़र आती हैं। इस प्रकार नागार्जुन, इन्द्र बहादूर सिंह जैसे रचनाकार आदिवासी जीवन की वास्तविकता को समाज के सामने लाने का प्रयास करते हैं। उनकी श्रेणी को आगे बढाते हैं समकालीन कवि अरुण कमल, राजेश जोशी, कुमार अम्बुज, ज्ञानेन्द्रपति जैसे रचनाकार। किन्तु आदिवासी कविता एक विमर्श के रुप में या आन्दोलन के रुप में समकालीन समय में ही उभर आयी है। और उसकी नीव डालने में मशहूर कवयित्री निर्मला पुतुल का नाम उल्लेखनीय हैं। उनका काव्य संकलन 'नगाडे की तरह बजते शब्द' आदिवासी काव्य जगत केलिए मील का पत्थर है। हिन्दी काव्य जगत् में आदिवासी एवं गैर-आदिवासी साहित्यकार एक साथ शामिल हैं। हिन्दी के आदिवासी कवि और उनकी कृतियों में हरिराम मीणा का 'सुबह के इन्तज़ार में', भगवान गव्हाडे का 'आदिवासी मोर्चा', महादेव टोप्पो का 'जंगल पहाड के पाठ', निर्मला पुतुल का 'बेघर सपने', जसिन्ता केरकेट्टा का 'अंगोर', ग्रेस कुजूर का 'एक और जनी शिकार' और अनुज लुगुन की लम्बी कविता 'बाघ और सुगना मुण्डा की बेटी' आदि प्रमुख हैं तो गैर-आदिवासियों में खन्ना प्रसाद

अमीन का 'आदिवासी की मौत', विनोद कुमार शुक्ल का 'कभी के बाद अभी', रमणिका गुप्ता कृत 'प्रकृति युद्धरत है', 'आदिम से आदमी तक' आदि महत्वपूर्ण हैं। इनके अलावा- सरिता सिंह बडाईक, लक्ष्मण सिंह कावडे, हज़ारीलाल मीणा राही, ग्लैडसन डुंगडुंग, नितिशा खलखो, ज्योति लकडा, शिशिर टुडू, सरस्वती गागराई, सरोज केरकेट्टा' आदि अनेक आदिवासी साहित्यकार कविता को समृद्ध बना रहे हैं।

आलोचना, संस्मरण आदि क्षेत्र भी आदिवासी साहित्य जगत केलिए काफी प्रेरणादायक बन गयें हैं। गैर-आदिवासी साहित्यकारों द्वारा लिखित संस्मरणों में श्री प्रकाश मिश्र का 'मिज़ोराम में वे कुछ दिन', विभूति भूषण महोपाध्याय का 'मेरा सिंहभूमि का भ्रमण', स्वधीन कृत 'कितनी दूर है अभी 'रोशनी', राकेश कुमार सिंह का 'लो आज गुल्लक तोडता हूँ' आदि प्रमुख हैं तो आदिवासी साहित्यकारों द्वारा लिखित संस्मरणों में केदार प्रसाद मीणा का 'सावधान नीचे आग है', रमेश चन्द्र मीणा का 'ज़मीनी जंग के सहरिया', महादेव टोप्पो कृत 'प्रभाष जोशी एवं जनसत्ता का तीसरा पाठक' आदि प्रमुख हैं।

आदिवासी कथ्यवाले नाटकों में हबीब तनवीर कृत 'हिरमा की अमर कहानी', सुनील कुमार सुमन कृत 'एक बार फिर', घनश्याम सिंह भाटी प्यासा का 'मोर्चा मानगढ', हृषिकेश सुलभ कृत 'धरती आबा' आदि उल्लेखनीय हैं।

साहित्य की अन्य विधाएँ जैसे यात्रा-वृत्तान्त में हरिराम मीणा द्वारा कृत दो यात्रा-वृत्तान्त 'साईबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक', 'जंगल-जगंल जलियाँ

वाला’ और व्यंग्यात्मक निबन्धों में शंकर लाल मीणा कृत ‘ईमानदारी से आखिरी मुलाकात’, मंजु ज्योत्सना का ‘गप्प करने की कला’ आदि उल्लेखिनीय हैं।

आदिवासी साहित्य के भविष्य को उज्ज्वल बनाने में पत्र-पत्रिकाओं ने अहम भूमिका निभायी है, और निभा रही हैं। उन पत्रिकाओं में ‘अरावली उद्घोष’, ‘युद्धरत आम आदमी’, ‘आदिवासी सत्ता’, ‘आदिवासी साहित्य’ आदि प्रमुख हैं। मुख्यधारा के पत्रिकाएँ जैसे ‘समवेत’, ‘वाङ्मय’, ‘कथाक्रम’, ‘समकालीन जनमत’, ‘दस्तक’ आदि आदिवासी विशेषांक निकालकर आदिवासी साहित्य को समृद्ध बना रही हैं।

इस प्रकार देखा जाए तो उपन्यास, कहानी, कविता जैसे साहित्य की महत्वपूर्ण विधाओं की अपेक्षा नाटक, यात्रा-वृत्तान्त, निबन्ध आदि विधाओं में आदिवासी साहित्य अभी विकास के पथ पर है। किन्तु लगभग सभी विधाओं में आदिवासी विमर्श पदार्पण कर चुका है।

विभिन्न चरणों से होकर कविता आज समकालीन कविता का रूप ले ली है और वर्तमान में इसकी भूमि अतिविस्तृत हो चुकी है। इसका प्रमुख कारण समाज के उन सभी हिस्सों को लेकर कविता बहस कर रही है जिन्हें सहस्रों से हाशिए पर धकेला गया था। उनमें आदिवासियों का नाम सबसे आगे आता है। घने जंगलों एवं पहाडों में बन्दे आदिवासी जीवन प्रतिदिन शोषण के मारे बिखरने लगा है। विकास के गठजोड में सिकुडता यह समाज आज अपनी परम्परा, संस्कृति एवं भाषा को नुक्सान होते देख सचेत होने लगा है। हज़ारों

वर्षों से अशिक्षित रहनेवाले आदिवासी समुदाय ने लोक गीत एवं लोक कथाओं के माध्यम से अपना साहित्य एवं संस्कृति और परम्परा को सुरक्षित एवं जीवंत रखा। किन्तु जब भारत स्वतंत्र हुआ तो आज़ादी शब्द आदिवासियों केलिए अस्वतन्त्रता की बेडियाँ बन गईं और विकास शब्द उनका सबकुछ भक्षित करने वाला राक्षस। आम तौर पर देखा जाए तो आज उनकी समस्याएँ अनसुलझा जानेवाले प्रश्न बन चुके हैं। इसलिए चुप्पियों में साधी गई अपनी ज़िन्दगी से वे मुक्त होना चाहते हैं और आज खुद पढ-लिखकर अपने दुःख दर्द का बयान दे रहे हैं।

समकालीन कविता आदिवासी जीवन के सभी पक्षों को जोडकर रखने का प्रयास कर रही है और इस प्रयास में गैर-आदिवासी एवं आदिवासी साहित्यकार एक साथ अपना कलम चला रहे हैं। वे आदिवासी समाज में छायी तमाम परेशानियाँ, समस्याएँ एवं विसंगतियों को विभिन्न पहलुओं के मद्दे नज़र प्रस्तुत कर रहें हैं। इन पहलुओं में उनके मूलभूत समस्याएँ जैसे भूख, गरीबी, गुलामी, हाशियेकरण, अन्धविश्वास, निरक्षरता आदि के साथ उनकी नवीन समस्याएँ जैसे विस्थापन, आर्थिक शोषण, संस्कारों पर अतिक्रमण, बेदखल, भूमि अधिग्रहण आदि विभिन्न प्रकार के आते हैं।

हिन्दी के प्रमुख आदिवासी एवं गैर-आदिवासी कवियों में हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, अनुज लुगुन, निर्मला पुतुल, वंदना टेटे, ग्रेस कुजूर, आलोका कुजूर, जसिन्ता केरकेट्टा, रमणिका गुप्ता, विनोद कुमार शुक्ल आदि का नाम उल्लेखनीय हैं। उनकी कविताओं के मूल में विस्थापन, आर्थिक शोषण,

बेदखल, नक्सलवाद, पूँजीवादी शोषण, वन संपदा का दोहन, जल संकट, बाल शोषण, स्त्री शोषण, जातिवाद, वैश्वीकरण, शहरीकरण आदि आदिवासी जीवन से जुडी अनेक समस्याएँ केन्द्र में हैं। कारखानों का निर्माण, सडकों का निर्माण, कोयला खनन, परमाणु विद्युत केन्द्र, बाँध परियोजना, इस्पात परियोजना, सिंचाई परियोजना आदि के नाम पर सरकार हज़ारों एकड ज़मीनों का अधिग्रहण कर औद्योगिक क्षेत्रों केलिए ज़मीन तैयार कर रही है। लाखों आदिवासी अब तक विस्थापित हो चुके हैं। जल-जंगल-ज़मीन आदिवासी जीवन का आधार है। लेकिन सभ्य समाज ने धरती की लूट-मार कर आदिवासियों को महानगर की गलियों में नंग-धडंग घूमने को मजबूर कर दिया है। आदिवासियों को जडों से निकालकर उन्हें ज़मीन से निष्कासन करने की सभ्य समाज की चालाकी पर लज्जा आती है। आखिर मनुष्य ही मनुष्य राशि केलिए हानि बन गया है।

आज आदिवासियों की संस्कृति एवं परम्परा के साथ भाषा भी विलुप्त हो रही है। आदिवासी भाषाएँ मौखिक हैं। बदलते समय में आदिवासियों की मौखिक भाषाओं का विलुप्त होना आसान बात बन गयी है। साहित्य में भावपक्ष एवं कलापक्ष दोनों का अहम स्थान है। इसलिए आदिवासी साहित्यकारों ने अपनी भाषाओं के लोकशब्द एवं लोकगीतों का प्रयोग कर भाषा को ज़िन्दा रखने की कोशिश जारी कर दी है।

आदिवासी कविताओं के केन्द्र में जल, जंगल और ज़मीन हैं। आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा कविता का मूल उद्देश्य है। आज वैश्वीकरण,

औद्योगिक सभ्यता एवं सूचना प्रोद्योगिकी के महाविस्फोट के कारण मनुष्य की बुनियादी ज़रूरतें और भावात्मक दृष्टिकोण बदल चुके हैं। इनसे आदिवासियों के रहन-सहन, विचारधारा आदि में कहीं न कहीं बदलाव तो आया है। किन्तु लाखों, करोडों आदिवासी अभावों में जी रहे हैं। समय के परिवर्तन ने आदिवासी शब्द का अर्थ ही नहीं, बल्कि उनकी ज़िन्दगी का आयाम ही बदल दिया है। नित बन रही नयी परियोजनाएँ आदिवासियों की मौत परियोजना का कारण बन गयी हैं। उनके घर-द्वार, खेत-खलिहान, भाषा सब स्मृतियाँ बन रही हैं। आदिवासी पहले ज्ञान विहीन थे आज वे गृहहीन एवं भूमिहीन बन गए हैं। जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से गुज़रता यह समाज आज अपने को ज़िन्दा रखने की अथक कोशिश कर रही है।

आज विश्व में कोई भी देश या क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ संघर्ष के बिना लोग अपनी स्वतन्त्रता को सुरक्षित रख सके। कालखण्ड के बदलाव के साथ स्वतन्त्रता के मानदण्डों में भी परिवर्तन होता रहा। साथ ही अत्याचार और शोषण की गतिविधियाँ भी बदलती रहीं। समय के अनुसार नए भेद भावों का जन्म हुआ और उनके अनुरूप संघर्षों के नवीन रूप सामने आते गये। समय और काल के अनुसार लडाई का स्वरूप बदलता है। अब ज़माना इक्कीसवीं सदी का है और समाज वैश्वीकरण का। चाहे परिस्थिति और प्रश्न बदलते रहें लेकिन लडाई जारी रखना आदिवासियों केलिए अनिवार्य है।

आदिवासी साहित्य के गहन पडताल के बाद इस निष्कर्ष पर जा पहुँचते हैं कि सर्वाधिक प्राचीन होने का गौरव निभाता जंगली एवं ग्रामीण परिवेश के इस

समाज के आगे आज चौतरफा समस्याएँ एवं चुनौतियाँ हैं। चाहे उपन्यास हो, कहानी हो या साहित्य की अन्य विधाएँ सभी में उनके दमन और शोषण के यथार्थ को उकेरा गया है। किन्तु वैश्विक संस्कृति, सरकारी योजनाएँ, पूँजीपतियों का व्यावसायिक एवं मुनाफावादी सोच से उत्पन्न आदिवासियों की अनंत समस्याओं को कविता के ज़रिए समाज के सामने लाने में कवि ज़्यादा सक्षम हुए हैं और आदिवासी संस्कृति, परम्परा एवं भाषा की रक्षा हेतु प्रतिरोध के स्वर को जीवंत रखते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन से उभरने वाले प्रमुख मुद्दे निम्नलिखित हैं :-

- आदिवासी शब्द का अर्थ एवं स्वरूप काफी विस्तृत है।
- ऐतिहासिक और भौगोलिक परिवेश के अनुसार भारत में विविध आदिवासी समुदायों एवं उनके जीवन तरीके यहाँ पाये जाते हैं।
- हिन्दी में आदिवासी लेखन एवं साहित्य काफी समृद्ध होते जा रहे हैं। इसमें पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही है।
- आदिवासी लोगों में गरीबी एवं निर्धनता प्रमुख समस्या है।
- आज़ादी के पचहत्तर साल बाद भी आदिवासी समुदाय हाशियेकृत एवं पिछडेपन का जीवन जी रहा है।
- स्त्री शोषण एवं यौन शोषण इस समुदाय में जारी है।

- आदिवासी समाज में बच्चे असुरक्षित हैं। बाल मज़दूरी, यौन शोषण, कुपोषण आदि से वे पीडित हैं।
- व्यवसाय व उद्योग क्षेत्रों के स्वतंत्र रूप से पनपने से आदिवासियों के पारंपरिक व्यवसायों पर संकट आया है। वे बेरोज़गारी का भी सामना कर रहे हैं।
- वैश्वीकरण के युग में आदिवासी लोग बेदखली, पलायन एवं विस्थापन की समस्या झेल रहे हैं और उनका पुनर्वास भी ठीक तरह से नहीं होता।
- आजकल आदिवासी इलाके में प्रदूषण एवं स्वास्थ्य सम्बन्ध समस्याएँ बढ रही हैं।
- आदिवासी समाज में व्याप्त निरक्षरता ने उन्हें सही और गलत को समझने में मुश्किल कर दिया है। इसी कारण आदिवासी धर्म परिवर्तन जातिवाद, माओवाद या नक्सलवाद आदि के शिकार बन रहे हैं।
- सभ्य समाज का लालची एवं मुनाफावादी दृष्टिकोण आदिवासी एवं आदिवासी इलाकों को प्रदर्शन वस्तु बनने को मजबूर कर दिया है।
- बाज़ारवाद एवं उपभोक्तावादी संस्कृति के अतिक्रमण ने आदिवासी लोक संस्कृति एवं सभ्यता पर बहुत नुक्सान पहुँचाया है।
- विकास के नाम पर आनेवाली सरकारी योजनाएँ आदिवासी जीवन में विपरीत स्थितियाँ पैदा कर रही हैं। पूँजीपति तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ

प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और खनिज संपदाओं की लूट कर रहे हैं। साथ-ही-साथ वे प्राकृतिक आपदाओं का शिकार बन रहे हैं। उनमें असुरक्षा का बोध बढ रहा है।

- आदिवासी कविताओं का भाव के साथ शिल्प पक्ष थी समृद्ध हैं।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

अध्ययन की संभावनाएँ (Recommendations)

अनगिनत समस्याओं से घेरा हुआ आदिवासी जीवन खतरे में खडा है। प्रस्तुत अध्ययन 'समकालीन हिन्दी कविता में आदिवासी विमर्श' पर केन्द्रित है। किन्तु आदिवासी एवं आदिवासी साहित्य से जुडी समस्याएँ एवं चुनौतियाँ बहुमुखी एवं बहुआयामी हैं। इसलिए इस विषय का क्षेत्र अतिविस्तृत होता जा रहा है। आगे किन-किन विषयों या मुद्दों को लेकर अध्ययन हो सकता है, इसके लिए निम्न लिखित बिन्दुओं पर दृष्टि केन्द्रित की जा सकती है-

- आदिवासियों की भाषा।
- आदिवासी साहित्य का शिल्प।
- आदिवासी कवयित्रियों की रचनाओं में अभिव्यक्त स्त्री स्वर।
- आदिवासी और विस्थापन।
- वर्तमान में आदिवासी परम्परा एवं संस्कृति।
- आदिवासी समाज की मातृसत्तात्मकता एवं पितृसत्तात्मकता।
- आदिवासी समाज व साहित्य में बच्चे।
- आदिवासी साहित्य में वृद्ध विमर्श।
- संस्मरणों में आदिवासी विमर्श।

- आदिवासी समाज में शिक्षा।
- आदिवासी साहित्य एवं अनुवाद।
- हिन्दी एवं मलयालम में आदिवासी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन।
- भारतीय आदिवासी साहित्य : इतिहास लेखन की संभावनाएँ।

सहायक ग्रंथ-सूची

सहायक ग्रन्थ-सूची

काव्य - संग्रह

1. अनुज लुगुन : बाघ और सुगना मुण्डा की बेटी
   वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 2019
2. अरुण कमल : अपनी केवल धार
   वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2004
3. आलोका कुजूर : नये हस्ताक्षर
   अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्र.सं. 2020
4. कुमार अम्बुज : अतिक्रमण
   राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.2002
5. डॉ.खन्ना प्रसाद अमीन : आदिवासी की मौत
   अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्र.सं. 2019
6. ग्रेस कुजूर : एक और जनी शिकार
   अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्र.सं. 2020
7. चन्द्रकान्त देवताले : लकडबग्घा हँस रहा है
   वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2000
8. जसिन्ता केरकेट्टा : अंगोर
   अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, दू.सं. 2020
9. निर्मला पुतुल : नगाडे की तरह बजते शब्द
   भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, सं. 2005
10. निर्मला पुतुल : बेघर सपने
    आधार प्रकाशन, हरियाना, प्र.सं. 2014
11. भगवान गव्हाडे : आदिवासी मोर्चा
    वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2014

12. महादेव टोप्पो : जंगल पहाड के पाठ
अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्र.सं. 2017

13. मदन कश्यप (सं) : प्रतिनिधि कविताएँ रमणिका गुप्ता
अक्षर शिल्पी, दिल्ली, सं. 2008

14. राजेश जोशी : धूप घडी
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
प्र.सं. 2002

15. रमणिका गुप्ता (सं) : कलम को तीर होने दो
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2015

16. लीलाधर मंडलोई : काल बाँका तिरछा
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
प्र.सं. 2004

17. लीलाधर मंडलोई : कालापानी
राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली
प्र.सं. 2006

18. वंदना टेटे (सं) : कवि मन जनी मन
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2019

19. शिरोमणि महतो : चाँद से पानी
अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्र.सं. 2018

20. हरिराम मीणा : आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएँ
अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्र.सं. 2019

21. हरिराम मीणा : सुबह के इन्तज़ार में
अक्षर शिल्पी, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2008

22. ज्ञानेन्द्रपति : संशयात्मा
राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली
प्र.सं. 2004

कहानी - संग्रह

1. डॉ. एम. फीरोज़ खान (सं) : आदिवासी चर्चित कहानियाँ
सारंग प्रकाशन, वाराणसी
प्र.सं. 2018

2. रमणिका गुप्ता : बहू-जुठाई
शिल्पयान पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स
दिल्ली, सं. 2010

समीक्षा-ग्रन्थ

1. अनुज लुगुन (सं) : आदिवासी अस्मिता प्रभुत्व और प्रतिरोध
अनन्य प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 2018

2. डॉ. अर्जुन चव्हाण : विमर्श के विविध आयाम
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2008

3. डॉ. ईश्वरसिंह राठवा : हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन
माया प्रकाशन, कानपुर, प्र.स. 2018

4. डॉ.ऊषा कीर्ति राणवत (सं) : आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य
अतुल प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2012

5. ए.एच. जमादर : आदिवासी एवं उपेक्षित जन
विकास प्रकाशन, कानपुर
द्वि.सं. 2017

6. डॉ.एम. फीरोज़ख़ान (सं) : आदिवासी साहित्य दशा एवं दिशा
वाङ्मय बुक्स, अलीगढ, प्र.सं. 2015

7. कुमार चौहान (सं) : आदिवासी स्वर (४)
सामाजिक आर्थिक जीवन
नई दिल्ली, प्र.सं. 2005

8. डॉ.गीता वर्मा (सं) : वर्तमान समय में आदिवासी समाज
वाङ्मय बुक्स, अलीगढ, प्र.सं. 2012

9. डॉ. जालिन्दर इंगले : आदिवासी दमन शोषण और यथार्थ
गौरव बुक्स, कानपुर, प्र.सं. 2017

10. डॉ. पंडित बन्ने : हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श
अमन प्रकाशन, प्र.सं. 2014

11. डॉ. बाबु जोसफ (सं) : भूमण्डलीकरण और हिन्दी कविता
अमन प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2013

12. रमणिका गुप्ता (सं) : आदिवासी विकास से विस्थापन
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2008

13. रमणिका गुप्ता (सं) : आदिवासी साहित्य यात्रा
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं.2008

14. रमणिका गुप्ता (सं) : आदिवासी कौन?
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2008

15. रमणिका गुप्ता (सं) : आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं.2012

16. रमणिका गुप्ता (सं) : आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
सं. 2002

17. रणेन्द्र (सं) : झारखण्ड एन्साइक्लोपीडिया खण्ड-१
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2008

18. रणेन्द्र (सं) : झारखण्ड एन्साइक्लोपीडिया खण्ड-२
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2008

19. डॉ. रमेश सम्भाजी कुरे (सं) : आदिवासी साहित्य विविध आयाम
विकास प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं. 2013

20. राजाकिशोर (सं) : माओवाद, हिंसा और आदिवासी
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
प्र.सं. 2010

21. वंदना टेटे (सं) : आदिवासी दर्शन और साहित्य
विकल्प प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2016

22. डॉ. विनय कुमार पाठक : अम्बेडकरवादी सौन्दर्य शास्त्र- और दलित आदिवासी-जनजातीय विमर्श
नीरज बुक सेंटर, दिल्ली, प्र.सं. 2006

23. वी.एस. चाटर्जी (सं) : आदिवासी स्वर (२)
वाचिक परम्परा व साहित्य
आकृति प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2006

24. वेदप्रकाश अमिताभ : साहित्य और परिवेश
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, सं. 2009

25. डॉ. शिवाजी देवरे (सं) : समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श
विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2013

26. डॉ.शैला चव्हाण कदम : आदिवासी समाज एवं संस्कृति
रोशनी पब्लिकेशन्स, कानपुर, प्र.सं. 2014

27. डॉ. सविता चौधरी : हिन्दी साहित्य में आदिवासी एवं स्त्री विमर्श
रोली प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2017

28. हमीमा ओ.पी (सं) : समकालीन साहित्य आदिवासी विमर्श
अमन प्रकाशन, कानपुर, प्र.स. 2019

29. हरिनारायण दत्त (सं) : आदिवासी स्वर (३)
संस्कार व प्रथाएँ
आकृति प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2005

मलयालम-ग्रन्थ

1. के. पानूर : केरलत्तिले आफ्रिक्का
साहित्य प्रवर्तका, कोट्टयम, ग्यारहवीं,
सं. 2014
2. सुरेन्द्रन चीक्किलोड : केरलचरित्रवुम संस्कारवुम
मातृभूमि बुक्स, कोषिक्कोड, सं. 2016

अंग्रेज़ी-ग्रन्थ

1. डॉ.एल.पी. विध्यार्थी : अप्लैड आन्त्रापॉलजी इन इण्डिया
किताब महल, अलहाबाद, सं. 2008
2. डॉ. कुमार : आन्त्रोपोलजी सोष्यल ऑन्ड काल्चरल
एजुकेषनल पब्लिषर, आग्रा, प्र.सं. 1992
3. नदीम हसनैन : ट्रय्बल इण्डिया, पलका प्रकाशन, दिल्ली
सं. 2017

पत्र-पत्रिकाएँ

1. आदिवासी समाज, संस्कृति और साहित्य, उदयपुर-7,8 अक्तूबर-2016
2. नूतनवाग्धारा, संयुक्तांक 34-36, वर्ष-11, दिसम्बर-2018
3. भाषा: द्वैमासिक पत्रिका-सितम्बर-अक्तूबर, अंक, 2010
4. भाषा: द्वैमासिक पत्रिका-मार्च-अप्रैल, अंक, 2012
5. भाषा : द्वैमासिक पत्रिका-जनवरी-फरवरी, अंक, 2022

6. युद्धरत आम आदमी, मासिक पत्रिका, दिल्ली, अंक फरवरी- 2016

7. योजना, वर्ष :65, अंक-10, अक्तूबर-2021

8. योजना, वर्ष :66, अंक-3, मार्च-2022

9. वाङ्मय-त्रैमासिक पत्रिका, अलीगढ अंक-जुलाई- 2013 (आदिवासी विशेषांक)

10. वाङ्मय त्रैमासिक पत्रिका, अलीगढ, जून-2015 (आदिवासी विशेषांक)

11. समवेत पत्रिका, अर्द्धवार्षिकी पत्रिका, उदयपुर, अंक-जुलाई- 2014

वेब सामग्री

https://www.a.chakra.blogspot.com

https://www.exoticindiaart.com

https://www.fromhindinews18.com

https://www.hi.m.wikipedia.org

https://kharia.org

https://www.meenawiki.com

https://www.pustak.org

https://www.sahityakunj.net

https://www.scotbuzz.org

https://www.setumag.com

https://www.yourdictionary.com